206

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड एवं अन्य।

बनाम

भारत संघ और अन्य।

31 जुलाई, 1980।

[न्यायमूर्तिगण वाई. वी. चंद्रचूड़, सी. जे., पी. एन. भगवती, ए, सी. गुप्ता, एन, एल. अंतवालिया और पी. एस. कैलेसाम]

भारत का संविधान 42 वां संशोधन अधिनियम, धारा 4 और 55 के तहत क्या धाराएं संसद की संशोधन शक्ति से परे हैं। संविधान का अनुच्छेद 368 और इसलिए शून्य-क्या संविधान के भाग IV में निहित राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों को संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों पर प्रधानता मिल सकती है-भारत का संविधान अनुच्छेद 14,19,31 सी, 38 और 368।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड कपड़ा क्षेत्र में काम करने वाली एक सीमित कंपनी है। 20 अगस्त, 1970 को केंद्र सरकार ने मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के मामलों की पूर्ण और पूर्ण जांच करने के लिए उद्योग (विकास विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 15 के तहत एक समिति नियुक्त की क्योंकि यह राय थी कि प्रोडक्शन की मात्रा में पर्याप्त 'गिरावट' आई थी या होने की संभावना थी। उक्त समिति ने जनवरी 1971 में केंद्र सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसके आधार पर केंद्र सरकार ने धारा के तहत 19 अक्टूबर, 1971 को एक आदेश पारित किया। 181951 के अधिनियम का ए, अधिकृत करता है। राष्ट्रीय वस्त्र निगम लिमिटेड, के प्रबंधन को संभालने के लिए

मिल्स इस आधार पर कि इसके मामलों का प्रबंधन इस तरह से किया जा रहा है जो सार्वजनिक हित के लिए अत्यधिक हानिकारक है। इस उपक्रम का राष्ट्रीयकरण किया गया था और केंद्र सरकार ने बीमार कपड़ा खरीद (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों के तहत इसे अपने हाथ में ले लिया था। याचिकाकर्ताओं ने बीमार कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974 के कुछ प्रावधानों की संवैधानिक वैधता और 19 अक्टूबर, 1971 के आदेश की संवैधानिकता को चुनौती दी।

राष्ट्रीयकरण अधिनियम की प्रविष्टि 105 में। संविधान की नौवीं अनुसूची, संविधान के अनुच्छेद 31 बी की वैधता और अंत में संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55 की संवैधानिकता, केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के फैसले के अनुपात पर, अर्थात्, हालांकि संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी गई है, उस शक्ति का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जा सकता है कि संविधान की बुनियादी विशेषताओं को नुकसान पहुंचे या ताकि इसकी मूल संरचना को नष्ट किया जा सके।

यह मत व्यक्त करते हुए कि संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम की धारा 4 और 55 अमान्य हैं और संसद की संशोधन शक्ति से परे हैं, न्यायालय बहुमत से (चंद्रचूड़, सी. जे., अपनी ओर से, ए. सी. गुप्ता, एन. एल. उंतवालिया और पी. एस. कैलासम, जे. जे.) पकड़ना:

(1) अनुच्छेद 368 का नया खंड 5 उल्लंघन करता है: संसद की संशोधन शक्ति पर सीमाएँ और इसलिए असंवैधानिक है। यह संसद को बिना किसी सीमा के अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार देकर उन स्तंभों को ध्वस्त कर देता है जिन पर प्रस्तावना टिकी हुई है। कोई भी घटक शक्ति आकाश से ऊँची नहीं जा सकती। खंड (5) द्वारा प्रदत्त शक्ति, क्योंकि यह संसद को इस संविधान के प्रावधानों को "निरस्त" करने का भी अधिकार देती है, अर्थात लोकतंत्र को निरस्त करने का।

और इसे सरकार के पूरी तरह से विरोधी रूप में प्रतिस्थापित करें। यह सबसे अधिक हो सकता है किसी अन्य नाम से लोकतंत्र को बुलाए बिना, प्रभावी रूप से प्राप्त किया जा सकता है इमास्कू द्वारा लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय से पूरी तरह से इनकार विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा की स्वतंत्रता और त्याग द्वारा समान समाज के भव्य आदर्श के प्रति प्रतिबद्धता। की शक्ति नष्ट करना संशोधन करने की शक्ति नहीं है। [240 सी-ई]

चूँकि संविधान ने संशोधन की सीमित शक्ति प्रदान की थी उसी शक्ति को एक पूर्ण शक्ति में विस्तारित करें। वास्तव में, एक सीमित संशोधन शक्ति भारतीय संविधान की बुनियादी विशेषताओं में से एक है और इसलिए, उस शक्ति पर नजर रखने को नष्ट नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, संसद अनुच्छेद 368 के तहत, अपनी संशोधन शक्ति का विस्तार नहीं कर सकते हैं ताकि स्वयं संविधान को निरस्त करने या निरस्त करने या इसके मूल को नष्ट करने का अधिकारऔर आवश्यक विशेषताएँ। सीमित शक्ति का प्राप्तकर्ता अभ्यास द्वारा नहीं कर सकता है 1 की वह शक्ति सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में बदल देती है। [240 ई-जी]श्रीमती. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण, [1976] 2 एस. सी. आर. 347, इसके बाद आए।

(2) अनुच्छेद 368 का नया खंड (4) समान रूप से असंवैधानिक है। राष्ट्रीय और शून्य क्योंकि खंड (4) और (5) आपस में जुड़े हुए हैं। जबकि खंड (5) संशोधन शक्ति पर सभी सीमाओं को हटाने का उद्देश्य, खंड (4) वंचित करता है संविधान के किसी भी संशोधन पर सवाल उठाने की उनकी शक्ति वाले न्यायालय। (241 ई-एफ]

भारतीय संविधान के बीच शक्ति के एक अच्छे संतुलन पर आधारित है राज्य की तीन शाखाएँ, अर्थात् कार्यपालिका, विधानमंडल और न्यायपालिका सीरी। यह न्यायाधीशों का कार्य है, उनका कर्तव्य हो सकता है कि वे कानूनों की वैधता। यदि अदालतें उस शक्ति से पूरी तरह से वंचित हैं, तो मौलिक लोगों को प्रदान की जाने वाली चड्डी केवल एक अलंकरण बन जाएगी क्योंकि अधिकार बिना उपचार के पानी

में लिखा होता है। एक नियंत्रित संविधान तब होगा - अनियंत्रित होकर आओ। अनुच्छेद 368 का खंड (4) नागरिकों को पूरी तरह से वंचित करता है। निवारण के सबसे मूल्यवान तरीकों में से एक जिसकी अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटी दी गई है।संविधान की पहचान को नष्ट करने का अधिकार प्रदान करना इस प्रावधान के साथ कि कोई भी अदालत इसकी वैधता पर फैसला नहीं करेगी इस तरह के विनाश पर सीमाओं के उल्लंघन का एक पारदर्शी मामला है शक्ति में संशोधन। [241 एच, 242 ए]

यदि किसी संवैधानिक संशोधन को अमान्य नहीं घोषित किया जा सकता है, भले ही यह संविधान की मूल संरचना को नष्ट कर देता है, जिसके अनुसरण में एक कानून पारित किया गया था। इस तरह के संशोधन का न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर होगा क्योंकि यह

संवैधानिक संशोधन का संरक्षण प्राप्त होगा जिसे अदालतें हमला करने के लिए शक्तिहीन होगा। तब संविधान का अनुच्छेद 13 बन जाएगा एक मृत पत्र क्योंकि सामान्य कानून भी अदालतों की जांच से बच जाएंगे इस आधार पर कि वे एक संवैधानिक संशोधन के बल पर पारित किए जाते हैं जो चुनौती के लिए खुला नहीं है। [242 ए-सीजे

(3) हालाँकि यह निर्णय न लेना सर्वोच्च न्यायालय की तय की हुई प्रथा है अकादमिक प्रश्नों और न्यायालय ने लगातार यह विचार रखा है कि यह होगा पूर्व द्वारा आवश्यक संवैधानिक कानून के नियम को व्यापक रूप से तैयार नहीं करना जिन तथ्यों पर इसे लागू किया जाना है, प्रारंभिक स्थिति को बनाए रखना मुश्किल है याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए प्रश्न पर विचार करने पर आपत्ति बयालीसवें संशोधन की धारा 4 और 55 की वैधता सुनिश्चित करता है। में। तत्काल मामला, धाराओं की संवैधानिकता के संबंध में उठाया गया प्रश्न-4 और 42 वें संशोधन का 55 एक अकादमिक या काल्पनिक प्रश्न नहीं है। इसके अलावा याचिकाकर्ताओं के खिलाफ एक आदेश पारित किया गया है

उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 18 ए जिनसे याचिकाकर्ता व्यथित हैं। [248 सी, ई-जी] 208 इसके अलावा, निर्णय के खिलाफ कोई संवैधानिक या वैधानिक अवरोध नहीं है - इससे पहले कि वे वास्तव में विचार के लिए उठें, प्रश्नों की संख्या। यहाँ, दृष्टि में उठाए गए प्रश्न के महत्व और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्न

यह कई याचिकाओं में उठाया गया है, यह न्याय के हित में समीचीन है

सही स्थिति तय करने के लिए। दूसरा, अदालत जिस पर विचार कर रही है वह एक साधारण कानून नहीं है जिसे पारित किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता है ताकि यह कहा जा सके:

कि भविष्य में एक ऐसा कानून पारित किया जा सकता है जिससे छोटे बच्चों के अधिकारों को नुकसान पहुंचे टियनर। अदालत जिस पर विचार कर रही है वह एक संवैधानिक संशोधन है जो संचालन में लाया गया है और जो, अपने बल से, उल्लंघन की अनुमति देता है - कुछ उद्देश्यों के लिए पारित कानूनों के माध्यम से कुछ स्वतंत्रताओं का गठन। [248 जी, 249 ए - बी]

मैसाचुसेट्स का राष्ट्रमंडल बनाम। एंड्रयू डब्ल्यू: मेलन, 67 वकीलों का संस्करण - राज्य, 1078,1084; जॉर्ज अश्वंदर बनाम। टेनेसी घाटी प्राधिकरण, 80 कानून - यर्स संस्करण, 688,711, अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया।

(4) इस सवाल का जवाब कि क्या बहुमत के फैसले को देखते हुएकेशवानंद भारती में संसद को इस तरह से संविधान में संशोधन करने की अनुमति है ताकि निर्देशात्मक सिद्धांतों को प्राथमिकता दी जा सके। मौलिक अधिकार, अनिवार्य रूप से इस बात पर निर्भर करना चाहिए कि क्या अनुच्छेद 14 और 19, जो अब निदेशक नीति के सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित कानूनों को रास्ता देना चाहिए, संविधान की मूल संरचना की आवश्यक विशेषताएं हैं। यह केवल तभी है जब इन दो अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार संविधान की मूल संरचना का हिस्सा नहीं हैं कि उन्हें संवैधानिक संशोधन द्वारा निरस्त करने की अनुमति दी जा सकती है। यदि वे मूल संरचना का एक हिस्सा हैं, तो उन्हें अनुच्छेद 31 सी में वर्णित कानूनों की एक श्रेणी के संबंध में अस्तित्व से मिटा नहीं दिया जा सकता है। या, उस मामले के लिए, किसी भी विवरण के कानूनों के संबंध में, किसी भी उद्देश्य या नीति को प्राप्त करने के लिए पारित किया गया। यह इस बात को सामने लाने का काम करेगा कि आवश्यक विशेषताओं का कुल क्षय "

केशवानंद भारती के अनुपात से संविधान संसद के लिए अनुज्ञेय नहीं है। [249 ई-एच]

(5) हमारे संविधान की योजना में निर्देशक सिद्धांतों का महत्व

शिक्षा पर कभी भी अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। ये सिद्धांत उस उच्च आदर्श को प्रस्तुत करते हैं जिसे संविधान प्राप्त करने का लक्षय रखता है। वास्तव में राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत देश के शासन में मौलिक हैं और सार्वजनिक जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां देरी न्याय को अधिक स्पष्ट प्रभाव से हरा सकती है, जिसमें आम आदमी अपनी आकांक्षाओं को साकार करना चाहता है। लेकिन भाग III द्वारा दी गई गारंटी को कथित रूप से नष्ट करने के लिए भाग IV के लक्षयों को प्राप्त करना स्पष्ट रूप से संविधान की मूल संरचना को नष्ट करके उसे नष्ट करना है। मौलिक अधिकार जीवन में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। सभ्य समाजों और जिन्हें विभिन्न रूप से "दिव्य", "अविभाज्य" और "आदिम" के रूप में वर्णित किया गया है और जैसा कि केशवानंद भारती में कहा गया है, वे संविधान के सन्दूक को मानते हैं। [250 बी-सी, 254 एच, 255 ए)

इस धारणा का महत्व कि भाग III और IV एक साथ -

सामाजिक क्रांति के प्रति प्रतिबद्धता का मूल और वे, एक साथ, संविधान की अंतरात्मा हैं, भारतीय संविधान की योजना की गहरी समझ से पता लगाया जाना चाहिए। भाग III और IV रथ के दो पहियों की तरह हैं, एक दूसरे से कम महत्वपूर्ण नहीं है। एक को स्नैप करें और दूसरा अपनी प्रभावशीलता खो देगा। वे सामाजिक क्रांति को प्राप्त करने के लिए एक दोहरे सूत्र की तरह हैं, जो एक आदर्श है जिसे संविधान के दूरदर्शी संस्थापकों ने निर्धारित किया है।

अपने से पहले। दूसरे शब्दों में, भारतीय संविधान की स्थापना भाग III और IV के बीच संतुलन की आधारशिला पर की गई है। एक-दूसरे को सर्वोच्च प्राथमिकता देना संविधान के सद्भाव को बिगाड़ना है। मौलिक अधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धांतों के बीच यह सामंजस्य और संतुलन संविधान की मूल संरचना की एक अनिवार्य विशेषता है। [255 बी-डी]

भारतीय संविधान की इमारत स्फटिकीकृत अवधारणाओं पर बनी है।

प्रस्तावना में। अपने आप को एक समाजवादी राज्य के रूप में गठित करने का संकल्प लेने के बाद, जो हमारे लोगों के लिए सामाजिक, पारिस्थितिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करने के दायित्व को वहन करता है, भाग IV को हमारे संविधान में रखा गया है जिसमें राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत हैं जो समाजवादी लक्षय को प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट करते हैं। लोगों से एक ऐसी लोकतांत्रिक राजनीति का वादा करने के बाद जो लोगों को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता, स्थिति और अवसर की समानता और यह आश्वासन देने का दायित्व वहन करती है कि व्यक्ति की गरिमा को हर कीमत पर संरक्षित किया जाएगा, हमारे संविधान में भाग III को लोगों को उन अधिकारों को प्रदान करते हुए रखा गया है। वे अधिकार अपने आप में अंत नहीं हैं, बल्कि अंत के साधन हैं। अंत भाग IV में निर्दिष्ट किया गया है। इसलिए, भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकार उचित प्रतिबंधों के अधीन हैं और संविधान में प्रावधान है कि

उनमें से कुछ। कथित असामान्य परिस्थितियों में निलंबित किया जा सकता है। लेकिन जिस तरह भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकार एक रडार और एक कॉम पास के बिना होंगे यदि वे एक आदर्श के लिए तैयार नहीं थे, उसी तरह भाग IV में निर्धारित आदर्शों की प्राप्ति अत्याचार के लिए एक ढोंग बन जाएगी यदि उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए भुगतान की जाने वाली कीमत मानव स्वतंत्रता है। साधनों की शुद्धता हमारे संस्थापकों के धर्मों में से एक था। भाग IV में निर्धारित लक्षय इसलिए, प्रदान किए गए साधनों को निरस्त किए बिना प्राप्त किया जाना है भाग III के लिए। यह इस अर्थ में है कि भाग III और IV मिलकर गठन करते हैं। हमारे संविधान का मूल और अपनी अंतरात्मा बनाने के लिए एकजुट। कुछ भी जो दोनों भागों के बीच संतुलन को नष्ट कर देता है, वह वास्तव में एक हमारे संविधान की मूल संरचना का अनिवार्य तत्व। [253 डी-एच, 256 ए-बी]

(5 ए) किसी भी उचित व्याख्या पर, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अनुच्छेद 14 और 19 कम से कम कानूनों की श्रेणी के संबंध में निरस्त किए गए हैं। अनुच्छेद 31 सी में वर्णित है। संशोधन का चौंकाने वाला परिणामयह कहा गया है कि भले ही कोई कानून अनुच्छेद के अधिदेश की पूरी तरह से अवहेलना कर रहा हो 13 अनुच्छेद 14 और 19 के साथ पढ़े जाने पर इसकी वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। जब तक इसका उद्देश्य राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत को सुरक्षित करना है। [256 डी-ई]

(6) इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कानूनों की कल्पना करना संभव है जो आकर्षित नहीं करेंगे। अनुच्छेद 31 सी, क्योंकि वे इसके साथ प्रत्यक्ष और उचित संबंध नहीं रख सकते हैं भाग IV के प्रावधान। हालांकि, कानूनों का एक बड़ा बहुमत, उनमें से अधिकांश, किसी भी दर पर आसानी से उचित ठहराया जा सकता है कि के उद्देश्य के लिए पारित किया गया था कुछ सिद्धांत प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाना या अन्य भाग IV में उल्लिखित है। ऐसे सभी कानूनों के संबंध में, जो एक प्रासंगिक विधायी गतिविधि का व्यापक सरगम, अनुच्छेदों का संरक्षण 14 और 19 पूरी तरह से वापस ले लिया जाएगा। यह कहने के लिए कोई जवाब नहीं है, जबकि यह निर्धारित करना कि क्या संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन किया गया है, कि कम से कम कुछ कानून अनुच्छेद 31 सी के दायरे से बाहर होंगे। [256 ई-एच]

(7) एक सीमित क्षेत्र में भी मौलिक अधिकारों से पूरी तरह वंचित किया जा सकता है। एक मौलिक अधिकार को निरस्त करने के बराबर है जैसे कि प्रत्येक में आंशिक अभाव क्षेत्र कर सकते हैं। तथ्य यह है कि कुछ कानून इसके दायरे से बाहर हो सकते हैं अनुच्छेद 31 सी इस तर्क का कोई जवाब नहीं है कि संरक्षण की वापसी बड़ी संख्या में कानूनों से अनुच्छेद 14 और 19 मूल संरचना को नष्ट कर देता है। संविधान की प्रकृति। [256 एच, 257 ए-बी]

(8) अनुच्छेद 38 में प्रावधान है कि राज्य कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा। जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सभी संस्थानों को सूचित करेगा। राष्ट्रीय जीवन के विषय। यह सही नहीं है कि सभी निदेशक सिद्धांत भाग IV में निहित राज्य नीति का अंत में अनुच्छेद 38 पर प्रभाव पड़ता है। लेख 38 निस्संदेह इसमें एक व्यापक दिशानिर्देश है, लेकिन अन्य निर्देशक सिद्धांत हैं। ये अनुच्छेद 38 में निहित सिद्धांत के केवल उदाहरण नहीं हैं। दूसरा, यदि यह सच है कि निर्देश को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से कोई कानून पारित नहीं किया गया है अनुच्छेद 38 का सिद्धांत कॉन की मूल संरचना को नुकसान या नष्ट कर सकता है। प्रावधान, कोई आवश्यकता नहीं थी और अधिक औचित्य, प्रदान करने के लिए एक संवैधानिक संशोधन द्वारा कि कोई कानून जो प्रभाव देने के लिए पारित किया गया हो, भाग IV में निर्धारित किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति इस आधार पर शून्य माना जाएगा कि यह असंगत है या लेता हैअनुच्छेद 14 और 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को समाप्त या कम करता है। [257 सी-एफ] अनुच्छेद 31 सी के संशोधन का उद्देश्य और उद्देश्य वास्तव में है - उन कानूनों को बचाएँ जिन्हें अनुच्छेद 19 (2) से (6) के तहत बचाया नहीं जा सकता है। कानून जो गिरते हैं

जनहित में मौलिक अधिकार और इसलिए वे मौलिक अधिकारों को कम करते हैं लेकिन निरस्त नहीं करते हैं। यह उन कानूनों से निपटने के लिए था जो नहीं मिलते हैं अनुच्छेद 19 (2) से (6) का संरक्षण कि अनुच्छेद 31 सी को यह कहने के लिए संशोधित किया गया था

कि अनुच्छेद 19 के प्रावधानों को अन्य बातों के साथ-साथ रद्द करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है अनुच्छेद 31 सी में उल्लिखित विवरण के कानून। [257 एफ-जी]

(9) अनुच्छेद 14 और 19 कोई काल्पनिक अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। वे प्रदान करते हैं अधिकार जो एक डेमो के उचित और प्रभावी संचालन के लिए प्राथमिक हैं क्रेसी। उन्हें सार्वभौमिक रूप से ऐसा माना जाता है, जैसा कि सार्वभौमिक डी से स्पष्ट है। मानवाधिकारों का स्पष्टीकरण। यदि अनुच्छेद 14 और 19 को लागू नहीं किया जाता है उन अधिकांश कानूनों के संबंध में जिन्हें विधानसभाओं को अनुच्छेद पारित करने का अधिकार है 32 उसके जीवन-रक्त की निकासी होगी। [257 जी-एच, 258 ए]

बयालीसवें संशोधन की धारा 4 ने कानूनों की एक बड़ी श्रेणी के संबंध में अनुच्छेद 14 और 19 के संरक्षण को पूरी तरह से वापस लेकर अनुच्छेद 32 (4) को दरकिनार करने का एक आसान तरीका पाया, ताकि इसका कोई उल्लंघन न हो। शिकायत जिसके संबंध में अनुच्छेद 32 के तहत निवारण की मांग की जा सकती है। द. अनुच्छेद 14 के संरक्षण को छीनने की शक्ति भेदभाव करने की शक्ति है वर्गीकरण के लिए एक वैध आधार के बिना। निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा उच्चतम न्यायालय ने माना है कि

अनुच्छेद 14 वर्ग कानून बनाने से मना करता है लेकिन यह करता है वर्गीकरण को मना नहीं करता है। अनुच्छेद के संरक्षण को वापस लेने का उद्देश्य 14 , इसलिए, केवल वर्ग विधान लागू करने की शक्ति प्राप्त करना ही हो सकता है। फिर से, यदि अनुच्छेद 19 (1) (डी) का लाभ नहीं उठाया जाता है तो क्षेत्रीय रूढ़िवाद का एक व्यावहारिक दिन होगा।

नागरिकों के लिए सक्षम। पहले से ही, एक तरफ से परेशान करने वाले रुझान हैं भारतीय क्षितिज। कानून बनने पर उन रुझानों को ताकत और प्रोत्साहन मिलेगा। प्रतिरक्षा के साथ पारित किया जा सकता है, नागरिकों को भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने के अपने अधिकार का प्रयोग करने से रोका जा सकता है। प्रकृति और गुणवत्ता बयालीसवें संशोधन की धारा 4 द्वारा प्रस्तुत संशोधन है इसलिए, ऐसा कि यह बुनियादी मूल के दिल को वस्तुतः फाड़ देता है

स्वतंत्रताएँ। [258 बी-ई] अनुच्छेद 31 सी "राज्य" की नीति को प्रभावी बनाने वाले कानूनों की बात करता है। अनुच्छेद 12 जो अनुच्छेद 31 सी की व्याख्या को नियंत्रित करता है, प्रदान करता है कि - भाग III में "राज्य" शब्द में भारत की सरकार और संसद और प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमंडल और सभी स्थानीय या अन्य शामिल हैं।

भारत के क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में प्राधिकरण। अनुच्छेद 31 सी की भाषा जितनी व्यापक है, अनुच्छेद 12 में "राज्य" शब्द की परिभाषा अनुच्छेद 31 सी को व्यापक आयाम का संचालन देती है। भले ही कोई राज्य विधानमंडल देने के उद्देश्य से कोई कानून पारित करे एक निर्देश सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में एक स्थानीय प्राधिकरण द्वारा नीति के प्रभाव से, कानून को अनुच्छेद 14 और 19 के प्रावधानों से छूट प्राप्त होगी। द.

इस प्रकार राज्य विधानमंडलों को वंचित करने के लिए लगभग निरंकुश विवेकाधिकार दिया जाता है अपनी नागरिक स्वतंत्रता के लोग। [258 ई-जी]

(10) भाग IV में प्रतिपादित सिद्धांत घोषित एकल नहीं हैं। अकेले लोकतंत्रों का पॉली। वे सभी राजनीति के लिए समान हैं, लोकतांत्रिक या सत्तावादी। प्रत्येक राज्य लक्षय उन्मुख है और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करने का दावा करता है।रा प्रदान की गई मौलिक स्वतंत्रताओं के अनुशासन के माध्यम से अनुच्छेद 14 और 19। वे सबसे बुनियादी स्वतंत्रताएँ हैं जिनके बिना

एक स्वतंत्र लोकतंत्र असंभव है और इसलिए इसे बिल्कुल भी संरक्षित किया जाना चाहिए। उस अनुच्छेद का संचालन न केवल संसद द्वारा पारित कानूनों पर प्रदान किया जाता है लेकिन राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित कानूनों पर भी राजनीतिक दबाव पड़ता है। संख्यात्मक रूप से बड़े समूहों द्वारा चुने जाने पर देश को विभाजित किया जा सकता है और अधिमान्य उपचार के लिए पसंदीदा क्षेत्रों और पसंदीदा वर्गों को चुनने और चुनने का काम विधायिका पर छोड़ दिया जा सकता है। [259 ए-डी]

(11) इस उद्देश्य के लिए किसी कानून के प्रावधानों को पढ़ने का साधन इसे संवैधानिक चुनौती से बचाने के लिए इसका सहारा नहीं लेना चाहिए। कानून निर्माताओं की संवेदनशीलताओं को बचाने के लिए, और न ही वास्तव में एक कानून की कल्पना करने के लिए

किसी की पसंद से पारित किया गया है। अनुच्छेद 31 सी को इस तरह से नहीं पढ़ा जा सकता है इसे असंवैधानिकता की चुनौती से बचाने के लिए क्योंकि ऐसा करने में

" जब अनजाने में चौड़ाई के शब्दों का उपयोग किया जाता है तो उस दस्तावेज़ को उसके एकमात्र या सही तर्क से वंचित करने के लिए नीचे पढ़ने के सिद्धांत को पूरी तरह से विकृत करें।

किसी को कम से कम संसद को अपने शब्द पर लेना चाहिए जब, विशेष रूप से, इसके तहत एक संवैधानिक संशोधन लेता है। [259 ई-जी] यदि संसद ने असीमित प्रयोग करने का स्पष्ट इरादा प्रकट किया है इसे सीमित करें। पढ़ने के सिद्धांत को लागू या लागू नहीं किया जा सकता है। विधायिका के स्पष्ट इरादे के विरोध में। के इतिहास में संवैधानिक कानून, कोई संवैधानिक संशोधन कभी नहीं पढ़ा गया है इसका मतलब यह है कि यह क्या कहता है और क्या इरादा रखता है, इसके बिल्कुल विपरीत है। वास्तव में, नीचे पढ़ना

अनुच्छेद 31 सी ताकि इसे बहुमत के निर्णय के अनुपात के अनुरूप बनाया जा सके। केशवानंद भारती अनुच्छेद 31 सी के घोषित उद्देश्य को नष्ट करना चाहती है। "कुछ कानूनों की बचत" शीर्षक के तहत अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी को समूहीकृत किया गया है। चूंकि अनुच्छेद 31 सी में संशोधन अप्राप्य था विधानमंडलों को कानून पारित करने के लिए सशक्त बनाने की दृष्टि से बनाया गया विशेष विवरण भले ही वे कानून अनुच्छेद 14 के अनुशासन का उल्लंघन करते हों।

और 19, यह मानना असंभव है कि अदालत को अभी भी अनुच्छेद 31 सी को बचाना चाहिए। उस लेख के शब्दों को पढ़कर असंवैधानिकता की चुनौती से जो उस अनुच्छेद के तर्क और एक इरादे को नष्ट कर देता है जो स्पष्ट रूप से है अपने घोषित उद्देश्य के विपरीत। [259 एच, 280 ए-सी]

(12) अनुच्छेद 31 सी में एक व्यापक न्यायिक समीक्षा के अस्तित्व को पढ़ना वास्तव में उस अनुच्छेद के उद्देश्य को विकृत करने की अनुमति देना है। यह फायदेमंद है। स्पष्ट रूप से यह स्पष्ट करता है कि किसी विशेष विवरण के किसी भी कानून को ऐसा नहीं माना जाएगा यह इस आधार पर अमान्य है कि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करता है। यह सरासर ए होगा इस तरह की न्यायिक जांच करने के लिए सबसे असाधारण प्रकृति का दुस्साहस। [260 एफ-जी]

(13) चीजों की प्रकृति में अदालत के लिए यह निर्धारित करना मुश्किल है

क्या कोई विशेष कानून किसी विशेष नीति को प्रभावी बनाता है। क्या कोई कानून निर्देश सिद्धांत प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त है, यह हमेशा एक विवादास्पद प्रश्न होता है और अदालतें कानून को केवल इसलिए अमान्य नहीं मान सकतीं क्योंकि उनकी राय में, कानून किसी निश्चित नीति को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रश्न की जांच करने की शक्ति कि क्या किसी कानून के अनुकूल दृष्टिकोण और निदेशक सिद्धांत के बीच प्रत्यक्ष और उचित संबंध है, न्यायालयों को राज्य की नीति पर निर्णय में बैठने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकती है। उच्चतम स्तर पर, अदालतें, अनुच्छेद 31 सी के तहत, इस अर्थ में कानून की पहचान के बारे में खुद को संतुष्ट कर सकती हैं कि क्या यह एक निदेशक सिद्धांत के साथ प्रत्यक्ष और उचित संबंध रखता है। यदि न्यायालय इस तरह की सांठगांठ के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट है, तो अनुच्छेद 31 सी द्वारा प्रदान किए गए अनुचित परिणाम का

पालन करना चाहिए। वास्तव में, यदि कोई एक विषय है जिस पर केशवानंद भारती के सभी 13 न्यायाधीशों की सहमति थी, तो वह यह है: कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए खुला एकमात्र सवाल यह था कि क्या विवादित कानून और अनुच्छेद 39 (बी) और (सी) के प्रावधानों के बीच कोई प्रत्यक्ष और उचित संबंध है। रिया सोनबलेनेस स्पष्ट रूप से सांठगांठ के बारे में है न कि कानून के बारे में। इसलिए अनुच्छेद 31 सी को एक लोकतांत्रिक संगठन में बदलने का प्रयास विफल होना चाहिए, जिसके तहत एक व्यापक न्यायिक समीक्षा की अनुमति होगी। [260 एच, 261 ए-ई]

(14) अनुच्छेद 368 के खंड (4) और (5) का घोषित उद्देश्य प्रदान करना है।

संसद को बिना किसी सीमा के संविधान में संशोधन करने की शक्ति। इस प्रकृति के प्रावधानों को शब्दों और एक बिल्कुल विपरीत अर्थ और सामग्री के इरादे को पढ़कर बचाया नहीं जा सकता है। [261 एफ जी]

(15) अनुच्छेद 31 ए (1) को समकालीन व्यावहारिक के रूप में देखा जा सकता है।

संविधान के इरादे की व्याख्या, लेकिन अनुच्छेद 31 सी के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इसके अलावा दोनों अनुच्छेदों के बीच एक महत्वपूर्ण गुणात्मक अंतर है। अनुच्छेद 31 ए, जिसकी वैधता को वर्षों से मान्यता दी गई है, कानूनों की एक निर्दिष्ट श्रेणी के संबंध में अनुच्छेद 14 और 19 के तहत चालान को बाहर करता है। यदि एक संवैधानिक संशोधन द्वारा, अनुच्छेदों का अनुप्रयोग: 14 और 19 को विधायी गतिविधि के एक परिभाषित क्षेत्र से हटा दिया जाता है, जो सार्वजनिक हित में उचित है, संविधान का मूल ढांचा मुख्य रूप से अप्रभावित हो सकता है। यदि विभिन्न प्रकार के कानूनों के संबंध में उन वस्तुओं का संरक्षण वापस ले लिया जाता है, तो मौलिक स्वतंत्रता 'कांच के डिब्बे में चर्मपत्र' बन जाएगी जिसे ऐतिहासिक जिज्ञासा के रूप में देखा जाएगा। [262 ए-सी]

(16) इस तर्क में कोई योग्यता नहीं है कि कला के बाद से। 31 ए भी ऊपर था

टकटकी निर्णय के आधार पर आयोजित, कला। 31 सी पर बरकरार रखा जा सकता है

वै

सा ही

जमीन। अनुच्छेद 31 ए में निर्दिष्ट पाँच मामले इस तरह के हैं कि कम से कम एक बहस उचित रूप से उत्पन्न हो सकती है कि क्या उन मामलों के संबंध में मौलिक अधिकारों को निरस्त करने से संविधान की मूल संरचना को नुकसान होगा या नष्ट हो जाएगा। अनुच्छेद 31 सी विशिष्ट विषयों से संबंधित नहीं है। निर्देशक सिद्धांतों को व्यापक और सामान्य शब्दों में इस सरल कारण से जोड़ा जाता है कि वे प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों को निर्दिष्ट करते हैं।

टकटकी निर्णय के सिद्धांत को पर्पे के फलदायी स्रोत के रूप में नहीं माना जा सकता है।

मानव स्वतंत्रता में कटौती करना। किसी भी अदालत ने इसकी वैधता को बरकरार नहीं रखा है।

अनुच्छेद 31 ए इस आधार पर कि यह संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन नहीं करता है

संविधान। अनुच्छेद 31 ए की वैधता पर कोई निर्णय नहीं है जो कर सकता है

संशोधन शक्ति की सीमा को मापने वाली छड़ी के रूप में देखा जाए।

से लेकर 233 तक

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन

हर बार अनुच्छेद 31 ए पर ध्यान दें जब एक नया संवैधानिक संशोधन किया जाता है।

चुनौती मौलिक के भारी क्षरण को सुनिश्चित करने का सबसे निश्चित साधन है

भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकार। इस तरह की प्रक्रिया कपटपूर्ण रूप से कमजोर करेगी

मूल संरचना की अनुल्लंघनीयता। उस अनुपात की आवश्यकता है कि वैधता प्रत्येक नए संवैधानिक संशोधन को उसके गुण-दोष के आधार पर आंका जाना चाहिए।

[262 सी-जी]

(17) यह कहना सही नहीं है कि जब अनुच्छेद 31 ए को बरकरार रखा गया था

टकटकी के फैसले का आधार, जिसे बरकरार रखा गया था वह एक संवैधानिक उपकरण था जिसके द्वारा

विषय-उन्मुख कानूनों के एक वर्ग को वैध माना जाता था। सरल जमीन जिस पर समकालीन आधार के अलावा अनुच्छेद 31 ए को बरकरार रखा गया था

व्यावहारिक व्याख्या यह थी कि इसकी वैधता को स्वीकार किया गया और मान्यता दी गई

वर्ष और इसलिए, इसकी संवैधानिकता को चुनौती देने की अनुमति नहीं थी।

टकटकी निर्णय के सिद्धांत का अर्थ उपकरण की स्वीकृति नहीं है या

विधि या संविधान तैयार करने के उद्देश्य से नियोजित तंत्र

राष्ट्रीय प्रावधान। [262 जी-एच, 263 ए-बी]

(18) अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) के तहत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

केवल तभी जब वे उचित हों और फिर उन्हें ब्याज में लगाया जा सकता है।

केवल विषयों के एक निर्दिष्ट वर्ग का। यह अदालतों को तय करना है कि क्या प्रतिबंध है

स्थितियाँ उचित हैं और क्या वे विशेष के हित में हैं

विषय। अन्य बुनियादी विषमताओं के अलावा, अनुच्छेद 31 सी

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति इस हद तक जो इसके प्रावधानों और अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) के बीच तुलना की झलक को भी नष्ट कर देती है। मानव चतुराई, भले ही असीम हो, ने अभी तक एक ऐसी प्रणाली तैयार नहीं की है जिसके द्वारा लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा की जा सके सिवाय अदालतों के हस्तक्षेप के। [263 बी-डी]

भारतीय संविधान के तीन अनुच्छेद और केवल तीन के बीच स्थित हैं।

स्वतंत्रता का स्वर्ग जिसमें टैगोर चाहते थे कि उनका देश जागे और अनियंत्रित शक्ति का रसातल। वे अनुच्छेद 14,19 और 21 हैं। अनुच्छेद 31 सी ने उस स्वर्णिम त्रिकोण के दो पक्षों को हटा दिया है जो इस देश के लोगों को यह आश्वासन देता है कि प्रस्तावना द्वारा किया गया वादा मानसिक अधिकारों के अनुशासन के माध्यम से एक समतावादी युग की शुरुआत करके पूरा किया जाएगा, यानी स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों को कम किए बिना जो अकेले व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखने में मदद कर सकता है। [263 डी-ई] प्रति भगवती, जे. (सहमत) *

(1) चूंकि संशोधन की संवैधानिक वैधता के संबंध में प्रश्न

अनुच्छेद 31 सी में जो कहा गया था, वह रिट याचिकाओं और जवाबी हलफनामों में नहीं आया था, इसका फैसला करना पूरी तरह से अकादमिक और अनावश्यक था।

एक बार यह 1 है

यह स्वीकार करते हुए कि अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी संवैधानिक रूप से मान्य हैं, बीमार कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974 की वैधता के समर्थन में असंशोधित अनुच्छेद 31 सी पर भरोसा करना पूरी तरह से अनावश्यक हो गया क्योंकि अनुच्छेद 31 बी, किसी भी स्थिति में, इसे किसी भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर अमान्य होने से बचाएगा। [268 एफ-एच]

(2) अब या तो राष्ट्रीयकरण अधिनियम वास्तव में और वास्तव में एक कानून था

अधिनियम की धारा 39 में स्पष्ट अनुच्छेद 39 खंड (बी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाना या यह ऐसा कानून नहीं था और धारा 39 में निहित विधायी घोषणा एक रंगीन उपकरण था। अगर यह था

* यह मुख्य टिप्पणी और साथ ही उनके प्रभुता का निर्णय इसमें अच्छा रहेगा।

वामन राव और अन्य का मामला। आदि. वी. भारत संघ और अन्य। एस. सी. आर. के बाद के अंक में प्रकाशित किया जाएगा।

राष्ट्रीयकरण अधिनियम को अनुच्छेद 14,19 के उल्लंघन के आधार पर हमले से बचाने के लिए तब का अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी पर्याप्त होगा।

और 31 और संशोधित अनुच्छेद 31 सी को शामिल करना अनावश्यक होगा और

यदि यह बाद वाला था, तो न तो असंशोधित और न ही संशोधित अनुच्छेद 31 सी

कोई भी आवेदन होगा। इस प्रकार किसी भी स्थिति में, संशोधित अनुच्छेद 31 सी

संवैधानिक वैधता पर निर्णय लेने में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं होगी। राष्ट्रीयकरण अधिनियम। इन परिस्थितियों में, अदालत नहीं हो सकती थी

में किए गए संशोधन की संवैधानिकता की जांच करने का आह्वान किया गया

अनुच्छेद 31 सी। [269 बी-ई]

दत्तात्रेय गोविंद महाजन बनाम। इसके बाद महाराष्ट्र राज्य, [1977] 2 एस. सी. आर. 790 आया। (3) संविधान के अनुच्छेद 368 का खंड (4) असंवैधानिक है और संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुँचाने के रूप में अमान्य है। [288 ई]

अनुच्छेद 368 के खंड (4) में "किसी भी आधार पर" शब्द सबसे व्यापक आयाम के हैं और वे स्पष्ट रूप से इस आधार को भी शामिल करेंगे कि प्रक्रिया

खंड (2) में विहित और इसके परंतुक का पालन नहीं किया गया है। नतीजा यह है कि कि भले ही कोई संशोधन अनुपालन किए बिना किया गया हो

उपखंड (2) में इसके परंतुक सहित निर्धारित प्रक्रिया के साथ, और इसलिए असंवैधानिक है, फिर भी यह चुनौती से मुक्त होगा। [284 ई-एफ]

केशवानंद भारती के मामले के अनुसार संविधान का कोई भी संशोधन

जो उपखंड (2) द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं था और

यदि कोई संशोधन लोक सभा में साधारण बहुमत से पारित किया गया था और राज्यों की परिषद और राष्ट्रपति ने संशोधन को मंजूरी दी, यह

कानून में, कोई संशोधन बिल्कुल नहीं होगा क्योंकि खंड (2) की आवश्यकता यह है कि इसे प्रत्येक सदन के बहुमत से अलग-अलग और उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा पारित किया जाना चाहिए। लेकिन अगर खंड (4) वैध था तो इस तरह की वैधता को चुनौती देना मुश्किल हो जाएगा

संशोधन और यह प्रबल होगा हालांकि एक अनिवार्य कानून की अवहेलना में किया गया था संवैधानिक आवश्यकता। खंड (2) को इसके परंतुक सहित प्रस्तुत किया जाएगा।

पूरी तरह से अनावश्यक और अर्थहीन और इसका प्रिस्क्रिप्शन बन जाएगा

केवल एक कागजी आवश्यकता। इसके अलावा, आवश्यकता को समाप्त करने के अलावा

खंड (2) और उसके परंतुक, खंड (4) के प्रावधानों का यह भी प्रभाव है कि किसी संशोधन को चुनौती से मुक्त कर दिया जाए, भले ही वह संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाता हो या नष्ट कर देता हो और इसलिए यह संसद की संशोधन शक्ति से बाहर है। जब तक खंड (4) बना रहता है, संविधान का एक संशोधन, हालांकि असंवैधानिक और संशोधन पर सीमा का उल्लंघन करने के रूप में शून्य है। केशवानंद भारती के मामले में निर्धारित संसद की शक्ति,

कानून की अदालत में अप्रतिरोध्य होना। इस बहिष्करण का परिणाम

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति यह होगी कि, प्रभावी और सारतः, संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा, 4 एक व्यावहारिक बिंदु से -

देखें, गैर-मौजूद हो जाएं और यह कहना गलत नहीं होगा, गुप्त रूप से

और अप्रत्यक्ष रूप से न्यायिक समीक्षा के बहिष्कार से पार्लिया की संशोधन शक्ति केशव में इस न्यायालय के निर्णय के विपरीत स्थिति व्यापक होगी।

नंद भारती का मामला। यह निस्संदेह संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुंचाएगा, क्योंकि मूल संरचना की दो आवश्यक विशेषताएं हैं।

जिसका उल्लंघन किया जाएगा, अर्थात्, संसद की सीमित संशोधन शक्ति

न्यायपालिका और न्यायिक समीक्षा की शक्ति की जांच करने की दृष्टि से कि क्या कोई

संविधान के तहत प्राधिकरण ने अपनी शक्तियों की सीमाओं को पार कर लिया है।

[284 एफ-एच, 285 ए-डी]

हमारा संविधान एक नियंत्रित संविधान है जो इसके द्वारा बनाए गए और मान्यता प्राप्त विभिन्न प्राधिकरणों को शक्तियां प्रदान करता है और उन मिनर्वा मिल्स लिमिटेड की सीमाओं को परिभाषित करता है।

वी. यूनियन

215

शक्तियाँ। संविधान सर्वोपरि है, देश का सर्वोपरि कानून है और राज्य का कोई अधिकार, कोई विभाग या शाखा नहीं है जो संविधान से ऊपर या बाहर हो या जिसके पास संविधान द्वारा निरंकुश और अप्रतिबंधित शक्तियां हों। संविधान ने शक्ति संबंधों की एक संरचना तैयार की है जो संविधान के तहत साधन के प्रत्येक प्राधिकारी की शक्तियों पर नियंत्रण और संतुलन और सीमाएं स्थापित करती है। राज्य का प्रत्येक अंग, चाहे वह कार्यपालिका हो या विधानमंडल या न्यायपालिका, अपना अधिकार संविधान से प्राप्त करता है और उसे ऐसे अधिकार की सीमाओं के भीतर कार्य करना होता है। संसद भी संविधान की एक रचना है और उसके पास केवल वही शक्तियाँ हो सकती हैं जो उसे संविधान के तहत दी गई हैं। इसके पास संविधान में संशोधन की कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं है और संविधान द्वारा निर्मित एक प्राधिकरण होने के नाते, इसके पास ऐसी अंतर्निहित शक्ति नहीं हो सकती है, लेकिन संशोधन की शक्ति संविधान द्वारा इसे प्रदान की गई है और यह एक सीमित शक्ति है जो इस प्रकार प्रदान की गई है। संसद इस शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान में संशोधन नहीं कर सकती है ताकि इसकी मूल संरचना को बदला जा सके या इसकी पहचान को बदला जा सके। अब, यदि संवैधानिक संशोधन द्वारा, संसद को संशोधन की असीमित शक्ति दी गई थी, तो यह संविधान के तहत एक प्राधिकरण नहीं रहेगा, लेकिन इस पर सर्वोच्च हो जाएगा, क्योंकि इसके पास अपनी मूल संरचना सहित पूरे संविधान को बदलने और यहां तक कि अपनी पहचान को पूरी तरह से बदलकर इसे समाप्त करने की शक्ति होगी। इसलिए, संसद की सीमित संशोधन शक्ति अपने आप में संविधान की एक अनिवार्य शक्ति है, जो इसकी मूल संरचना का एक हिस्सा है, क्योंकि यदि संशोधन की सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में विस्तारित किया गया था, तो

संविधान में बदलाव किया जाएगा। यह एक आवश्यक परिणाम के रूप में होना चाहिए कि संविधान का कोई भी संशोधन, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से,

संसद की संशोधन शक्ति को सीमा से मुक्त करके उसका विस्तार करना।

मूल संरचना की अपरिवर्तनीयता मूल संरचना का उल्लंघन होगी।

और, इसलिए, संसद की संशोधनकारी शक्ति के बाहर। [285 ई-एच, 286 ए-सी]

यह हमारे संविधान का एक मौलिक सिद्धांत है कि प्रत्येक अंग

राज्य, संविधान के तहत प्रत्येक प्राधिकरण अपनी शक्तियों को कॉन से प्राप्त करता है

राज्य के ऐसे भाग जिनके बीच सरकार की शक्तियाँ विभाजित हैं ये हैं: कार्यपालिका, विधानमंडल और न्यायपालिका। हमारे संविधान के तहत

शक्तियों का कोई कठोर पृथक्करण नहीं है, लेकिन एक व्यापक सीमांकन है,

सरकारी कार्यों की जटिल प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, कुछ हद तक

ओवरलैपिंग अपरिहार्य है। संविधान ने एक स्वतंत्र व्यवस्था बनाई है

तंत्र, अर्थात् न्यायपालिका जिसमें न्यायपालिका की शक्ति निहित है।

कार्यकारी कार्रवाई की वैधता और कानून की वैधता निर्धारित करने के लिए समीक्षा विधानमंडल द्वारा पारित किया गया। यह न्यायपालिका का एक गंभीर कर्तव्य है।

राज्य के विभिन्न अंगों को रखने के लिए संविधान, जैसे कि निष्पादन

राज्य और विधानमंडल, उन्हें प्रदत्त शक्ति की सीमाओं के भीतर संविधान द्वारा। न्यायिक समीक्षा की यह शक्ति न्यायपालिका को प्रदान की गई है।

संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 द्वारा। [286 डी, ई, 287 बी-सी]।

यह हमारे संविधान का एक प्रमुख सिद्धांत है कि कोई भी, चाहे जो भी हो।

उच्च पदस्थ और कोई भी प्राधिकारी, चाहे वह कितना भी उच्च क्यों न हो, एकमात्र न्यायाधीश होने का दावा नहीं कर सकता है।

संविधान के तहत इसकी शक्ति या क्या इसके कार्य संविधान के दायरे में हैं

संविधान द्वारा निर्धारित ऐसी शक्ति का जुर्माना। न्यायपालिका अंतर है

संविधान और न्यायपालिका के पूर्ववर्ती को नाजुक कार्य सौंपा गया है

यह निर्धारित करें कि सरकार की प्रत्येक शाखा को क्या शक्ति प्रदान की गई है, या नहीं यह सीमित है, और यदि ऐसा है, तो सीमाएँ क्या हैं और क्या इसकी कोई कार्रवाई है?

संवैधानिक मूल्यों को लागू करना और संवैधानिक सीमाओं को लागू करना। यही सार है। कानून के शासन का, जिसके लिए अन्य बातों के साथ-साथ यह आवश्यक है कि "सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [1981] 1 एस. सी. आर. द्वारा शक्तियों का प्रयोग किया जाए।

216

सरकार चाहे वह विधायिका हो या कार्यपालिका या कोई अन्य प्राधिकरण, संविधान और कानून द्वारा सशर्त होगी। न्यायिक समीक्षा की शक्ति हमारी संवैधानिक प्रणाली का एक अभिन्न अंग है

और इसके बिना कानून की कोई सरकार नहीं होगी और कानून का शासन एक चिढ़ाने वाला भ्रम और अवास्तविकता का वादा बन जाएगा। यदि हमारे संविधान की कोई एक विशेषता है, जो किसी भी अन्य से अधिक, लोकतंत्र और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए बुनियादी और मौलिक है, तो यह न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति है और यह निर्विवाद रूप से संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है। हालाँकि, न्यायिक समीक्षा के लिए प्रभावी वैकल्पिक संस्थागत तंत्र की व्यवस्था संसद द्वारा नहीं की जा सकती है। न्यायिक समीक्षा हमारे संविधान का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है और इसे संविधान की मूल संरचना को प्रभावित किए बिना निरस्त नहीं किया जा सकता है। यदि किसी संवैधानिक संशोधन द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति को छीन लिया जाता है और यह प्रावधान किया जाता है कि विधायिका द्वारा बनाई गई किसी भी कानून की वैधता पर किसी भी आधार पर सवाल नहीं उठाया जाएगा, भले ही वह विधायिका की विधायी क्षमता से बाहर हो या किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन हो, तो यह संविधान के विध्वंस से कम नहीं होगा, क्योंकि यह संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का मजाक बनाएगा और मौलिक अधिकारों को अर्थहीन और निरर्थक बना देगा। इसी प्रकार यदि कोई ऐसा संवैधानिक संशोधन किया जाता है जिसका प्रभाव न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति को छीनने और यह प्रावधान करने का होता है कि संविधान में किया गया कोई भी संशोधन किसी भी आधार पर सवाल उठाने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, भले ही ऐसा संशोधन मूल संरचना का उल्लंघन करता हो और इसलिए, संसद की संशोधनकारी शक्ति के बाहर हो, तो यह संसद को उसके द्वारा किए गए कार्यों की संवैधानिक वैधता का एकमात्र न्यायाधीश बना देगा और जो प्रभावी और सारतः, संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा को समाप्त कर देगा और संविधान की मूल संरचना को प्रभावित करेगा। [237 एफ-एच, 288 ए-ई]

जेडए

" बी.

सी.

डी.

(4) संविधान के अनुच्छेद 368 का खंड (5) असंवैधानिक है और

ई.

शून्य, [289E-F]

केशवानंद भारती के मामले के फैसलों के बाद और श्रीमती. इंदिरा गांधी के मामले में इसमें कोई संदेह नहीं था कि संसद की संशोधन शक्ति सीमित थी और यह संविधान की मूल संरचना को बदलने के लिए संसद के लिए सक्षम नहीं थी और खंड (5) उस संदेह को दूर नहीं कर सका जो मौजूद नहीं था। खंड (5) वास्तव में संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा को हटाने और इसे सीमित शक्ति से असीमित शक्ति में सुधारने का प्रयास कर रहा था। यह स्पष्ट रूप से और निर्विवाद रूप से संसद की ओर से एक व्यर्थ की कवायद थी। [288 जी-एच, 289 ए]

एफ.

संविधान ने संसद को केवल एक सीमित संशोधन शक्ति प्रदान की है, ताकि वह संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट न कर सके और संसद उस सीमित संशोधन शक्ति का प्रयोग करके उस शक्ति को एक पूर्ण और असीमित शक्ति में परिवर्तित न कर सके। यदि संसद को संशोधन की पूर्ण शक्ति में प्रदत्त सीमित संशोधन शक्ति का विस्तार करने की अनुमति थी, तो संशोधन की मूल शक्ति पर कोई सीमा रखना अर्थहीन था। संशोधन की सीमित शक्ति रखने वाली संसद उस शक्ति का प्रयोग करने की सीमा से छुटकारा नहीं पा सकती है और इसे एक पूर्ण शक्ति में परिवर्तित नहीं कर सकती है। अनुच्छेद 368 का खंड (5), जिसमें संसद की संशोधन करने की शक्ति पर लगी सीमा को हटाने की मांग की गई थी, संसद की संशोधन करने की शक्ति से बाहर है। तथापि, खंड (5) संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा को हटाकर एक नियंत्रित संविधान को अनियंत्रित संविधान में परिवर्तित करने का प्रयास करता है जो स्वयं संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है और इसलिए यह मूल संरचना का उल्लंघन है। [289 बी-ई]

एच:

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन

217

इसके विपरीत -

(5) संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन करना और मौलिक अधिकारों पर निदेशक सिद्धांतों को प्रधानता देना, उनके बीच संघर्ष की स्थिति में, नुकसान नहीं पहुंचाता है

या संविधान की मूल संरचना को नष्ट करना और संशोधन के दायरे में है।

संसद की शक्ति और इसलिए संशोधित अनुच्छेद 31 सी संवैधानिक है और

वैध है। [342 ई-एफ}

(i) यह कहना सही नहीं है कि केवल मौलिक अधिकार इन पर आधारित हैं -

मानवाधिकार। मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों को लागू नहीं किया जा सकता है। दो अलग और सख्ती से परिभाषित श्रेणियों में। मोटे तौर पर कहा जाए तो, मौलिक

अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि निदेशक सिद्धांत शामिल हैं।

सामाजिक और आर्थिक अधिकार। दोनों स्पष्ट रूप से मानव के व्यापक दायरे का हिस्सा हैं।

अधिकार। यहां तक कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को भी अपनाया गया

10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र की आम सभा में शामिल हैं: न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले अधिकार (अनुच्छेद 1 से 21) बल्कि सामाजिक अधिकार भी।

और आर्थिक अधिकारों का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना है (आरती क्लेस 22 से 29)। जनरल द्वारा अपनाए गए दो अन्य अंतर्राष्ट्रीय करार

मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए सभा, अर्थात्, पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा

नागरिक और राजनीतिक अधिकार और आर्थिक, सामाजिक पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा

और सांस्कृतिक अधिकार भी इसी प्रभाव के हैं। सामाजिक-आर्थिक अधिकार

निर्देशक सिद्धांतों में पुनर्स्थापित मानवाधिकारों का उतना ही हिस्सा हैं जितना कि

मौलिक अधिकार। एक साथ, उनका उद्देश्य ओ. बी. जे. ई. सी. को पूरा करना है संविधान की प्रस्तावना में दिए गए सिद्धांत और एक समतावादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए

राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ सूचित सामाजिक व्यवस्था और सुनिश्चित करना

व्यक्ति की गरिमा न केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के लिए बल्कि पूरे व्यक्ति के लिए देश के लोग जिनमें हैव-नॉट और विकलांग, सबसे निचले स्तर के लोग शामिल हैं

और हार गए। [320 सी-एच]

केशवानंद भारती बनाम. केरल राज्य, [1973] पूरक। एस. सी. आर., संदर्भित।

((ii) यद्यपि मौलिक अधिकार और निर्देशक सिद्धांत इस में दिखाई देते हैं -

अलग-अलग संस्थाओं के रूप में संविधान, के बीच ऐसा कोई सीमांकन नहीं किया गया था

संविधान के निर्माण से पहले की अवधि के दौरान। इन से

महत्व और महत्व के दृष्टिकोण से, दोनों के बीच कोई अंतर नहीं किया गया था

संविधान निर्माताओं और दोनों द्वारा न्यायसंगत और गैर-न्यायसंगत अधिकार

मौलिक अधिकारों के रूब्रिक के हिस्से के रूप में माना जाता था, केवल

अंतर यह है कि जबकि मौलिक अधिकार लागू करने योग्य थे कानून के न्यायालयों, सामाजिक नीति के निदेशक सिद्धांतों को नहीं होना था

लागू करने योग्य। [321 ए-बी, 322 सी-डी]

(iii) मौलिक अधिकारों की क्षमता को इस आधार पर सीमित करना कि वे

केवल नकारात्मक दायित्व हैं जिनसे राज्य को अलग होने की आवश्यकता होती है

सकारात्मक कार्रवाई करना अस्वीकार्य है। [323 डी-सी]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह कहा जाता है कि मौलिक अधिकार नकारात्मक झुकाव से संबंधित हैं।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण न करने के लिए राज्य के निर्देश, जबकि निर्देश

सिद्धांत राज्य पर कुछ प्रकार के सकारात्मक दायित्व लागू करते हैं

क्रियाएँ। हालांकि बाद वाला भाग सच हो सकता है कि निर्देशक सिद्धांत

कुछ मौलिक अधिकार जिनका परिणाम सकारात्मक भी होता है। कि मौलिक अधिकारों के नए आयाम खोले जा रहे हैं

सर्वोच्च न्यायालय और मौलिक अधिकारों का पूरा न्यायशास्त्र एक सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्ट [1981] 1 एस. सी. आर. में है।

218

पुनरुत्थान मूल्यांकन का चरण। इसके अलावा, तीन अनुच्छेद हैं, अर्थात् -

मौलिक की श्रेणी के भीतर अनुच्छेद 15 (2), अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 23

अधिकार जो व्यक्ति को दूसरे की कार्रवाई से बचाने के लिए बनाए गए हैं निजी नागरिक और यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य पर सकारात्मक दायित्वों को लागू करते हैं

व्यक्ति के लिए यह सुरक्षा। [322 एफ-एच, 323 ए-बी]। हुसैनारा खातून बनाम। बिहार राज्य, [1979] 3 एस. सी. आर. 160; माधव हया वदनराव होसकोट बनाम। महाराष्ट्र राज्य, [1979] 1 एससीआर 192 और सुनील बत्रा: आदि वी। दिल्ली प्रशासन और अन्य। आदि, [1979] 1 एस. सी. आर. 392, इसके बाद आया।

((iv) मौलिक अधिकारों और अधिकारों के बीच एकमात्र विशिष्टता

राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत यह हैं कि जबकि पूर्व में बनाए गए हैं

मूल सिद्धांत अपने स्वभाव से न्यायिक प्रवर्तन में असमर्थ हैं और इसके अलावा, उन अधिकारों में से कई का कार्यान्वयन इस पर निर्भर करेगा

देश में आर्थिक विकास की स्थिति, आवश्यक उपलब्धता

वित्त और उद्देश्यों और मूल्यों की प्राथमिकता के बारे में सरकार का मूल्यांकन।

लेकिन केवल इसलिए कि निदेशक सिद्धांत गैर-न्यायोचित हैं, यह नहीं है

इसका पालन करें कि वे किसी भी तरह से मौलिक के अधीन या हीन हैं अधिकार। [323 बी-सी, ई-एफ]।

(v) भारतीय संविधान सबसे पहले एक सामाजिक दस्तावेज है। इसके अधिकांश प्रावधान या तो सीधे लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से हैं

सामाजिक-आर्थिक क्रांति या इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक शर्तों को कम करके इस क्रांति को बढ़ावा देने का प्रयास। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोकतंत्र में मौलिक अधिकार महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, लेकिन आम आदमी और जनता के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय के बिना कोई वास्तविक लोकतंत्र नहीं हो सकता है। सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का निर्माण करना जिसमें सामाजिक और आर्थिक स्थिति हो सकती है: सभी के लिए न्याय, निदेशक सिद्धांतों का विषय है। यह निर्देशक सिद्धांत हैं जो लोकतंत्र की जड़ों को पोषित करते हैं, इसे ताकत और शक्ति प्रदान करते हैं और इसे एक वास्तविक सहभागी लोकतंत्र बनाने का प्रयास करते हैं जो न केवल एक राजनीतिक लोकतंत्र बना रहता है, बल्कि एक सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र भी बन जाता है जिसमें सभी को उनकी शक्ति, स्थिति या धन की परवाह किए बिना मौलिक अधिकार उपलब्ध होते हैं। निर्देशक सिद्धांतों के गतिशील प्रावधान मौलिक अधिकारों के स्थिर प्रावधानों को लागू करते हैं। फंडा मानसिक अधिकारों का उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है, लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता को उस सामाजिक-आर्थिक संरचना से अलग नहीं माना जा सकता है जिसमें इसे संचालित किया जाना है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज की सामाजिक और आर्थिक संरचना के आकार और रूप के बीच एक वास्तविक संबंध है। उन लोगों की बड़ी आबादी के लिए कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं हो सकती है जो अभाव और अभाव से पीड़ित हैं और जिन्हें शोषणकारी आर्थिक प्रणाली द्वारा अपने व्यक्तिगत अधिकारों से धोखा दिया जाता है। उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता सामाजिक और आर्थिक रूप से अधिक शक्तिशाली वर्ग की स्वतंत्रता के साथ संघर्ष में आएगी और इस प्रक्रिया में विकृत या नष्ट हो जाएगी। वर्तमान समाज में वास्तविक विवाद सत्ता और स्वतंत्रता के बीच नहीं हैं, बल्कि एक रूप के बीच हैं: स्वतंत्रता और एक और। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक प्रणाली के तहत, यह कुछ लोगों की स्वतंत्रता है जो कई लोगों की स्वतंत्रता के साथ संघर्ष में है। द.

इसलिए, निदेशक सिद्धांत राज्य पर सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के निर्माण के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने का दायित्व अधिरोपित करते हैं जिसमें सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था होगी ताकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता एक पोषित मूल्य और व्यक्ति की गरिमा

एक जीवित वास्तविकता बन जाए, न केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के लिए बल्कि मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के पूरे लोगों के लिए।

वी. यूनियन

219

देश। इस प्रकार, निदेशक सिद्धांतों को संवैधानिक योजना में बहुत उच्च स्थान प्राप्त है और यह केवल निदेशक सिद्धांतों में परिकल्पित सामाजिक-आर्थिक ढांचे के ढांचे में है कि मौलिक अधिकार संचालित करने के लिए अभिप्रेत हैं, क्योंकि तभी वे हमारे लाखों गरीब और वंचित लोगों के लिए सार्थक और महत्वपूर्ण बन सकते हैं, जिनके पास जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं भी नहीं हैं और जो गरीबी स्तर से नीचे रह रहे हैं। [323 एफ-जी, 324 सी-एच, 325 ए-बी]।

(vi) संविधान का अनुच्छेद 37 महत्वपूर्ण महत्व का अनुच्छेद है।

जैसे आयरिश संविधान जिसने हमारे संविधान में निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए प्रेरणा प्रदान की। अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि निदेशक सिद्धांत किसी भी अदालत द्वारा लागू नहीं किए जाएंगे, देश के शासन में निदेशक सिद्धांतों को अनिवार्य बनाता है और यह अधिनियमित करता है कि कानून बनाने में निदेशक सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगाः संविधान निर्माताओं द्वारा किए गए परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं और वे इस प्रावधान के पूर्ण परिवर्तन या कायाकल्प को लाने का प्रभाव रखते हैं, जो मूल रूप से महत्व और प्रभावकारिता को बदल देते हैं। निदेशक सिद्धांतों को न्यायालय के संज्ञान से बाहर नहीं रखा गया है, जैसा कि आयरिश संविधान के तहत किया गया है; उन्हें केवल अदालत द्वारा गैर-प्रवर्तनीय बनाया गया है। केवल इसलिए कि निर्देश

सिद्धांत कानून की अदालत में लागू करने योग्य नहीं हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि वे

संविधान के किसी भी भाग के लिए अधीनस्थ महत्व के हैं या वे कैनेट राज्य पर बाध्यकारी दायित्व या कर्तव्यों का निर्माण करता है। महत्वपूर्ण परीक्षण जो

लागू किया जाना है कि क्या निदेशक सिद्धांत कोई दायित्व लागू करते हैं या

राज्य पर कर्तव्य, यदि वे करते हैं, तो राज्य एक संवैधानिक द्वारा बाध्य होगा

इस तरह के दायित्वों या कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अधिदेश, भले ही कोई अनुरूप न हो

अधिकार किसी भी व्यक्ति में बनाया जाता है जिसे न्यायालय में लागू किया जा सकता है। इस पर प्रश्न अनुच्छेद 37 जोरदार है और बिना किसी अनिश्चित शब्दों में इस बात को स्पष्ट करता है।

संविधान द्वारा इससे अधिक स्पष्ट भाषा का उपयोग नहीं किया जा सकता था

निर्माता निर्देशात्मक सिद्धांतों को राज्य के लिए बाध्यकारी बना सकते हैं और

इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य ऐसा करने के लिए एक संवैधानिक दायित्व के अधीन है

यह अधिदेश अनुच्छेद 37 में निहित है। वास्तव में, निर्देश का पालन न करना

राज्य के सिद्धांत असंवैधानिक होंगे और यह

न केवल उन लोगों के साथ विश्वास का उल्लंघन है जिन्होंने इसे लागू किया

राज्य पर संवैधानिक दायित्व लेकिन यह एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी प्रदान करेगा संविधान का अर्थहीन और व्यर्थ। निर्देश के उद्देश्य के लिए

सिद्धांतों के अनुसार, "राज्य" का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 13 के तहत दिया गया है।

मौलिक अधिकारों के उद्देश्य के लिए। इसका मतलब यह है कि एक ही

राज्य जो निधि के उल्लंघन में कोई भी कार्रवाई करने से प्रतिबंधित है

मानसिक अधिकारों को अनिश्चित शब्दों में कहा गया है कि उन्हें निर्देश का सम्मान करना चाहिए

देश के शासन में बुनियादी सिद्धांत और सकारात्मक रूप से उन्हें कानून बनाने में लागू करने के लिए अनिवार्य। यह एक विरोधाभास को जन्म देता है।

स्थिति और इसके निहितार्थ दूरगामी हैं। एक तरफ राज्य है,

अनुच्छेद 13 में संवैधानिक निषेधाज्ञा द्वारा किसी को भी बनाने से प्रतिबंधित किया गया है

कानून बनाना या कोई कार्यकारी कार्रवाई करना जो किसी भी मौलिक का उल्लंघन करे

सही 'और साथ ही यह संवैधानिक जनादेश द्वारा निर्देशित है

अनुच्छेद 37 देश के शासन में निदेशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए

और निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाना। दोनों एक बार

अनुच्छेद 37 के तहत और यदि यह कहा जाना था कि राज्य ऐसा नहीं कर सकता है एक कानून क्योंकि यह एक मौलिक अधिकार के साथ संघर्ष में आता है, यह केवल कर सकते हैं

इस आधार पर हो कि मौलिक अधिकार एक उच्च आधार पर खड़े हैं और हैं

निर्देशक सिद्धांतों पर वरीयता। लेकिन यह कहना सही नहीं है कि

कोष के निर्माण में निदेशक सिद्धांतों का आयात करके मानसिक अधिकार। की तर्कसंगतता निर्धारित करने के उद्देश्य से

मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबंध न्यायालय वैध रूप से ले सकता है

निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित कानून, मौलिक अधिकार पर इसके द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को माना जा सकता है -

तर्कसंगत बनें। [325 सी, ई-एच, 326 ए-डी, 327 एच, 328 ए-एच, 329 ए-बी]।

बिहार राज्य बनाम। कामेश्वर सिंह, [1952] एस. सी. आर. 889; पथुम्मा बनाम। राज्य

केरल का, [1978] 2 एस. सी. आर. 537; मेसर्स. कस्तुरी लाल लक्ष्मी रेड्डी आदि। जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्र। , [1980] 3 एस. सी. आर पी. 1338 , आवेदन किया।

मद्रास राज्य बनाम। चम्पकम दोराईराजन, [1951] एस. सी. आर. 529, इससे असहमत थे।

केरल शिक्षा विधेयक, [1959] एस. सी. आर. 995, में संदर्भित।

.

. ((vii) यदि कोई विधि किसी निर्देश को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित की जाती है।

सिद्धांत और यह एक मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध लगाता है, इस तरह के प्रतिबंध की अनुचित या सार्वजनिक हित में नहीं होने के रूप में निंदा करना मुश्किल होगा। इसी तरह जहां सामाजिक और आर्थिक न्याय के संवैधानिक लक्षय को आगे बढ़ाने के लिए एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए एक कानून अधिनियमित किया जाता है, वह कानून के समक्ष समानता के औपचारिक और सैद्धांतिक दृष्टिकोण के साथ संघर्ष कर सकता है, लेकिन यह लगभग हमेशा अपने कुल परिमाण और आयाम में कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत के अनुरूप होगा, क्योंकि संविधान में समानता खंड कानून के समक्ष केवल औपचारिक समानता की बात नहीं करता है, बल्कि वास्तविक और मूल समानता की अवधारणा को शामिल करता है जो विशाल सामाजिक और आर्थिक मतभेदों के कारण उत्पन्न होने वाली असमानताओं पर हमला करता है और परिणामस्वरूप सामाजिक और आर्थिक न्याय का एक आवश्यक घटक है। समतावाद का गतिशील

सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा को पुष्ट करता है; यह इसके आवश्यक तत्वों में से एक है और जहां समतावादी सिद्धांत का उल्लंघन होता है, वहां कोई वास्तविक सामाजिक और आर्थिक न्याय नहीं हो सकता है। यदि, इसलिए, विधायिका द्वारा कोई ऐसा कानून अधिनियमित किया जाता है जो वास्तव में और वास्तविक रूप से सामाजिक और आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए है, तो ऐसा कानून समतावाद के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करता है और कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत के अनुरूप है जिसे उसके सख्त और औपचारिक अर्थों में नहीं, बल्कि उसके गतिशील और सक्रिय परिमाण में समझा जाता है। इस संदर्भ में, न्यायालय यह अनुमान लगाने में अन्यायपूर्ण नहीं होगा कि सामाजिक और आर्थिक न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से अधिनियमित एक कानून अनुच्छेद 14 या 19 के तहत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करेगा। यह संवैधानिक प्रावधानों का सही ढोंग होने के कारण, संशोधित अनुच्छेद 31 सी एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से अधिनियमित कानून को प्रतिरक्षा प्रदान करके संवैधानिक योजना के तहत मौजूदा स्थिति को संहिताबद्ध करने के अलावा और कुछ नहीं करता है, ताकि अनावश्यक रूप से व्यर्थ और समय लेने वाला विवाद समाप्त हो जाए कि क्या ऐसा कानून अनुच्छेद 14 या 19 का उल्लंघन करता है। संशोधित अनुच्छेद 31 सी को परिस्थितियों में संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करने वाला नहीं माना जा सकता है। [329 एफ-एच, 330 ए-एफ]।

(viia) एक निर्देश को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से अधिनियमित एक कानून

अनुच्छेद 37 के तहत राज्य पर निर्धारित संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में सिद्धांत अमान्य नहीं होगा, क्योंकि यह एक मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। यदि न्यायालय का विचार है कि यह अमान्य है, तो यह फंड मानसिक अधिकारों को निदेशक सिद्धांतों से ऊपर रखना होगा, एक ऐसी स्थिति जिसका मिनर्वा मिल्स लिमिटेड द्वारा बिल्कुल भी समर्थन नहीं किया गया है।

वी. यूनियन

221

उनके अधिनियमन का इतिहास और संवैधानिक योजना द्वारा भी। इन दोनों

संवैधानिक दायित्व, एक मौलिक अधिकारों के संबंध में और दूसरा निदेशक सिद्धांतों के संबंध में, समान शक्ति और योग्यता के हैं और वहाँ

कोई कारण नहीं है कि संघर्ष के मामले में, पहले वाले को प्राथमिकता दी जानी चाहिए अंतिम के ऊपर। संविधान का कोई विशेष अधिदेश है या नहीं

न्यायसंगत का इसके महत्व और महत्व से कोई लेना-देना नहीं है।

व्यवहार्यता अपने आप में कभी भी एक संवैधानिक जनादेश देने का आधार नहीं हो सकती है।

दूसरे की तुलना में एक ऊँचे आसन पर। अधिक भार देने का प्रभाव

मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक अधिदेश होगा -

निदेशक सिद्धांतों को एक माध्यमिक स्थिति में हटा दें और

संवैधानिक आदेश कि निदेशक सिद्धांत मौलिक होंगे

देश का शासन और इसे लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

कानून बनाने में। यह शब्दों को प्रभावी बनाने से इनकार करने के बराबर होगा।

" देश के शासन में मौलिक "और एक संवैधानिक आदेश

जिसे संविधान द्वारा मौलिक घोषित किया गया है, वह रेन होगा।

गैर-मौलिक। परिणाम यह होगा कि एक सकारात्मक जनादेश

राज्य को कानून बनाने का आदेश देने वाला संविधान एक द्वारा पराजित किया जाएगा

मौलिक अधिकार का अतिक्रमण न करने का नकारात्मक संवैधानिक दायित्व

और एक सकारात्मक संवैधानिक आदेश के अनुसार विधायिका द्वारा बनाया गया कानून अवैध घोषित किया जाएगा और असंवैधानिक घोषित किया जाएगा। यह स्पष्ट रूप से होगा

संवैधानिक योजना के विपरीत क्योंकि संविधान समझौता नहीं करता है

मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व के लिए एक उच्च स्थान

निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक दायित्व पर और नहीं

कहते हैं कि निदेशक सिद्धांतों का कार्यान्वयन केवल इसके भीतर होगा

मौलिक अधिकारों पर अध्याय में निर्धारित अनुमेय सीमाएँ। [330 ए,

331 ए-एफ]।

करीम्बिल कुन्हीकोमन बनाम। केरल राज्य, [1962] 1 एस. सी. आर. 319 (ऊपर) संदर्भित

को।

(viii) यह कहना सही नहीं है कि आरती के संशोधन के परिणामस्वरूप

31 सी संविधान को अब उसके सिर पर खड़ा किया गया है न कि उसके सिर पर। पैर। ' संशोधनों से पहले, मौलिक अधिकारों में एक उच्चतर या उच्चतर अधिकार था।

निर्देशात्मक सिद्धांतों की तुलना में संवैधानिक योजना में स्थिति और वहाँ एसी है संवैधानिक ढांचे के किसी भी तरह के विध्वंस का कोई सवाल ही नहीं है।

संशोधन द्वारा। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि कॉन्स्टी की मंशा

-शिक्षा निर्माताओं का कहना था कि मौलिक अधिकार सामाजिक दायरे में काम करने चाहिए।

आर्थिक संरचना या निदेशक सिद्धांत द्वारा परिकल्पित एक व्यापक निरंतरता,

केवल तभी मौलिक अधिकार सभी के लिए प्रयोग करने योग्य बनेंगे और

मौलिक अधिकारों और निदेशक प्रिंट्स के बीच एक उचित संतुलन और सामंजस्य

शिष्य सुरक्षित हो गए। इसलिए संविधान निर्माताओं ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि

फंडा के संबंध में संवैधानिक दायित्व के बीच संघर्ष उत्पन्न होगा

निर्देशक सिद्धांतों के संबंध में मानसिक अधिकार और संवैधानिक अधिदेश।

लेकिन अगर इन दो संवैधानिक जनादेशों के बीच एक संघर्ष उत्पन्न होता है

मौलिक चरित्र, क्योंकि संविधान ने कोई उत्तर नहीं दिया और

शायद इस वजह से कि ऐसी स्थिति का अनुमान नहीं था, समस्या थी संसद द्वारा हल किया जाना था और कुछ कार्यप्रणाली विकसित करनी थी

संघर्ष की संभावना को समाप्त करने के लिए चाहे वह कितना भी दूर हो।

[331 जी-एच, 332 ए-डी]।

संसद ने यह विचार रखा कि इस संबंध में संवैधानिक दायित्व -

निर्देशात्मक सिद्धांतों को संवैधानिक दायित्वों पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों के संबंध में, क्योंकि मौलिक लोकतांत्रिक तरीके को बनाए रखने के लिए अधिकार हालांकि बहुमूल्य और मूल्यवान हैं

जीवन, गरीबों के लिए बिल्कुल कोई अर्थ नहीं है, दलित और आर्थिक रूप से

पिछड़े वर्ग के लोग, जो दुर्भाग्य से भारत के अधिकांश लोगों का गठन करते हैं और मौलिक अधिकारों को सार्थक बनाने का एकमात्र तरीका उनके लिए निर्देशात्मक सिद्धांतों को लागू करना है। सिद्धांतों का उद्देश्य एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति लाना और एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना है जहां सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा और न केवल कुछ भाग्यशाली लोग बल्कि भारत के लाखों लोग स्वतंत्रता और विकास के फल में भाग ले सकेंगे। और मौलिक अधिकारों का प्रयोग करें। अतः संसद ने अनुच्छेद 31 सी में यह प्रावधान करने के लिए संशोधन किया कि संघर्ष के मामले में अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता दी जाएगी और बाद वाला अनुच्छेद पहले वाले को स्थान देगा। निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने का सकारात्मक संवैधानिक आदेश, अनुच्छेद 14 और 19 में सन्निहित मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करने के नकारात्मक संवैधानिक दायित्व पर प्रबल होगा। [333 सी-एफ]।

संसद ने अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया क्योंकि उसे एहसास हुआ कि

" यदि राज्य ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने में विफल रहता है जिसमें सभी मौलिक स्वतंत्रताओं का आनंद ले सकें, तो कुछ लोगों की स्वतंत्रता कई लोगों की दया पर होगी और फिर सभी स्वतंत्रताएँ समाप्त हो जाएंगी "और" इसलिए, अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए, विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोगों को इसका एक हिस्सा अलग करना होगा "। इसलिए, यह बिल्कुल भी नहीं कहा जा सकता है कि संविधान की मूल संरचना प्रभावित होती है जब समान रूप से मौलिक चरित्र के दो संवैधानिक अधिदेशों के बीच संभावित दूरस्थ संघर्ष को हल करने के लिए एक कार्यप्रणाली विकसित करने के लिए, संसद अनुच्छेद 31 सी के संशोधन के माध्यम से निर्णय लेती है कि इस तरह के संघर्ष की स्थिति में अनुच्छेद 14 और 19 के तहत मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक अधिदेश पर निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक अधिदेश प्रबल होगा। अनुच्छेद 31 सी में किया गया संशोधन संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाने के साथ-साथ कुछ व्यक्तियों के अधिकारों के विरुद्ध समुदाय के सदस्यों के अधिकारों को मौलिक महत्व देकर और एक ऐसी समतावादी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए संविधान के उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए इसे मजबूत और फिर से लागू करता है जहां सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा, देश में मानवता के कम दृश्यता वाले क्षेत्रों सहित हर कोई मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होगा और व्यक्ति की गरिमा और मानव व्यक्ति के मूल्य जो पोषित मूल्य हैं, केवल कुछ लोगों के अनन्य विशेषाधिकार नहीं रहेंगे, बल्कि कई लोगों के लिए एक जीवित वास्तविकता बन जाएंगे। [334 एच, 335 ए-डी]।

(ix) समतावाद का सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक न्याय का एक अनिवार्य तत्व है और इसलिए, जहां सामाजिक और आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए कोई कानून बनाया जाता है, तो यह समतावादी सिद्धांत के विपरीत नहीं होगा और इसलिए मूल संरचना का उल्लंघन नहीं होगा, भले ही यह संकीर्ण और औपचारिक अर्थों में कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन करता हो। कोई भी कानून जो वास्तव में और वास्तव में एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने

के लिए है, समतावादी सिद्धांत के साथ असंगत नहीं हो सकता है और इसलिए अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के खिलाफ संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत इसे दिए गए संरक्षण का मूल संरचना को नुकसान पहुंचाने का प्रभाव नहीं हो सकता है। इसलिए, अनुच्छेद 31 सी के संशोधन में शामिल मूल संरचना का कोई उल्लंघन नहीं है। वास्तव में, यह स्वीकार किया जाता है कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी संवैधानिक रूप से मान्य था, यह केवल इस आधार पर हो सकता है कि

संविधान के मूल ढांचे को नुकसान नहीं पहुँचाया या नष्ट नहीं किया, यह नहीं कहा जा सकता कि संशोधित अनुच्छेद 31 सी मूल ढांचे का उल्लंघन करता है। यदि अनुच्छेद 14 और 19 में सन्निहित मौलिक अधिकारों का बहिष्करण मूल संरचना को प्रभावित किए बिना अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए वैध रूप से किया जा सकता है, तो ये

वाय + + "

1

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. पी. यूनियन

223

1

अन्य निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए मौलिक अधिकारों को बाहर नहीं किया जा सकता है। यदि अनुच्छेद 39 के खंड (ख) और (ग) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक दायित्व को अनुच्छेद 14 के तहत मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व पर प्राथमिकता दी जा सकती है।

और 19, सिद्धांतों में कोई कारण नहीं है कि अन्य निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक दायित्व को ऐसी प्राथमिकता क्यों नहीं दी जा सकती है जो समान आधार पर खड़े हैं। इसे पकड़ना असंगत होगा

संशोधित अनुच्छेद 31 सी अमान्य हो जाता है जब केशवानंद भारती के बहुमत निर्णय और 9 मई, 1980 के वामन राव के मामले में आदेश द्वारा असंशोधित अनुच्छेद 31 सी को वैध माना जाता है। [335 ई-एच, 336 ए-सी]।

(x) संशोधित अनुच्छेद 31 सी की भाषा से यह स्पष्ट है कि

कानून जो अनुच्छेद 14 और 19 के तहत चुनौती से संरक्षित है, कानून देने वाला है।

किसी भी निर्देश को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति पर प्रभाव

सिद्धांत। जब भी, इसलिए, किसी कानून के लिए किसी भी संरक्षण का दावा किया जाता है

संशोधित अनुच्छेद 31 सी, न्यायालय के लिए यह जांच करना आवश्यक है कि क्या

राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाया गया है निर्देशात्मक सिद्धांतों में से किसी एक या अधिक को सुरक्षित करना और यह केवल तभी है जब

न्यायिक जांच के परिणामस्वरूप अदालत इतनी संतुष्ट है कि अदालत मान जाएगी

यह सच है कि संशोधित अनुच्छेद में उपयोग किए गए शब्द "प्रभावी कानून" हैं राज्य की नीति "लेकिन राज्य की नीति जो वहां विचार की जाती है

निदेशक सिद्धांतों को लागू करने की इस नीति के अनुसरण में अधिनियमित और यह एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने का प्रयास करता है, यह दोनों से

व्याकरण और भाषा की बात, यह कहना सही होगा कि यह देने के लिए बनाया गया है ऐसे निदेशक सिद्धांत को प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति का प्रभाव। द.

"राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून" शब्द इतने व्यापक नहीं हैं, लेकिन

संदर्भ और टकराव जिसमें वे होते हैं, वे संदर्भित करने के लिए अभिप्रेत हैं

केवल लागू करने या प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित कानून के लिए निर्देशात्मक सिद्धांतों में से एक या अधिक। [337 ए-एफ]।

(xi) वह न्यायालय जिसके समक्ष किसी विशेष कानून के लिए संरक्षण का दावा किया जाता है।

इसलिए संशोधित अनुच्छेद-31 सी के तहत इस बात की जांच करनी होगी कि क्या

ऐसा कानून एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया जाता है, क्योंकि वास्तव में यह

द्वारा प्रस्तुत निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कुलर कानून लागू किया गया है राज्य का कोई अर्थ या मूल्य नहीं होगा; यह वह न्यायालय है जो

प्रश्न निर्धारित करने के लिए। फिर से यह पर्याप्त नहीं है कि कुछ हो सकता है

कानून के प्रावधान और निदेशक सिद्धांत के बीच संबंध। द. संबंध कानून और निदेशक सिद्धांत के बीच होना चाहिए और यह होना चाहिए

एक वास्तविक और महत्वपूर्ण संबंध बनें। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कोई कानून संतुष्ट करता है

इस परीक्षण, अदालत को तथ्य और सार की जांच करनी होगी, सही

कानून की प्रकृति और चरित्र के साथ-साथ इसकी रचना और विषय वस्तु इसे अपने उद्देश्य और दायरे के साथ मिलकर निपटाया जाता है। यदि इस तरह की जाँच पर,

अदालत ने पाया कि कानून का प्रमुख उद्देश्य प्रभावी बनाना है

निदेशक सिद्धांत, यह संशोधित के तहत कानून को संरक्षण प्रदान करेगा

अनुच्छेद 31 सी। लेकिन अगर अदालत को पता चलता है कि कानून हालांकि इसके लिए पारित किया गया है एक निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी बनाना, सार और सार में, सहायक के लिए एक है

एक अनधिकृत उद्देश्य को पूरा करना-कवर नहीं किए जाने के अर्थ में अनधिकृत किसी भी निदेशक सिद्धांत द्वारा-इस तरह के कानून का संरक्षण नहीं होगा

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया गया। संशोधित अनुच्छेद 31 सी आई को संरक्षण नहीं देता है

संबंध और कानून का प्रमुख उद्देश्य प्रभाव देना होना चाहिए निदेशक सिद्धांत, और वह एक ऐसा मामला है जिसे अदालत को तय करना होगा

इससे पहले कि संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत संरक्षण के लिए किसी भी दावे की अनुमति दी जा सके।

[337 एफ-एच, 338 ए-बी, एफ-जी]।

संशोधित अनुच्छेद 31 सी में उपयोग किए गए शब्द हैं: प्रभावी करने वाला कानून

भाग IV में निर्धारित सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति और एक सादे प्राकृतिक निर्माण पर इन शब्दों में शामिल नहीं हैं।

कानून के सभी प्रावधान लेकिन केवल वे जो निर्देश को प्रभावी बनाते हैं

सिद्धांत। इसलिए, यह किसी क़ानून का प्रत्येक प्रावधान नहीं है जिसे किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के प्रमुख उद्देश्य से अधिनियमित किया गया है जो संरक्षण का हकदार है, बल्कि केवल क़ानून के वे प्रावधान हैं जो

निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए मूल रूप से और अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं जो संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत संरक्षित हैं। यदि क़ानून में कोई अन्य प्रावधान हैं जो इस श्रेणी में नहीं आते

हैं, तो वे संरक्षण के हकदार नहीं होंगे और उनकी वैधता को अनुच्छेद 14 और 19 के संदर्भ द्वारा आंका जाएगा। जहां, इसलिए, संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत किसी क़ानून के संबंध में संरक्षण का दावा किया जाता है, वहां अदालत को पहले यह निर्धारित करना होगा कि क्या कानून और निदेशक सिद्धांत के बीच वास्तविक और पर्याप्त संबंध है और कानून का प्रमुख उद्देश्य ऐसे निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाना है और यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो अदालत को तब विचार करना होगा कि निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए मूल रूप से और अनिवार्य रूप से कानून के कौन से प्रावधान हैं और केवल उन प्रावधानों को संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण देना होगा। यह प्रश्न कि क्या निर्देशात्मक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए कानून का कोई विशेष प्रावधान मूल रूप से और अनिवार्य रूप से आवश्यक है, काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि ऐसा प्रावधान निर्देशात्मक सिद्धांत के कार्यान्वयन के साथ कितना निकटता से और अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यदि न्यायालय को लगता है कि कोई विशेष प्रावधान सहायक या आनुषंगिक है या अनिवार्य रूप से और अभिन्न रूप से निदेशक सिद्धांत के कार्यान्वयन से जुड़ा नहीं है या ऐसी प्रकृति का है कि हालांकि क़ानून के मुख्य प्रावधानों के सामान्य डिजाइन का एक हिस्सा प्रतीत होता है, प्रमुख उद्देश्य एक अनधिकृत उद्देश्य को प्राप्त करना है, तो उसे संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण नहीं मिलेगा और यदि यह अनुच्छेद 14 या 19 का उल्लंघन करता है तो इसे अमान्य के रूप में निरस्त किया जा सकता है। [338 - जी-एच, 339 ए, डी-एच, 340 ए-डी1।

अकादासी पधान बनाम। उड़ीसा राज्य, [1963] 2 सप। एससीआर 691; रासबिहारी पांडा आदि। उड़ीसा राज्य, [1969] 3 एस. सी. आर. 374; मेसर्स। व्रायलाल मणिलाल एंड कंपनी और अन्य। वी. मध्य प्रदेश राज्य और अन्य। , [1970] 1 एससीआर 400 और आर. सी. कूपर बनाम। इसके बाद भारत संघ, [1970] 3 एस. सी. आर. 530 आया।

(xii) यदि न्यायालय यह पाता है कि प्रभाव देने के लिए अधिनियमित कानून में भी

एक निदेशक सिद्धांत के लिए, एक ऐसा प्रावधान है जो अनिवार्य रूप से और पूरी तरह से निदेशक सिद्धांत के कार्यान्वयन से जुड़ा नहीं है या जिसका प्रमुख उद्देश्य एक अनधिकृत उद्देश्य को प्राप्त करना है, यह संशोधित अनुच्छेद 31 सी के संरक्षण से बाहर होगा और इसे अनुच्छेद 14 और 19 की चुनौती का सामना करना होगा। [340 एफ-एच]।

(xiii) अनुच्छेद 39 से 51 में कुछ निर्देशात्मक सिद्धांतों का उल्लेख है

विशिष्ट उद्देश्य और ताकि एक कानून उन निदेशक सिद्धांतों में से एक को प्रभावी बनाने के लिए हो, कानून और ऐसे निदेशक सिद्धांत में निर्धारित विशिष्ट उद्देश्य के बीच एक वास्तविक और पर्याप्त संबंध होगा। जाहिर है, इन निदेशक सिद्धांतों में निर्धारित उद्देश्य विशिष्ट और सीमित होने के कारण, देश में एक विधायिका द्वारा बनाए गए प्रत्येक कानून का संभवतः इनमें से किसी एक या दूसरे के साथ वास्तविक और ठोस संबंध नहीं हो सकता है।

उद्देश्य। यह केवल सीमित संख्या में कानून हैं जिनका इन निदेशक सिद्धांतों में निहित एक या दूसरे विशिष्ट उद्देश्यों के साथ वास्तविक और पर्याप्त संबंध होगा और कोई भी और हर कानून इस श्रेणी में नहीं आएगा। [341 ए-सी]।

(xiv) अनुच्छेद 38 एक सामान्य अनुच्छेद है जो इसके दायित्व पर जोर देता है -

राज्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करेगा जिसमें न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक-राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि

लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना राज्य का कर्तव्य है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अपने आप में यह एक काफी व्यापक क्षेत्र को शामिल कर सकता है, लेकिन अनुच्छेद में निर्धारित उद्देश्य केवल लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना नहीं है, बल्कि एक और आवश्यकता है कि राज्य द्वारा लोगों के कल्याण को बढ़ावा दिया जाए, न कि किसी भी तरह से, अपनी सनक और कल्पना के अनुसार, बल्कि एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए और यह कि सामाजिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करे। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय अनुच्छेद 38 में निदेशक सिद्धांत में निर्धारित उद्देश्य है और यह वह उद्देश्य है जिसे देश के शासन में मौलिक बनाया गया है और जिसे साकार करने के लिए राज्य को बाध्य किया गया है। यह निर्देशात्मक सिद्धांत वह आधार बनाता है जिस पर निर्देशात्मक सिद्धांतों की पूरी संरचना का पालन किया जाता है और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय अन्य निर्देशात्मक सिद्धांतों का हस्ताक्षर है। अनुच्छेद 38 के बाद आने वाले अनुच्छेदों में निर्धारित निर्देशक सिद्धांत केवल अनुच्छेद 38 में व्यक्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आदर्श के पहलुओं और पहलुओं को विशिष्ट और निर्धारित करते हैं। [341 सी-जी]।

(xv) सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा बहुत आसान नहीं हो सकती है।

परिभाषा की लेकिन इसकी व्यापक रूपरेखा मौलिक अधिकारों के कुछ प्रावधानों और निदेशक सिद्धांतों में पाई जाती है और जब भी

सवाल यह उठता है कि क्या कोई कानून सामाजिक और आर्थिक न्याय को प्रभावी बनाने के लिए है, इन प्रावधानों के संदर्भ में ही सवाल का निर्धारण करना होगा। सामाजिक या आर्थिक न्याय की अवधारणा के बारे में इतना अस्पष्ट या अनिश्चित कुछ भी नहीं है कि लगभग किसी भी प्रकार के कानून को इसके तहत उचित ठहराया जा सके। इसके अलावा, जहां किसी विधान के संबंध में इस आधार पर संरक्षण का दावा किया जाता है कि इसे किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है, तो जिस निदेशक सिद्धांत से इसका संबंध होने का दावा किया जाता है, वह सामान्य रूप से अनुच्छेद 38 में निर्धारित सामान्य निदेशक सिद्धांत नहीं होगा, बल्कि बाद के अनुच्छेदों में निर्धारित विशिष्ट निदेशक सिद्धांतों में से एक हो सकता है क्योंकि ये अनुच्छेद 38 में निर्दिष्ट सामाजिक और आर्थिक न्याय की

अवधारणा को विशिष्ट करते हैं। इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि यदि अनुच्छेद 31 सी में संशोधन को वैध ठहराया जाता है, तो इसका सूर्य के नीचे हर संभव कानून की रक्षा करने का प्रभाव होगा और यह प्रभावी रूप से संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 को मिटा देगा। यह एक लंबा और चरम तर्क है, जो संविधान के प्रावधानों में उचित नहीं है। [341 एच, 342 ए-डीआई

एच. ई. एल. डी. आगे (बहुमत से सहमत):

6. अनुच्छेद 31 ए का खंड (ए) संवैधानिक रूप से लागू होने पर भी मान्य है।

मूल संरचना परीक्षण। [290 डी]।

जहाँ किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए कोई कानून अधिनियमित किया जाता है -

सामाजिक और आर्थिक न्याय के संवैधानिक लक्षय को आगे बढ़ाने का दृष्टिकोण,

मूल संरचना का कोई उल्लंघन नहीं होगा, भले ही यह औपचारिक रूप से उल्लंघन करता हो।

अनुच्छेद 14 के तहत कानून के समक्ष समानता या इसके तहत कोई मौलिक अधिकार अनुच्छेद 19. यहाँ, अनुच्छेद 31 ए का खंड (ए) कृषि सुधार के कानून की रक्षा करता है।

जो स्पष्ट रूप से [1981] एस. सी. आर. में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

226

भारत, सामाजिक और आर्थिक न्याय की एक बुनियादी आवश्यकता है और अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों द्वारा कवर किया गया है और इसे संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है। इसके विपरीत, ग्रामीण आबादी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की ओर ले जाने वाले कृषि सुधार एक उद्देश्य है जो संविधान की मूल संरचना को मजबूत करता है। [290 बी-डी]।

यहाँ तक कि टकटकी के सिद्धांत के आधार पर भी पूरे अनुच्छेद 31 ए का निर्णय लिया जाता है

संवैधानिक रूप से वैध है। यह विचार कि अनुच्छेद 31 ए संवैधानिक रूप से वैध है, सर्वोच्च न्यायालय के कम से कम तीन फैसलों में लिया गया है, अर्थात्, शंकरी प्रसाद का मामला, सज्जन सिंह का मामला और गोलकनाथ का मामला और यह 28 वर्षों से अधिक समय से क्षेत्र में है और इसकी शुद्धता के विश्वास पर लाखों एकड़ कृषि सांस्कृतिक भूमि हाथ बदल गई है और अब कृषि संबंध पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थानांतरित करने में आ गए हैं। भले ही इन निर्णयों में मूल संरचना सिद्धांत के संदर्भ में अनुच्छेद 31 ए की

संवैधानिक वैधता का परीक्षण नहीं किया गया था, लेकिन अदालत को पहले के निर्णयों पर पुनर्विचार करने और अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता के सवाल को फिर से खोलने की अनुमति देना उचित नहीं होगा। इन निर्णयों ने अनुच्छेद 31 ए की वैधता के खिलाफ संवैधानिक चुनौती को शांत कर दिया है और इस शांति को अब बाधित नहीं होने दिया जाना चाहिए। [290 ई, 292 डी, 295 जी-एच, 295 ए]।

शंकरी प्रसाद बनाम। भारत संघ, [1962] 2 एससीआर 89; सज्जन सिंह बनाम। राज्य

राजस्थान, [1965] 1 एस. सी. आर. 933; आई. सी. गोलकनाथ बनाम भारत संघ। [1967] 2 एससीआर 762; अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम। यू. पी. और अन्य राज्य। , [1980] 3 एस. सी. आर पी. 1159 , पीछा किया।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय के पास इसकी समीक्षा करने की शक्ति है।

पहले के निर्णय या उनसे अलग होने और देखने के निर्णय के सिद्धांत को जनता के सामान्य कल्याण के लिए अदालत के गलत निर्णयों को बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। निश्चितता और निरंतरता कानून के शासन के आवश्यक तत्व हैं। यदि देश का सर्वोच्च न्यायालय पहले के निर्णयों में उसके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को खारिज करने के लिए तैयार होता, भले ही वह विचार कई वर्षों से इस क्षेत्र में रहा हो, तो कानून की निश्चितता और प्रयोज्यता को एक साथ समाप्त कर दिया जाएगा और एक गंभीर झटका लगेगा। यह स्पष्ट है कि जब संवैधानिक समस्याओं को उच्चतम न्यायालय के निर्णय के लिए उसके समक्ष लाया जाता है, तो जटिल और कठिन प्रश्न उत्पन्न होते हैं और चूंकि ऐसे कई प्रश्नों का निर्णय प्रतिस्पर्धी मूल्यों के बीच चयन पर निर्भर हो सकता है, इसलिए मूल्य निर्णय या व्यक्तिगत न्यायाधीश द्वारा किए गए मूल्यों के चयन के आधार पर दो विचार संभव हो सकते हैं। इसलिए, यदि अदालत द्वारा परिपक्व विचार-विमर्श के बाद एक विचार लिया गया है, तो यह तथ्य कि दूसरी पीठ दूसरा विचार लेने के लिए इच्छुक है, अदालत को पहले के फैसले को दरकिनार करने और इसे ओवररूल करने के लिए उचित नहीं ठहराएगा। द्वारा निर्धारित कानून

सर्वोच्च न्यायालय देश के सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी है और देश भर में कई प्रश्नों का निर्णय उनके द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के अनुसार किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय। बहुत से लोग अपने मामलों की व्यवस्था करते हैं और बड़ी संख्या में लेनदेन भी निर्णय की शुद्धता के विश्वास पर होते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया। यह अनिश्चितता, अस्थिरता पैदा करेगा और भ्रम यदि उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रस्तावित कानून जिसके सामने

कई मामलों का निर्णय लिया गया है और कई लेनदेन हुए हैं।

कई वर्षों के बाद इसे सही कानून नहीं माना जाता है। का सिद्धांत टकटकी निर्णय सिद्धांत "टकटकी निर्णय और गैर क्विटा मूवर" से विकसित हुआ है।

जिसका अर्थ है "निर्णय का पालन करें और स्थापित चीजों को परेशान न करें"

और यह एक उपयोगी सिद्धांत है जिसका उद्देश्य निश्चितता और एकरूपता लाना है।

कानून में। लेकिन टकटकी निर्णय के सिद्धांत को कठोर नहीं माना जा सकता है।

+1

थेस

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. संघ 13

227

और अपरिहार्य सिद्धांत जिसे न्याय की कीमत पर लागू किया जाना चाहिए। वहाँ

ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ सिद्धांत को इसकी भयावह कठोरता से मुक्त करना आवश्यक हो। न्यायालय एक उपयुक्त मामले में अपने द्वारा लिए गए पिछले निर्णय को रद्द कर सकता है, लेकिन यह केवल ठोस और बाध्यकारी निर्णय के लिए किया जाना चाहिए।

कारणों से। समीक्षा की शक्ति का उपयोग उचित सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

और केवल जनता की भलाई को आगे बढ़ाने के लिए और केवल इसलिए नहीं कि यह हो सकता है

ऐसा प्रतीत होता है कि पिछला निर्णय कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था। यह केवल तभी होगा जब पहले के निर्णय को कायम रखना शरारत या असुविधा का परिणाम होगा या संविधान निर्माताओं द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम से राष्ट्र को भटकाने का प्रभाव होगा या "जहां इस देश के जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए महान क्षण का राष्ट्रीय संकट है।

और इसके लाखों लोग दांव पर हैं या राष्ट्र की मूल दिशा ही दांव पर है एक झटके का खतरा ", कि अदालत अपने फैसले पर पुनर्विचार करने में उचित होगी

पहले का निर्णय लेना और उससे अलग होना। यह बुनियादी बात है कि राष्ट्र

हर बार न्यायिक समीक्षा द्वारा संविधान को निरंतर अनिश्चितता में नहीं रखा जाना चाहिए।

अब और फिर, क्योंकि अन्यथा यह बारहमासी रहस्य से सभी को लकवाग्रस्त कर देगा

महत्वपूर्ण मुद्दों पर विधायी और प्रशासनिक कार्रवाई। अदालत को नहीं करना चाहिए

राज्य की कार्रवाई के न्यायिक स्थिरीकरण में शामिल होना और एक ऐसा दृष्टिकोण जो

निर्णयों की एक श्रृंखला में और विश्वास पर लंबे समय तक स्वीकार किया गया जिनमें से लाखों लोगों ने कार्रवाई की है और बड़ी संख्या में लेन-देन हुए हैं

प्रभावित हुए हैं उन्हें परेशान नहीं किया जाना चाहिए। [292 जी-एच, 293 ए-एच, 294 ए-डी]।

अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम। उत्तर प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्य। , [1980] 3 एस. सी. आर पी. 1159 ,

* पीछा किया।

(7) अनुच्छेद 31 बी की परिकल्पना अनुच्छेद 31 ए के साथ की गई थी।

अधिग्रहण के लिए प्रावधान करने वाले कानून को सुरक्षा देने के लिए एक ही डिजाइन अपनाया गया

किसी परिसंपत्ति का या किसी परिसंपत्ति में किसी अधिकार का उन्मूलन या संशोधन।

* [295 ई-एफ]।

अनुच्छेद 31 बी की नौवीं अनुसूची का उद्देश्य अन्य कानूनों को शामिल करना नहीं था।

उन लोगों की तुलना में जो अनुच्छेद 31 ए के अंतर्गत आते हैं। अनुच्छेद 31 ए और 31 बी इस प्रकार अभिप्रेत थे।

एक निश्चित सीमा के भीतर आने वाले कानून की रक्षा करने के समान उद्देश्य को पूरा करने के लिए श्रेणी। यह एक दोहरे नंगे संरक्षण था जिसका उद्देश्य था

कानून की इस श्रेणी को प्रदान किया गया, क्योंकि इसे लागू करने के लिए डिज़ाइन किया गया था कृषि सुधार जो देश में क्रांति लाने के लिए इतना आवश्यक था

-देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना। [295 एफ, एच, 296 एजे।

चूँकि पहले के सभी संवैधानिक संशोधनों को इस आधार पर वैध माना गया था

श्री प्रसाद के संविधान में मान्यता प्राप्त संसद की असीमित संशोधन शक्ति

मामला और सज्जन सिंह का मामला और जिसे गोलखनाथ के मामले में वैध माना गया

और उनतीसवें संशोधन अधिनियम को भी केशवानंद में वैध ठहराया गया था।

भारती का मामला, हालांकि बुनियादी संरचना परीक्षण के अनुप्रयोग पर नहीं और

इन संवैधानिक संशोधनों को कई मामलों में वैध माना गया है।

वर्षों और इसके अलावा, उनके द्वारा संरक्षित किए जाने का इरादा रखने वाले कानून हैं -

इन संविधानों की वैधता के सवाल को फिर से खोलना उचित नहीं होगा। संवैधानिक संशोधन और इसलिए ये संशोधन वैध हैं। [297 एफ-एच]।

लेकिन केशवानंद में निर्णय के बाद किए गए सभी संवैधानिक संशोधन

भारती के मामले का फैसला बुनियादी ढांचे के संदर्भ में करना होगा।

सिद्धांत, क्योंकि संसद के पास तब यह कहने का कोई बहाना नहीं होगा कि उसने किया था

इसकी संशोधन शक्ति पर सीमा ज्ञात नहीं है। अब क़ानूनों से बाहर

जो बाद में नौवीं अनुसूची में शामिल किए गए हैं या भविष्य में शामिल किए जा सकते हैं

संवैधानिक संशोधन, यदि कोई ऐसे हैं जो किसी श्रेणी में आते हैं;

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

अनुच्छेद 31 ए या 31 सी के तहत उन्हें आरती के तहत चुनौती से बचाया जाएगा। धारा 14 और 19 और यह विचार करना आवश्यक नहीं होगा कि क्या नौवीं अनुसूची में उनका समावेश संवैधानिक रूप से मान्य है, सिवाय उन दुर्लभ मामलों के जहां किसी अन्य मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उनके लिए संरक्षण का दावा किया जा सकता है। यह प्रश्न मुख्य रूप से केवल उन कानूनों के संबंध में उत्पन्न होगा जो अनुच्छेद 31 ए या 31 सी के दायरे में नहीं आते हैं और ऐसे कानूनों के मामले में, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या नौवीं अनुसूची में ऐसे कानूनों सहित संवैधानिक संशोधन उन्हें मौलिक अधिकारों की चुनौती से प्रतिरक्षा देने में संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करते हैं। यह संभव है कि किसी मामले में मौलिक अधिकार के संक्षिप्तकरण में भी मूल संरचना का उल्लंघन शामिल हो। यह सब मौलिक अधिकार की प्रकृति, उल्लंघन की सीमा और गहराई, जिस उद्देश्य के लिए उल्लंघन किया जाता है और संविधान के मूल मूल्यों पर इसके प्रभाव पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार अन्य मौलिक अधिकारों से बिल्कुल अलग है। यदि किसी भी कानून द्वारा इस मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया जाता है, तो एक संवैधानिक संशोधन को बनाए रखना मुश्किल हो सकता है जो अनुच्छेद 21 के तहत चुनौती के खिलाफ ऐसे कानून को बचाने का प्रयास करता है। अत: यह भी कि जहां कोई विधान जिसका कृषि सुधार या किसी निदेशक सिद्धांत से कोई लेना-देना नहीं है, अनुच्छेद 14 में निहित समानता खंड का उल्लंघन करता है और ऐसे विधान को नौवीं अनुसूची में शामिल करके संवैधानिक संशोधन द्वारा संरक्षित करने की मांग की जाती है, तो यह तर्क देना संभव हो सकता है कि ऐसा संवैधानिक संशोधन समतावादी सिद्धांत का उल्लंघन है जो मूल संरचना का हिस्सा है। हालाँकि, अन्य परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जहाँ किसी क़ानून द्वारा किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन, जिसे संवैधानिक रूप से प्रस्तावित किया जाना चाहिए, संविधान की मूल संरचना को प्रभावित कर सकता है। प्रत्येक मामले में, जहां किसी संवैधानिक संशोधन

में नौवीं अनुसूची में कोई क़ानून या क़ानून शामिल हैं, वहां इसकी संवैधानिक वैधता पर बुनियादी संरचित सिद्धांत के संदर्भ में विचार करना होगा और ऐसा संवैधानिक संशोधन उस हद तक अमान्य घोषित करने के लिए उत्तरदायी होगा जिस हद तक यह किसी विशेष मौलिक अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ संरक्षण के अनुसार संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुंचाता है या नष्ट करता है। [297 एच, 298 सी-एच, 299 ए-बी]।

(8) सिद्धांत रूप में भी, असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग है -

संवैधानिक रूप से वैध। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग को केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय (7:6) द्वारा संवैधानिक रूप से वैध माना गया था, इसकी संवैधानिक वैधता के सवाल को फिर से नहीं खोला जा सकता है। यह सच है कि केशवानंद भारती के मामले का अनुपात निर्णय यह था कि संसद और संसद की संशोधन शक्ति सीमित है।

संशोधन की शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है और प्रत्येक संवैधानिक संशोधन की वैधता का निर्णय इस परीक्षण को लागू करके किया जाना है कि क्या यह संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन करता है या नहीं और यह परीक्षण छह विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लागू नहीं किया गया था, हालांकि पहले भाग की संवैधानिकता के बारे में उनके निष्कर्ष। असंशोधित अनुच्छेद 31 सी वैध है। संशोधन न किए गए अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को बरकरार रखने वाले न्यायाधीशों में से प्रत्येक के साथ वजन करने वाले कारणों के बावजूद, उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के कारणों का निश्चित रूप से मामले के अनुपात निर्णय के निर्धारण पर असर पड़ेगा और अनुपात निर्णय निश्चित रूप से भविष्य के मामलों के निर्णय के लिए महत्वपूर्ण होगा जहां संशोधन न किए गए अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता का संबंध है, यह कई शब्दों में केशवानंद भारती के मामले में बहुमत निर्णय द्वारा निर्धारित किया गया था, और वह निर्णय बाध्य करता है। [300 ई-एच, 301 ए-डी, 303 सी]।

कोई नहीं।

229

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन

असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग केवल यह करता है कि

अनुच्छेद 14 और 19 में अनुच्छेद 14 और 19 को हटाकर मौलिक अधिकारों को कम करें।

अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्दिष्ट सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में नीति को प्रभावी बनाने वाले विधान के लिए लचीलापन। अपरिवर्तित का पहला भाग

अनुच्छेद 31 सी मूल रूप से अनुच्छेद 31 ए के समान ही है।

अंतर यह है कि जहां अनुच्छेद 31 ए कुछ विषयों से संबंधित कानूनों की रक्षा करता है, वहीं असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग कुछ उद्देश्यों वाले कानूनों से संबंधित है। जहाँ तक अनुच्छेद 14 और 19 के अपवर्जन का संबंध है, अनुच्छेद 31 ए और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग के बीच कोई गुणात्मक अंतर नहीं है। तथ्य यह है कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग के प्रावधान अधिक व्यापक हैं और इनकी चौड़ाई अधिक है अनुच्छेद 31 ए की तुलना में सिद्धांत रूप में कोई अंतर नहीं पड़ता है। यदि अनुच्छेद 31 ए संवैधानिक रूप से मान्य है, तो असंशोधित अनुच्छेद के पहले भाग को असंवैधानिक नहीं माना जा सकता है। अपरिवर्तित आरती का पहला भाग

खंड 31 सी, वास्तव में, अधिक सुरक्षित आधार पर खड़ा है क्योंकि यह अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित विधान के अनुच्छेद 14 और 19 के उल्लंघन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। इस तरह के विधान को लागू करने में विधायिका अनुच्छेद 37 में निहित संवैधानिक जनादेश पर कार्य करती है, जिसके अनुसार निदेशक सिद्धांत देश के शासन में मौलिक हैं और यह राज्य का कर्तव्य है कि वह उन सिद्धांतों को कानून बनाने में लागू करे। यह अनुच्छेद 37 के तहत राज्य पर निर्धारित संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से है कि अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त करने की अनुमति है। इसलिए, इस तरह के प्रावधान करने वाले संवैधानिक संशोधन को संविधान की मूल संरचना, [301 ई-एच, 303 ए-सी] का उल्लंघन करने वाला नहीं माना जा सकता है।

(9) भले ही संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 असंवैधानिक हो।

न्यायिक और शून्य और महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा को कम करना) और (संशोधन) अधिनियम, 1972 (1975 का अधिनियम II), महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा को कम करना) और (संशोधन) अधिनियम, 1975, (1945 का अधिनियम XLVII) और महाराष्ट्र भूमि (जोतों पर अधिकतम सीमा) संशोधन अधिनियम, 1975, (1976 का अधिनियम II) को नौवीं अनुसूची में वैध रूप से शामिल नहीं किया गया है ताकि अनुच्छेद 31 बी का संरक्षण प्राप्त किया जा सके, वे अभी भी अनुच्छेद 31 ए द्वारा अमान्य होने से बच गए हैं और जहां तक संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 का संबंध है, यह संसद की घटक शक्ति के बाहर है जहां तक यह खंड (4) और (1976 का अधिनियम) को शामिल करना चाहता है। [302 सी-डी, जी-एच]।

इसकी भाषा के एक सादे प्राकृतिक निर्माण पर यह स्पष्ट है कि

अनुच्छेद 83 (2) का परंतुक लोकसभा की अवधि को केवल आपातकाल की घोषणा के संचालन के दौरान बढ़ाया जा सकता था और इसलिए, यदि प्रासंगिक समय पर आपातकाल की कोई घोषणा लागू नहीं थी, तो लोक सभा (अवधि का विस्तार) अधिनियम, 1976 अनुच्छेद 83 (2) के परंतुक के तहत संसद की क्षमता से बाहर होगा। फिर से अनुच्छेद 352 (1) की भाषा यह स्पष्ट करती है कि राष्ट्रपति इस खंड के तहत कार्रवाई तभी कर सकते हैं जब वह संतुष्ट हों कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिससे भारत या उसके क्षेत्र के किसी भी हिस्से की सुरक्षा को खतरा है, चाहे वह युद्ध या बाहरी आक्रमण या

आंतरिक अशांति से हो। राष्ट्रपति को इस बात का संतोष है कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिसके तहत भारत की सुरक्षा है।

चाहे युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति से खतरा "एक पूर्ववर्ती शर्त है जिसे राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत घोषणा जारी करने से पहले पूरा किया जाना चाहिए। जब यह शर्त पूर्ववर्ती संतुष्ट हो जाती है, तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के खंड (1) के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं और आपातकाल की घोषणा जारी कर सकते हैं। एम. ई. के संवैधानिक निहितार्थ

. 1

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [1981] 1 एस. सी. आर.

230

अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत आपातकाल की घोषणा व्यापक है और वे हैं -

अनुच्छेद 83 (2), 250,353,358 और 359 में प्रावधान किया गया है। आपातकाल राष्ट्रीय संकट से उत्पन्न होने वाली एक असाधारण स्थिति होने के कारण स्थिति से निपटने और सामान्य स्थितियों को बहाल करने के लिए केंद्र सरकार और संसद को कुछ व्यापक और व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं। ऐसी एक शक्ति वह है जो अनुच्छेद 83 (2) द्वारा दी गई है जो यह प्रदान करती है कि

आपातकाल लागू है, संसद कानून द्वारा एक बार में एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए अपनी अवधि बढ़ा सकती है। इसके अलावा कई गंभीर परिणाम

आपातकाल की घोषणा के बाद। एक परियोजना का मुद्दा

' आपातकाल का गठन संघवाद के सिद्धांत में गंभीर पैठ बनाता है और मौलिक अधिकारों के संचालन और प्रभावकारिता को कम करता है। द.

इसलिए आपातकाल घोषित करने की शक्ति कब्र से भरी शक्ति है।

परिणाम और यह पूरी शक्ति संरचना को परेशान करने का प्रभाव डालता है

संविधान के तहत। लेकिन यह केंद्रीय सरकार को दी गई एक आवश्यक शक्ति है

एक असाधारण स्थिति का सामना करने के लिए इसे पर्याप्त रूप से सशस्त्र करने की दृष्टि से शस्त्रागार

युद्ध के कारण देश की सुरक्षा के लिए खतरे से उत्पन्न होना या

बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति या इस तरह के किसी भी आसन्न खतरे

आपदा। इसलिए, यह एक ऐसी शक्ति है जिसका उपयोग सबसे अधिक सावधानी और सावधानी और अत्यधिक जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए। [303 ए-बी-305 ई-एच, 307 ई-जी]।

(10) अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी आपातकाल की घोषणा की वैधता की न्यायिक समीक्षा पर कोई रोक नहीं है। [303 बी-सी]।

यदि अदालत के समक्ष लाया गया कोई प्रश्न विशुद्ध रूप से एक राजनीतिक प्रश्न है तो नहीं।

किसी भी कानूनी या संवैधानिक अधिकार या दायित्व का निर्धारण शामिल है,

´न्यायालय 'इसे स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि न्यायालय का संबंध केवल निर्णय लेने से है

कानूनी अधिकार और देनदारियाँ। सिर्फ इसलिए कि एक सवाल का राजनीतिक रंग होता है

अदालत निराशा में अपने हाथ नहीं मोड़ सकती है और "न्यायिक हाथों को बंद" घोषित नहीं कर सकती है।

जब तक सवाल यह है कि क्या संविधान के तहत कोई प्राधिकरण है

अपनी शक्ति की सीमाओं के भीतर कार्य किया या इसे पार किया, यह निश्चित रूप से अदालत द्वारा तय किया जा सकता है। वास्तव में ऐसा करना उसका संवैधानिक दायित्व होगा। द.

न्यायालय संविधान का अंतिम दुभाषिया होता है और जब धन होता है

संविधान के तहत शक्ति का अनधिकृत प्रयोग, यह कर्तव्य है

अदालत का हस्तक्षेप करना। वास्तव में, इस न्यायालय के लिए उतना ही जितना कि अन्य शाखाओं के लिए

सरकार संविधान के संरक्षण और उसे आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। मूल्य। न्यायालय का कार्य संवैधानिक योजना में उन मूल्यों की पहचान करना है।

जिम्मेदारी का भी अपना स्थान है। न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता और न ही करना चाहिए इस जिम्मेदारी को छोड़ दें क्योंकि इसने निष्ठा की शपथ ली है

' संविधान और यह इस देश के लोगों के प्रति भी जवाबदेह है। यह होगा।

इसलिए, न्यायालय के लिए यह जांच करने से इनकार करना सही नहीं होगा कि क्या

यह देखते हुए कि राष्ट्रपति द्वारा जारी किए जाने में कोई संवैधानिक उल्लंघन शामिल है अनुच्छेद 352 के खंड (1) के तहत आपातकाल की घोषणा। [308 डी, एफ, 309 ए-केएनजे।

इस न्यायालय का संवैधानिक अधिकार क्षेत्र इससे आगे नहीं फैला है।

यह कहते हुए कि क्या संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति की सीमाएँ

राष्ट्रपति को देखा गया है या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है। द.

अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत राष्ट्रपति की शक्ति पर केवल सीमा है

कि राष्ट्रपति को संतुष्ट होना चाहिए कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिसके द्वारा

भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा को खतरा है, चाहे वह युद्ध से हो या उससे।

बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति। राष्ट्रपति की संतुष्टि एक व्यक्तिपरक है और कैरिनेट का निर्णय किसी भी वस्तुनिष्ठ परीक्षण के संदर्भ में नहीं किया जाता है। यह जानबूझकर और सलाह के साथ व्यक्तिपरक है क्योंकि 7 के संबंध में मामला

√

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन

231

जिसे उसे संतुष्ट करना है, वह ऐसी प्रकृति का है कि उसका निर्णय सरकार की कार्यकारी शाखा पर छोड़ दिया जाना चाहिए। ऐसी कई परिस्थितियाँ हो सकती हैं जो उत्पन्न हो सकती हैं और यह तय करने के लिए कि युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति से देश की सुरक्षा को खतरा होने के कारण गंभीर आपातकाल की स्थिति है या नहीं, उनके राजनीतिक प्रभावों और निहितार्थों का मूल्यांकन करना पड़ सकता है। यह काफी हद तक विविध और विविध कारकों, तेजी से बदलती स्थितियों, संभावित परिणामों और कई अन्य अभेद्य कारकों के मूल्यांकन पर आधारित एक राजनीतिक निर्णय होगा। इसलिए, यह अपनी प्रकृति से, न्यायिक तरीकों और सामग्रियों द्वारा निर्णय के लिए एक उपयुक्त विषय नहीं हो सकता है और इसलिए इसे छोड़ दिया जाता है

केंद्र सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि जो इसे तय करने की स्थिति में सबसे अच्छी है। न्यायालय उन तथ्यों और परिस्थितियों की शुद्धता या पर्याप्तता के प्रश्न में नहीं जा सकता है जिन पर केंद्र सरकार की संतुष्टि आधारित है। यह न्यायालय के लिए एक खतरनाक अभ्यास होगा, दोनों क्योंकि यह इस तरह के प्रश्न का निर्धारण करने के लिए एक उपयुक्त साधन नहीं है और यह भी कि न्यायालय इस प्रकार के कार्य को हड़प लेगा

कार्यपालिका और ऐसा करते हुए "राजनीतिक गुट" में प्रवेश करती है जिससे उसे बचना चाहिए यदि उसे लोगों के साथ अपनी वैधता बनाए रखनी है। लेकिन, यदि संतुष्टि दुर्भावनापूर्ण है या पूरी तरह से बाहरी और अप्रासंगिक आधार पर आधारित है, तो न्यायालय को इसकी जांच करने का अधिकार क्षेत्र

होगा क्योंकि उस मामले में राष्ट्रपति को उस मामले के संबंध में कोई संतुष्टि नहीं होगी जिस पर उन्हें संतुष्ट करने की आवश्यकता है। राष्ट्रपति की संतुष्टि अनुच्छेद 352 खंड (I) के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है और यदि यह दिखाया जा सकता है कि राष्ट्रपति को कोई संतुष्टि नहीं है, तो शक्ति का प्रयोग संवैधानिक रूप से अमान्य होगा: [309 सी-एच, 310 ए-बी]।

यह सच है कि अनुच्छेद 352 के खंड (5) (ए) के कारण, संतुष्टि

राष्ट्रपति को अंतिम और निर्णायक बनाया जाता है और किसी भी आधार पर हमला नहीं किया जा सकता है, लेकिन न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है और इसलिए न्यायिक समीक्षा को प्रतिबंधित करने वाला यह प्रावधान इस आधार पर हमला करने के लिए खुला होगा कि यह असंवैधानिक है और मूल संरचना को नुकसान पहुंचाने या नष्ट करने के रूप में शून्य है। हालाँकि, संवैधानिकता के खिलाफ इस हमले को इस प्रावधान को पढ़कर टाला जा सकता है, जिसका अर्थ है कि इसके द्वारा दी गई चुनौती से प्रतिरक्षा लागू नहीं होती है, जहां चुनौती यह नहीं है कि संतुष्टि अनुचित या अनुचित है, बल्कि यह है कि कोई संतुष्टि नहीं है। ऐसे मामले में राष्ट्रपति द्वारा प्राप्त संतुष्टि को चुनौती नहीं दी जाती है, बल्कि संतुष्टि के अस्तित्व को ही चुनौती दी जाती है। इसलिए, जहां संतुष्टि बेतुकी या विकृत या दुर्भावनापूर्ण है या पूरी तरह से बाहरी और अप्रासंगिक आधार पर आधारित है, तो यह बिल्कुल भी संतुष्टि नहीं होगी और इसे अनुच्छेद 352 के खंड (5) (ए) के बावजूद अदालत के समक्ष चुनौती दी जाएगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ज्यादातर मामलों में चुनौती देना असंभव नहीं तो मुश्किल होगा

अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत शक्ति का प्रयोग इस सीमित आधार पर भी क्योंकि जिन तथ्यों और परिस्थितियों पर संतुष्टि आधारित है, उनका पता नहीं चलेगा, लेकिन जहां संभव हो, संतुष्टि के अस्तित्व को हमेशा इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह दुर्भावनापूर्ण है या पूरी तरह से बाहरी या अप्रासंगिक आधार पर आधारित है। [310 सी-एफ]।

गोमेलियन वी. लाइटफुट, [1960] 364 यूएस 339; बेकर बनाम। कैर, [1962] 369 यूएस

186 , अनुमोदन के साथ उद्धृत।

राजस्थान राज्य बनाम। इसके बाद भारत संघ, [1977] 3 एस. सी. सी. 592 आया।

गुलाम सरवंत बनाम। भारत संघ, [1967] 2 एससीआर 271; भूतनाथ माटो बनाम।

पश्चिम बंगाल राज्य, [1974] 1 एस. सी. सी. 645 ने समझाया।

(11) उपखंडों की भाषा की एक स्पष्ट स्वाभाविक व्याख्या पर, खंड (2) के (ए) से (सी) तक कि जब तक आपातकाल की घोषणा नहीं की जाती है

उपखंड (2) (ए) के तहत एक अन्य घोषणा द्वारा निरस्त, यह परिस्थितियों के परिवर्तन की परवाह किए बिना जारी रहेगा। [312 सी]।

लखन पाल बनाम। भारत संघ, [1966] सप। एस. सी. आर. 209, ने आवेदन किया।

यह सच है कि आपातकाल की घोषणा को रद्द करने की शक्ति केवल केंद्र सरकार में निहित है और यह संभव है कि केंद्रीय सरकार

आपातकाल की घोषणा को रद्द करने से इनकार करके इस शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता है, भले ही घोषणा के मुद्दे को उचित ठहराने वाली परिस्थितियां अस्तित्व में नहीं हैं और इस प्रकार मौलिक अधिकारों को मिटाने वाले आपातकाल की स्थिति को आधारहीन रूप से बढ़ाया जा सकता है और यह अधिनायकवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर सकता है। लेकिन सत्ता के इस तरह के दुरुपयोग के खिलाफ नागरिक की प्राथमिक और वास्तविक सुरक्षा "लोगों की अच्छी समझ और प्रतिनिधि और जिम्मेदार सरकार की प्रणाली" में निहित है जो संविधान में प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त, किसी मामले में नागरिक के लिए आपातकाल की घोषणा को निरस्त करने के लिए अनिवार्य रिट जारी करने के लिए अदालत का रुख करना संभव हो सकता है, यदि वह अदालत के समक्ष स्पष्ट और ठोस सामग्री रखकर यह दिखाने में सक्षम है कि आपातकाल की घोषणा को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। लेकिन यह एक बहुत भारी जिम्मेदारी होगी क्योंकि यह पूरी तरह से कार्यकारी सरकार को संतुष्ट करने के लिए होगा कि क्या ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है जहां आपातकाल की घोषणा को रद्द किया जा सकता है। कार्यकारी सरकार को संतुष्ट होने से पहले इतने सारे तथ्यों और परिस्थितियों और ऐसे विविध विचारों को ध्यान में रखना होगा कि अब कोई गंभीर आपातकाल नहीं है जिससे भारत की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति से खतरा हो। यह ऐसा मामला नहीं है जो न्यायिक निर्धारण के लिए उपयुक्त है और अदालत इस संबंध में कार्यकारी सरकार की संतुष्टि में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि रिकॉर्ड पर सामग्री पर यह स्पष्ट न हो कि आपातकाल की घोषणा को जारी रखने के लिए बिल्कुल कोई न्यायसंगत निर्णय नहीं है और भ्रष्टाचार को दुर्भावनापूर्ण या संपार्श्विक उद्देश्य के लिए जारी रखा जा रहा है। अदालत ऐसे मामले में, यदि संतुष्ट हो जाती है, तो संदेह से परे केंद्र सरकार को आपातकाल की घोषणा को रद्द करने का निर्देश देते हुए एक अनिवार्य रिट दे सकती है। लेकिन जब तक ऐसा नहीं किया जाता, आपातकाल की घोषणा जारी रहेगी और यह नहीं कहा जा सकता है कि हालांकि किसी अन्य घोषणा द्वारा इसे रद्द नहीं किया गया है, फिर भी यह लागू नहीं है। वर्तमान मामले में, यह सामान्य आधार था कि 3 दिसंबर, 1971 को जारी आपातकाल की पहली घोषणा को 21 मार्च, 1977 तक अनुच्छेद 352 के खंड (2) (ए) के तहत एक अन्य घोषणा द्वारा निरस्त नहीं किया गया था और इसलिए उस समय जब लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976 पारित किया गया था, आपातकाल की पहली घोषणा लागू थी। [312 एफ-एच, 313 ए-ई]।

यदि आपातकाल की पहली घोषणा संबंधित समय पर लागू थी

समय यह परंतुक की आवश्यकता के साथ पर्याप्त अनुपालन होगा अनुच्छेद 83 के खंड (2) के लिए और यह विचार करना अनावश्यक होगा कि आपातकाल की दूसरी घोषणा राष्ट्रपति द्वारा वैध रूप से जारी की गई थी या नहीं। [313 ई-एफ]।

(12) हाउस ऑफ पीपल (एक्सटेंशन ऑफ ड्यूरेशन) एक्ट, 1976 को अनुच्छेद 83 के खंड (2) के प्रावधान के तहत लागू किया गया था।

लोकसभा की अवधि और यह संसद द्वारा इस शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त थी कि अधिनियम के अधिनियमित होने की तारीख से ही आपात स्थिति की घोषणा होनी चाहिए। "जबकि आपातकाल की घोषणा 3 दिसंबर, 1971 को मिनर्वा मिल्स लिमिटेड द्वारा जारी की गई थी।

वी. यूनियन

233

और जून के 25 वें दिन, 1975 दोनों परिचालन में हैं

केवल आरती के खंड (2) के परन्तुक के तहत शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए पूर्ववर्ती शर्त की संतुष्टि के पाठ के माध्यम से

क्ली 83 और उनका उद्देश्य ऑपरेशन के लिए कोई शर्त निर्धारित करना नहीं था

अधिनियम की धारा 2। धारा 2 को स्पष्ट रूप से और कई शब्दों में विस्तारित किया गया है।

एक वर्ष की अवधि के लिए लोकसभा की अवधि और विस्तार इस बात पर निर्भर नहीं किया गया था कि अधिनियम के अधिनियमन की तारीख पर आपातकाल की दोनों घोषणाएं अनुपलब्ध थीं। यह विस्तार एक वर्ष की निश्चित अवधि के लिए किया गया था और यह आपातकाल की दोनों घोषणाओं के संचालन के साथ व्यापक नहीं था। एक वर्ष की अवधि के लिए विस्तार धारा 2 के अधिनियमन द्वारा हमेशा के लिए किया गया था और आपातकाल की दोनों घोषणाओं का संदर्भ केवल यह इंगित करने के उद्देश्य से था कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं लागू होने के कारण, संसद को विस्तार करने की क्षमता थी। इसलिए, यह विस्तार की प्रभावशीलता के लिए बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं लागू हों।

अधिनियम के अधिनियमन की तिथि। भले ही आपातकाल की एक घोषणा भौतिक तिथि पर लागू थी, यह अधिनियम को अधिनियमित करने के लिए अनुच्छेद 83 खंड (2) के परंतुक के तहत संसद की शक्ति को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त होगा।

लोकसभा की अवधि बढ़ाना। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संसद इस धारणा पर आगे बढ़ी कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं प्रासंगिक तिथि पर लागू थीं और उन्होंने संसद को अधिनियम को लागू करने की शक्ति

प्रदान की, लेकिन भले ही यह विधायी धारणा निराधार थी, लेकिन इससे शक्ति के प्रयोग की वैधता पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा जब तक कि आपातकाल की एक घोषणा चल रही थी जो संसद को अनुच्छेद 83 के खंड (2) के परंतुक के तहत लोकसभा की अवधि बढ़ाने के लिए अधिकृत करती थी। यह सच है कि धारा 2 का परंतुक अधिनियमित करता है कि यदि आपातकाल की दोनों या दोनों घोषणाएं एक वर्ष की विस्तारित अवधि की समाप्ति से पहले बंद हो जाती हैं या बंद हो जाती हैं, तो लोकसभा उक्त घोषणाओं या घोषणाओं के संचालन के बंद होने के छह महीने बाद तक जारी रहेगी, जो एक वर्ष की अवधि से अधिक नहीं होगी, लेकिन इस परंतुक का प्रारंभिक भाग केवल आपातकाल की घोषणा के संबंध में लागू हो सकता है जो अधिनियम के अधिनियमन की तारीख से लागू था। यदि आपातकाल की ऐसी घोषणा जो भौतिक तिथि पर लागू थी, एक की विस्तारित अवधि की समाप्ति से पहले काम करना बंद कर देती है। वर्ष, तब लोकसभा का कार्यकाल तुरंत समाप्त नहीं होगा, लेकिन यह छह महीने की और अवधि के लिए जारी रहेगा, लेकिन एक वर्ष की विस्तारित अवधि से अधिक नहीं होगा। यह प्रावधान स्पष्ट रूप से आपातकाल की दूसरी घोषणा के संबंध में कोई आवेदन नहीं कर सकता था यदि यह जारी होने पर अमान्य था। ऐसे मामले में, दूसरी घोषणा जारी होने की तारीख पर बिल्कुल भी वैध नहीं होने के कारण यह बिल्कुल भी लागू नहीं होगी और अधिनियम के अधिनियमन की तारीख के बाद इसका संचालन बंद नहीं होगा। उस स्थिति में परंतुक को केवल आपातकाल की पहली घोषणा से संबंधित के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, और चूंकि आपातकाल की घोषणा 21 मार्च, 1977 को निरस्त होने तक जारी रही, इसलिए लोकसभा की अवधि वैध रूप से 18 मार्च, 1976 से एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ा दी गई थी और इसलिए उन तारीखों पर एक वैध रूप से गठित लोकसभा थी जब संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 और संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 संसद द्वारा पारित किया गया था। (314 जी-एच, 325 ए-एच, 316 ए-सी]।

(सर्वोच्च न्यायालय की किसी भी बात को न कहने की तय प्रथा को देखते हुए

निर्णय के लिए एक सुरक्षित विश्राम स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक से अधिक, उनके प्रभु ने इस बात पर विचार नहीं किया कि आपातकाल की दूसरी घोषणा वैध रूप से जारी की गई थी या नहीं।)

मौलिक न्यायनिर्णय: याचिका सं. लिखें। 356-361 1977 से।

(संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत)

एन. ए. पालखीवाला, जे. बी. दादाचंजी, रविंदर नारायण,

याचिकाकर्ताओं के लिए ओ. सी. माथुर, एच. पी. रैना, एस. स्वरूप, के. जे. जॉन, तलत अंसारी, श्रीमती ए. के. वर्मा, एस. ठाकुर, श्री नारायण, रॉबिन्सन, एफ. एस. नरीमन, ए. एन. हक्सर, जे. एस. सिन्हा और मंजल कुमार,

एल. एन. सिन्हा, ए. जनरल।, के. के. वेणुगोपाल, एडिशनल। सोल। जनरल।,

आर. आर. के लिए आर. एन. सचथे, गिरश चंद्र, एस. मार्कंडेय, मिस ए. सुभाशिनी और पी. पी. सिंह। 1 & . 4 .

टी. वी. एस. नरसिम्हाचारी, एम. एस. गणेश और कैलाश वासुदेव

आरआर 2 और 3।

एल. एन. सिन्हा, ए. जनरल।, वकील के लिए सुश्री ए. सुभाशिनी

भारत के जनरल।

महाराष्ट्र राज्य के महाधिवक्ता के लिए एम. एन. श्रॉफ

अधिवक्ताओं की ओर से एम. एम. अब्दुल खादर और के. आर. नाम्बियार

केरल राज्य के लिए जनरल।

कर्नाटक राज्य के महाधिवक्ता के लिए एन. नेत्तर। प्रनत कुमार चटर्जी, जी. एस. चटर्जी और पी. के. चटर्जी

पश्चिम बंगाल राज्य के लिए।

बी. एम. पटनायक एड. जनरल। और उड़ीसा राज्य के लिए आर. के. मेहता

एस. एल. गर्ग, अधिवक्ता। मध्य राज्य के लिए जनरल और एस. के. गंभीर

प्रदेश।

आर. के. रस्तोगी, अधिवक्ता। जेनल, बद्रीदास शर्मा और अरुणेश्वर

राजस्थान राज्य के लिए गुप्ता।

उत्तर प्रदेश राज्य के लिए एम. वी. गोस्वामी और ओ. पी. राणा।

हस्तक्षेप करने वालों के लिए पी. एच. पारेख, मेसर्स। डोमेस्टिक कास्ट प्रा. लि.

और ओआरएस। गोकुल गैस प्रा. लिमिटेड और ओआरएस। और परेल इन्वेस्टमेंट प्राइवेट लिमिटेड। लि. और ओआरएस।

आवेदक हस्तक्षेपकर्ताओं के लिए एम. एन. फडके और एन. एम. घटाटे

एम/एस। वामन राव और ओआरएस।

आर. के. गर्ग और वी. जे. फ्रांसिस आवेदक मध्यस्थ के लिए

श्याम नारायण तिवारी।

चिंता सुब्बा राव आवेदक व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप करते हैं।

एम. सी. भंडारे और एम. एन. श्रॉफ राज्य के लिए आवेदक मध्यस्थ

महाराष्ट्र से।

आई.

प्री मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

235

कैप्टन। विरेन्द्र कुमार आवेदक व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप करते हैं।

जी. एस. के लिए एन. एस. ग्रेवाल, बी. पी. माहेश्वरी और सुरेश सेठी

ग्रेवाल आवेदक मध्यस्थ।

निम्नलिखित निर्णय दिए गए: चंद्रचूड़ , सी. जे.- केशवानंद भारती (1) में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

बहुमत से कि हालांकि अनुच्छेद 368 द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति दी गई है, उस शक्ति का प्रयोग इस तरह से नहीं किया जा सकता है कि संविधान की बुनियादी विशेषताओं को नुकसान पहुंचे या इसकी मूल संरचना को नष्ट किया जा सके। अनुच्छेद 32 के तहत याचिकाओं के इस समूह में विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या संविधान (42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55 संशोधन शक्ति पर उस सीमा का उल्लंघन करती है।

याचिकाकर्ता संख्या 1, जो एक सीमित कंपनी है, के पास एक कपड़ा है।

कर्नाटक राज्य में स्थित मिनर्वा मिल्स नामक उपक्रम। इस उपक्रम का राष्ट्रीयकरण किया गया और केंद्र सरकार ने बीमार कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों के तहत इसे अपने हाथ में ले लिया। याचिकाकर्ता 2 से 6 याचिकाकर्ता संख्या 1 के शेयरधारक हैं, जिनमें से कुछ असुरक्षित लेनदार और कुछ सुरक्षित लेनदार भी हैं।

उत्तरदाता 1 भारत संघ है।

उत्तरदाता 2 है

राष्ट्रीय वस्त्र निगम लिमिटेड जिसमें

कपड़ा उपक्रम

मिनर्वा मिल्स का स्वामित्व 1974 के राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 3 (2) के तहत निहित है। प्रत्यर्थी 3 दूसरे प्रत्यर्थी की सहायक कंपनी है।

20 अगस्त, 1970 को केंद्र सरकार ने एक

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के मामलों की पूर्ण और पूर्ण जांच करने के लिए उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 15 के तहत समिति, क्योंकि यह राय थी कि उत्पादन की मात्रा में पर्याप्त गिरावट आई थी या होने की संभावना थी। उक्त समिति ने जनवरी 1971 में केंद्र सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी, जिसके आधार पर केंद्र सरकार ने 1951 के अधिनियम की धारा 18ए के तहत 19 अक्टूबर 1971 को एक आदेश पारित किया, जिसमें प्रतिवादी 2 को पदभार संभालने के लिए अधिकृत किया गया।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड का प्रबंधन इस आधार पर कि उसके मामलों का प्रबंधन अत्यधिक हानिकारक तरीके से किया जा रहा था जनहित।

(1) [1973] पूरक। एससीआर 1.

इन याचिकाओं के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने संवैधानिक को चुनौती दी

बीमार वस्त्र उपक्रमों के कुछ प्रावधानों की वैधता

(राष्ट्रीयकरण) अधिनियम और 19 अक्टूबर, 1971 का आदेश।

हम.

इस स्तर पर उस चुनौती के गुणों से चिंतित नहीं हैं। द.

याचिकाकर्ता संविधान की संवैधानिकता को चुनौती देते हैं

(39th संशोधन) अधिनियम जिसने विवादित राष्ट्रीयकरण को शामिल किया

संविधान की 9 वीं अनुसूची में प्रविष्टि 105 के रूप में अधिनियम। कि

अनुच्छेद 31 बी की वैधता के बारे में सवाल उठाता है

संविधान जिसके साथ हम एक और समूह में निपटने का प्रस्ताव करते हैं याचिकाएँ। अंत में, याचिकाकर्ताओं ने संवैधानिकता को चुनौती दी

संविधान (42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55

और यह केवल यही विवाद है जिससे हम निपटने का प्रस्ताव करते हैं।

ये याचिकाएँ।

42 वीं की धारा 4 और 55 की वैधता को चुनौती

संशोधन में बहुमत निर्णय के अनुपात पर निर्भर करता है

केशवानंद भारती (सुप्रा)। में प्रस्तुत किए गए कई विचार

उस मामले पर ग्रंथों में चर्चा और विश्लेषण किया गया है और

याचिकाकर्ताओं के बाद से बहुमत के फैसलों का एक संक्षिप्त सारांश बनाना उनके साथ खड़ा होना चाहिए या गिरना चाहिए। उन निर्णयों, अब में बिंदु पर

सीजे सीकरी द्वारा जारी किया गया था। , शेलत और ग्रोवर जे. जे. , हेगड़े और

मुखर्जी जे. जे. , जे. जगमोहन रेड्डी और खन्ना। जे.

सी. जे. सीकरी। , माना कि स्वतंत्रता का मौलिक महत्व

व्यक्ति को आने वाले सभी समय के लिए संरक्षित किया जाना चाहिए और वह इसे अस्तित्व से बाहर संशोधित नहीं किया जा सका। विद्वानों के अनुसार

मुख्य न्यायाधीश, संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार

संविधान को निरस्त नहीं किया जा सकता है, हालांकि यह एक उचित संक्षिप्तता है

उन अधिकारों का लोक हित में प्रभाव डाला जा सकता है। वहाँ एक है

आवश्यक निहितार्थ द्वारा संशोधन की शक्ति पर सीमा।

जो प्रस्तावना के पढ़ने से स्पष्ट था और इसलिए,

विद्वान मुख्य न्यायाधीश के अनुसार, अभिव्यक्ति "संशोधन"

इस संविधान के अनुच्छेद 368 का अर्थ है इसमें कोई जोड़ या परिवर्तन।

व्यापक रूप में संविधान के किसी भी प्रावधान

मूल उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाई गई प्रस्तावना

संविधान। तदनुसार, संविधान का प्रत्येक प्रावधान संशोधन के लिए खुला था बशर्ते संविधान की मूल नींव या संरचना क्षतिग्रस्त या नष्ट न हो।

शेलत और ग्रोवर, जे. जे. माना कि संविधान की प्रस्तावना

इसमें संविधान के मूल सिद्धांतों का संकेत है। विद्वान न्यायाधीशों के अनुसार, संविधान के भाग III और IV जो क्रमशः मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों को शामिल करते हैं;

1

!

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

237

संतुलित और सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। संविधान के दो अभिन्न अंगों के बीच यह संतुलन और सद्भाव संविधान का एक मूल तत्व है जिसे बदला नहीं जा सकता है। इसलिए अनुच्छेद 368 में आने वाले 'संशोधन' शब्द का अर्थ इस तरह से लगाया जाना चाहिए कि संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति को संरक्षित किया जा सके, लेकिन इसके परिणामस्वरूप संविधान की संरचना और पहचान को नुकसान पहुंचे या नष्ट न हो। इस प्रकार संशोधन करने की शक्ति पर एक निहित सीमा थी जो संसद को संविधान या इसकी किसी भी मूल विशेषता की पहचान को निरस्त करने या बदलने से रोकती थी।

हेगड़े और मुखर्जी, जेजे। माना कि भारत का संविधान

जो अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक दस्तावेज के बजाय एक सामाजिक दस्तावेज है, एक सामाजिक दर्शन पर आधारित है और इसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं: बुनियादी और परिस्थितिजन्य। मूल घटक स्थिर रहा, परिस्थिति परिवर्तन के अधीन थी। विद्वान न्यायाधीशों के अनुसार, मूल तत्वों की व्यापक रूपरेखा और संविधान की मौलिक विशेषताओं को प्रस्तावना में चित्रित किया गया है और संसद के पास उन्हें निरस्त करने या समाप्त करने की कोई शक्ति नहीं है। बुनियादी तत्व या बुनियादी विशेषताएं। विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि एक कल्याणकारी राज्य का निर्माण प्रत्येक सरकार का अंतिम लक्ष्य है, लेकिन

इसका मतलब यह नहीं है कि एक कल्याणकारी राज्य के निर्माण के लिए मानव स्वतंत्रता को पूरी तरह से नष्ट करना होगा। इन परीक्षणों को लागू करते हुए, विद्वान न्यायाधीशों ने अनुच्छेद 31 सी को इसके अपरिवर्तित रूप में भी अमान्य कर दिया:

जे. जगनमोहन रेड्डी ने माना कि 'संशोधन' शब्द का उपयोग किया गया था

एक परिवर्तन की अनुमति देने के अर्थ में, विनाश के विपरीत-जो निरसन या निरसन के कारण होता है। इसलिए, चौड़ाई संशोधन की शक्ति को स्वयं संशोधन करने की शक्ति में संशोधन करके बढ़ाया नहीं जा सका। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि संविधान की मूल संरचना के आवश्यक तत्व इसकी प्रस्तावना में परिलक्षित होते हैं और संविधान की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं न्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्थिति की समानता हैं।

और अवसर। 'संशोधन' शब्द संभवतः प्रमुख विशेषताओं और मौलिक स्वतंत्रताओं को निरस्त करने के अधिकार को शामिल नहीं कर सकता था और इसलिए, मूल संरचना के उस हिस्से को क्षतिग्रस्त या नष्ट नहीं किया जा सकता था। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, अनुच्छेद 31 सी के प्रावधान, जैसा कि वे उस समय थे, संसद और राज्य विधानमंडलों को इसमें निर्दिष्ट सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) ने अनुच्छेद 14 द्वारा दिए गए अधिकार को पूरी तरह से निरस्त कर दिया और इस कारण से असंवैधानिक थे:

अंत में, विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि हालांकि संशोधन की शक्ति व्यापक थी, लेकिन यह किसी भी मौलिक अधिकार को पूरी तरह से निरस्त करने या नष्ट करने या नुकसान पहुंचाने की शक्ति को नहीं समझता था या

संविधान की मूल संरचना के आवश्यक तत्व या किसी के लिए नहीं

संविधान की पहचान को नष्ट करना। इन सीमाओं के अधीन, संसद को संविधान के किसी भी और हर प्रावधान में संशोधन करने का अधिकार था।

खन्ना, जे. छह लोगों के उपरोक्त विचारों से मोटे तौर पर सहमत थे।

विद्वान न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'संशोधन' शब्द यह अभिनिर्धारित करता है कि संविधान को अपनी पहचान खोए बिना जीवित रहना चाहिए, जिसका अर्थ है कि संविधान की मूल संरचना या ढांचा संविधान के किसी भी संशोधन से जीवित रहना चाहिए। विद्वानों के अनुसार

न्यायाधीश, हालांकि यह संसद के लिए अनुमत था। अपनी संशोधन शक्ति का प्रयोग करते हुए, परिवर्तनों को प्रभावित करने के लिए ताकि बदलती स्थितियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नींव को छूने या बुनियादी संस्थागत पैटर्न को बदलने की अनुमति नहीं थी। इसलिए, "संविधान का संशोधन" शब्द, अपने व्यापक विस्तार के बावजूद और अपने विस्तार के बावजूद, संविधान की मूल संरचना या ढांचे को नष्ट करने या निरस्त करने के लिए संसद को सशक्त बनाने का प्रभाव नहीं डाल सके।

केशवानंद भारती में विभिन्न निर्णयों का सारांश

(सुप्रा) पर तेरह में से नौ न्यायाधीशों ने हस्ताक्षर किए थे। सारांश के पैराग्राफ 2 में कहा गया है कि बहुमत के अनुसार, "अनुच्छेद 368 संसद को मूल संरचना में बदलाव करने में सक्षम नहीं बनाता है या

संविधान का ढांचा "। सारांश निर्णय का एक वैध हिस्सा है या नहीं, या लेखकों द्वारा उद्धृत विद्वानों के कारणों के लिए असंगत है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि यह बहुमत के दृष्टिकोण को सही ढंग से दर्शाता है।

वह प्रश्न जो हमें इसके आधार पर निर्धारित करना है

केशयानंद भारती (सुप्रा) में बहुमत का विचार यह है कि क्या संविधान (42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 और 55 द्वारा पेश किए गए संशोधन संविधान की किसी भी मूल विशेषता या आवश्यक तत्व को नष्ट करके संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुंचाते हैं।

42 वें संशोधन की धारा 4, जिसे लागू किया गया था

संविधान में "भाग IV में निर्धारित सभी या किसी भी सिद्धांत" के शब्दों और आंकड़ों को प्रतिस्थापित किया गया है। अनुच्छेद 39 के खंड (बी) या खंड (सी) में निर्दिष्ट सिद्धांत। 42 वें संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित अनुच्छेद 31 सी इस प्रकार है:

" 31 सी. अनुच्छेद 13 में कुछ भी निहित होने के बावजूद, नहीं

सभी को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून

या भाग IV में निर्धारित किसी भी सिद्धांत को माना जाएगा।

इस आधार पर शून्य होना कि यह माइनरवा मिल्स लिमिटेड के साथ असंगत है या लेता है।

वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

239

अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को समाप्त या कम करता है,

ऐसी नीति को प्रभावी बनाने के लिए इस पर विचार किया जाएगा। किसी भी न्यायालय में इस आधार पर कि यह प्रभावी नहीं होता है

ऐसी नीतिः

बशर्ते कि जहां ऐसी विधि के विधानमंडल द्वारा बनाई जाती है

राज्य में, इस अनुच्छेद के प्रावधान उस पर लागू नहीं होंगे।

जब तक कि ऐसा कानून, के विचार के लिए आरक्षित नहीं किया गया है

राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति प्राप्त कर ली है। 33 "

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम की धारा 55

1976 , जिसे भी 3 जनवरी से लागू किया गया था।

1977 अनुच्छेद 368 में उप-धारा (4) और (5) अंतःस्थापित की गई जो इस प्रकार हैः

" (4) इस संविधान का कोई संशोधन नहीं (जिसमें

भाग III) के बनाए गए या बनाए जाने का तात्पर्य

इस अनुच्छेद के तहत (चाहे प्रारंभ से पहले या बाद में) संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम की धारा 55

1976) किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न में बुलाया जाएगा।

(5) शंकाओं को दूर करने के लिए, यह घोषित किया जाता है कि

घटक शक्ति पर कोई सीमा नहीं होगी।

जोड़, परिवर्तन या निरसन के माध्यम से संशोधन करने के लिए संसद

इस अनुच्छेद के तहत इस संविधान के प्रावधान "।

हम पहले तुलनात्मक रूप से आसान पर विचार करेंगे।

42 वें संशोधन की धारा 55 द्वारा किए गए संशोधनों की वैधता के संबंध में प्रश्न। यह अनुच्छेद 368 में दो नए खंड पेश करता है, अर्थात् खंड 4 और 5। खंड 5 अपने लिए बोलता है और स्वयं है

व्याख्यात्मक। इसका घोषित उद्देश्य "संदेहों को दूर करना" है, लेकिन केशवानंद भारती (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले के बाद, इस पर सीमाओं के अस्तित्व के संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है।

संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति। अनुच्छेद 368 के संवैधानिक इतिहास के संदर्भ में, अनुच्छेद 368 में निहित घोषणा का वास्तविक उद्देश्य उन सीमाओं को हटाना है। खंड 5 संसद को

संविधान में संशोधन करने की एक विशाल और अनिर्धारित शक्ति प्रदान करता है, ताकि इसे मान्यता से विकृत किया जा सके। केशवानंद भारती में बहुमत के निर्णय का विषय गीत

(सुप्रा) है: ' संशोधन करें क्योंकि आप उस गंभीर दस्तावेज़ को भी संशोधित कर सकते हैं जिसे संस्थापक पिता ने आपकी देखभाल के लिए प्रतिबद्ध किया है, क्योंकि आप अपनी पीढ़ी की जरूरतों को अच्छी तरह से जानते हैं। लेकिन, संविधान एक बहुमूल्य विरासत है, इसलिए आप इसकी पहचान को नष्ट नहीं कर सकते। बहुमत

संसद ने संविधान में परिवर्तन करने के अधिकार को तब तक स्वीकार किया जब तक कि वे इसके मूल ढांचे के भीतर हैं।

और [1981]

1 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

1 240

वह निर्णय क्या आशंकाएँ पैदा कर सकता है या संदेह पैदा कर सकता है यदि केवल

इसका मतलब यह है और अधिक नहीं है: प्रस्तावना लोगों को आश्वस्त करती है कि

भारत एक ऐसी राजनीति है जिसकी मूल संरचना को उसमें संप्रभु के रूप में वर्णित किया गया है। लोकतांत्रिक गणराज्य; संसद इसमें कोई भी संशोधन कर सकती है

संविधान जैसा कि यह समीचीन समझता है जब तक कि वे नुकसान नहीं पहुँचाते हैं

या भारत की संप्रभुता और उसके लोकतांत्रिक, गणतंत्रवादी चरित्र को नष्ट कर दें।

लोकतंत्र कोई खाली सपना नहीं है। यह एक सार्थक अवधारणा है जिसकी

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा की स्वतंत्रता; और स्थिति और अवसर की समानता आदि आवश्यक विशेषताओं को प्रस्तावना में ही पढ़ा जाता है। इसका उद्देश्य, जैसा कि प्रस्तावना में फिर से निर्धारित किया गया है, लोगों के बीच भाईचारे की एक स्थायी भावना को बढ़ावा देना है जो व्यक्ति और समाज की गरिमा को सुनिश्चित करता है। राष्ट्र की एकता '। अनुच्छेद 368 का नया पेश किया गया खंड 5 संसद को बिना किसी प्रावधान के अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार देकर उन स्तंभों को ध्वस्त कर देता है जिन पर प्रस्तावना टिकी हुई है।

" सीमा जो भी हो "। कोई भी घटक शक्ति संभवतः नहीं जा सकती है।

खंड (5) द्वारा प्रदत्त आकाश से अधिक-उच्च शक्ति, क्योंकि यह संसद को "इस संविधान के प्रावधानों को निरस्त करने" का भी अधिकार देती है। अर्थात्, लोकतंत्र को निरस्त करना और इसके स्थान पर सरकार का एक पूरी तरह से विरोधी रूप रखना। यह सबसे प्रभावी हो सकता है

किसी अन्य नाम से लोकतंत्र को बुलाए बिना, लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय से पूरी तरह से वंचित करके,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा की स्वतंत्रता को कम करना।

और बराबरी के समाज के भव्य आदर्श के प्रति प्रतिबद्धता को त्याग कर। नष्ट करने की शक्ति संशोधन करने की शक्ति नहीं है।

चूँकि संविधान ने संशोधन करने की सीमित शक्ति प्रदान की थी

संसद पर, संसद उस अभ्यास के तहत नहीं हो सकती है

सीमित शक्ति उस शक्ति को एक पूर्ण शक्ति में विस्तारित करती है। वास्तव में, एक सीमित संशोधन शक्ति की बुनियादी विशेषताओं में से एक है

हमारा संविधान और इसलिए, उस शक्ति की सीमाएँ नहीं हो सकतीं।

नष्ट हो जाएँ। दूसरे शब्दों में, संसद अनुच्छेद 368 के तहत ऐसा नहीं कर सकती।

अपनी संशोधन शक्ति का विस्तार करें ताकि अपने लिए अधिकार प्राप्त कर सकें

संविधान को निरस्त या निरस्त करना या इसकी बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं को नष्ट करना। एक सीमित शक्ति का दाता द्वारा नहीं कर सकते हैं

उस शक्ति का प्रयोग सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में बदल देता है।

42 वां संशोधन जिसने खंड 4 और 5 पेश किया

अनुच्छेद 368 में प्रस्तावना में संशोधन किया गया जिसके लिए नहीं

अपवाद लिया जा सकता है। वे संशोधन केवल इसके भीतर नहीं हैं।

संविधान का ढांचा लेकिन वे इसके दर्शन को जीवंतता देते हैं; वे इसकी नींव को ताकत और सहायता प्रदान करते हैं। के द्वारा

उपरोक्त संशोधन, जिसे मूल रूप से 'संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य' के रूप में वर्णित किया गया था, एक 'संप्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष मिनर्वा मिल्स लिमिटेड' बन गया।

वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

241

लोकतांत्रिक गणराज्य और 'एकता की एकता' को बढ़ावा देने का प्रस्ताव

'राष्ट्र' को एकता और अखंडता को बढ़ावा देने के वादे में ऊपर उठाया गया था राष्ट्र का "। ये संशोधन सबसे स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

किस प्रकार संशोधन शक्ति का लगातार प्रयोग किया जा सकता है

संविधान का धर्म। वे और अधिक का वादा करते हैं; वे नहीं करते एक बहुमूल्य विरासत को नष्ट कर दें।

श्रीमती में। इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण, (1) खन्ना, जे।

संविधान के अनुच्छेद 329 ए के खंड 4 को समाप्त कर दिया गया

की वैधता से संबंधित विवाद पर समझौता करने के लिए मंच एक चुनाव , इस आधार पर कि विशेष अनुच्छेद जो था

एक संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रस्तुत किया गया जो स्वतंत्र होने के सिद्धांत का उल्लंघन करता है और निष्पक्ष चुनाव जो लोकतंत्र का एक अनिवार्य अभिधारणा है और

जो बदले में संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है।

-मैथ्यू, जे. ने भी इस आधार पर अनुच्छेद को निरस्त कर दिया कि इससे नुकसान हुआ है।

लोकतंत्र की अनिवार्य विशेषता। हम में से एक। चंद्रचूड़, जे. पहुंचे।

समान निष्कर्ष यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अनुच्छेद के प्रावधान थे

अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकार का पूरी तरह से निषेध,

एक अधिकार जो, किसी भी अन्य अधिकार से अधिक, एक मूल अभिधारणा है -

संविधान। इस प्रकार जबकि प्रस्तावना में किए गए संशोधन

42 एन. डी. संशोधन स्वयं के दायरे का एक चित्रण प्रदान करता है

शक्ति का संशोधन, अंतिम बार संदर्भित मामला एक चित्रण प्रदान करता है

संशोधन शक्ति पर सीमाएँ।

चूंकि, उपर्युक्त कारणों से, अनुच्छेद 368 का खंड 5

संशोधन शक्ति पर सीमाओं का उल्लंघन करता है, यह माना जाना चाहिए:

असंवैधानिक होना।

अनुच्छेद 368 के नए शुरू किए गए खंड 4 को नुकसान उठाना होगा

खंड 5 के समान भाग्य क्योंकि दोनों खंड आपस में जुड़े हुए हैं। खंड 5

खंड के दौरान संशोधन शक्ति पर सभी सीमाओं को हटाने का इरादा रखता है

4 अदालतों को किसी भी संशोधन पर सवाल उठाने की उनकी शक्ति से वंचित करता है

संविधान से। हमारा संविधान एक अच्छे संतुलन पर आधारित है

राज्य की तीन शाखाओं के बीच शक्ति, अर्थात् कार्यपालिका,

विधानमंडल और न्यायपालिका। यह न्यायाधीशों का कार्य है,

न कि उनका कर्तव्य, कानूनों की वैधता पर उच्चारण करना। अगर अदालतें

उस शक्ति से पूरी तरह से वंचित, लोगों को प्रदान किए गए मौलिक अधिकार केवल एक अलंकरण बन जाएंगे क्योंकि आर. ई. एम. सी. के बिना अधिकार पानी में लिखित के समान हैं। एक नियंत्रित संविधान तब अनियंत्रित हो जाएगा। अनुच्छेद 368 का खंड (4) नागरिकों को निवारण के सबसे मूल्यवान तरीकों में से एक से पूरी तरह से वंचित करता है जिसकी गारंटी अनुच्छेद 32 द्वारा दी गई है। संविधान की पहचान को नष्ट करने के अधिकार को इस प्रावधान के साथ प्रदान करना कि कोई अदालत नहीं

(1) [1976] 2 एस. सी. आर 341

i 1

इस तरह के विनाश की वैधता पर हमें एक लगता है

सीमाओं के उल्लंघन का पारदर्शी मामला

शक्ति में संशोधन।

यदि किसी संवैधानिक संशोधन को अमान्य नहीं घोषित किया जा सकता है

भले ही यह संविधान की मूल संरचना को नष्ट कर दे, एक कानून पारित किया गया

इस तरह के संशोधन के अनुसरण में न्यायिक दायरे से परे होगा।

समीक्षा क्योंकि इसे संवैधानिक संरक्षण प्राप्त होगा संशोधन जिसे अदालतें निरस्त करने के लिए शक्तिहीन होंगी। अनुच्छेद 13

संविधान का तब एक मृत पत्र बन जाएगा क्योंकि साधारण कानून इस आधार पर अदालतों की जांच से बच जाएंगे कि

वे एक संवैधानिक संशोधन के बल पर पारित किए जाते हैं जो

चुनौती देने के लिए तैयार नहीं है।

अनुच्छेद 368 का खंड 4 एक अर्थ में खंड 5 का एक उपांग है।

हालाँकि हम इसे एक तार्किक परिणाम के रूप में वर्णित करना पसंद नहीं करते हैं

खंड 5. यदि यह सत्य है, जैसा कि खंड 5 में कहा गया है, कि संसद

संविधान में संशोधन करने की असीमित शक्ति है, अदालतों के पास नहीं हो सकता है

किसी भी संवैधानिक संशोधन को निरस्त करने का अधिकार क्षेत्र

असंवैधानिक है। इसलिए खंड 4 इससे अधिक या कम कुछ नहीं कहता है।

खंड 5 क्या अभिधारणा करता है। यदि खंड 5 संशोधन शक्ति से परे है

संसद का खंड 4 समान रूप से उस शक्ति से परे होना चाहिए और इसे इस तरह से गिराया जाना चाहिए।

अगला सवाल जिस पर हमें विचार करना है वह यह है कि क्या

अनुच्छेद 31 सी के 42 वें संशोधन की धारा 4 द्वारा किया गया संशोधन

संविधान वैध है। श्री पालखीवाला ने चुनौती नहीं दी

अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी की वैधता, और वास्तव में यह नहीं हो सकता है

किया। असंशोधित अनुच्छेद 31 सी ए की विषय वस्तु बनाता है।

अलग कार्यवाही और हमने उसमें संकेत दिया है कि यह है

संवैधानिक रूप से उस हद तक मान्य है जिस हद तक इसे बरकरार रखा गया था

केशवानंद भारती (सुप्रा)।

42 वें संशोधन की धारा 4 द्वारा प्रस्तुत संशोधन द्वारा,

अनुच्छेद 31 सी में यह प्रावधान किया गया है कि प्रभाव देने वाला कोई कानून नहीं है

सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति के लिए

भाग IV में निर्धारित "को आधार पर शून्य माना जाएगा।

कि यह किसी के साथ असंगत है या ले जाता है या कम करता है

अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19 या अनुच्छेद 31 द्वारा प्रदत्त अधिकार। यह स्पष्ट है

कि उन कानूनों का दायरा जो अनुच्छेद 31 सी के अंतर्गत आते हैं

संशोधन द्वारा काफी विस्तार किया गया। जबकि मूल अनुच्छेद 31 सी के तहत, चुनौती को केवल देने वाले कानूनों के संबंध में बाहर रखा गया था।

आई.

सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति पर प्रभाव

संशोधन के तहत अनुच्छेद 39 के खंड (बी) या खंड (सी) में निर्दिष्ट,

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. , यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

243

सभी को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाले सभी कानून या भाग IV में निर्धारित किसी भी सिद्धांत को सभी से बचाया जाता है।

अनुच्छेद 14 और 19 के तहत संवैधानिक चुनौती। (संदर्भ में

44 वें संशोधन के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 31 को हटा दिया गया था

मौलिक अधिकार के रूप में संपत्ति के अधिकार का उन्मूलन)। द.

इस स्थिति के आलोक में विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या

: 42 वें संशोधन की धारा 4 ने एक ऐसा परिणाम लाया है जो मूल रूप से और मौलिक रूप से नीचे दिए गए परिणाम से अलग है।

अपरिवर्तित लेख। यदि संशोधन कोई नहीं लाता है

ऐसे परिणाम के रूप में, इसकी वैधता को उन्हीं कारणों से बरकरार रखना होगा

जिसके लिए अपरिवर्तित अनुच्छेद की वैधता को बरकरार रखा गया था।

श्री पालखीवाला का तर्क, जो की ओर से उपस्थित होते हैं

याचिकाकर्ता इस प्रकार काम करते हैं: धारा 4 द्वारा प्रस्तुत संशोधन

42 वां संशोधन भाग III के बीच सामंजस्य को नष्ट करता है। और मौलिक अधिकारों को प्रदान करके संविधान का चौथा

राज्य नीति सेट के निर्देशक सिद्धांतों के अधीन भाग III द्वारा

संविधान के भाग IV में, संविधान निर्माताओं ने नहीं किया

मौलिक के बीच एक वैमनस्य या असंतुलन पर विचार करें

अधिकार और निर्देशक सिद्धांत और वास्तव में वे दोनों ही थे

एक दूसरे को पूरक बनाने के लिए। संविधान की मूल संरचना

इस आधार पर परीक्षण करें कि जबकि निर्देशक सिद्धांत हैं

सरकार के अनिवार्य उद्देश्य, उन उद्देश्यों को केवल प्राप्त किया जा सकता है

अनुमेय साधनों के माध्यम से जो भाग III में निर्धारित किए गए हैं संविधान। दूसरे शब्दों में, भाग IV में निर्धारित अनिवार्य लक्षय

इसे अधिनायकवादी तरीकों से नहीं बल्कि केवल तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है।

जो प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अनुरूप हैं

भाग III। यदि 42 वें संशोधन द्वारा संशोधित अनुच्छेद 31 सी है

खड़े होने की अनुमति, यह विधायिका को एक अप्रतिबंधित लाइसेंस प्रदान करेगा

और केंद्र और राज्यों दोनों में कार्यपालिका को नष्ट करने के लिए

लोकतंत्र और एक सत्तावादी शासन स्थापित करें। सभी विधायी कार्रवाई

और प्रत्येक सरकारी 1 कार्रवाई सीधे या सीधे संबंधित होने का तात्पर्य है। अप्रत्यक्ष रूप से, राज्य नीति के कुछ निर्देशक सिद्धांत के लिए। यह है सुरक्षा

इसलिए संशोधित अनुच्छेद प्रत्येक विधायी के लिए उपलब्ध होगा।

सूर्य के नीचे क्रिया। अनुच्छेद 31 सी समानता के अधिकार को निरस्त करता है।

अनुच्छेद 14 द्वारा गारंटी, जो एक गणतंत्र की नींव है

सरकार का रूप और अपने आप में संविधान की एक बुनियादी विशेषता है।

विद्वान वकील आगे तर्क देते हैं कि यह असंभव है

यह परिकल्पना की गई है कि गारंटीकृत मौलिक स्वतंत्रताओं का विनाश

भाग III द्वारा कुछ के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है

-समान न्याय और मुफ्त कानूनी सहायता जैसे निर्देशक सिद्धांत, संगठन

ग्राम पंचायतें, श्रमिकों के लिए जीवन निर्वाह मजदूरी प्रदान करना और न्यायपूर्ण और

काम की मानवीय स्थितियाँ, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा -

√

244

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

बच्चे, कृषि और पशुपालन का संगठन, और पर्यावरण और वन्यजीवों का संरक्षण। संविधान सभा ने भाग III और IV के बीच सामंजस्यपूर्ण संतुलन बनाकर जिसे खारिज कर दिया था, उसे 42 वें संशोधन द्वारा वापस लाया गया है।

अंत में, यह आग्रह किया जाता है कि संविधान ने प्रावधान किया था

राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल घोषित किए जाने पर मौलिक अधिकारों को लागू करने के अधिकार के निलंबन के लिए। संविधान की मूल योजना के तहत, मौलिक अधिकारों को केवल उस अवधि के दौरान अपनी सर्वोच्चता खोनी थी जब आपातकाल की घोषणा लागू होती है। 42 वें संशोधन की धारा 4 ने कानून को लूट लिया है।

उनकी सर्वोच्चता के मौलिक अधिकार और उन्हें राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अधीन कर दिया जैसे कि कोई स्थायी आपातकाल चल रहा हो। जबकि अनुच्छेद 359 आपातकाल के दौरान मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को निलंबित करता है, अनुच्छेद 31 सी सामान्य समय में उन्हें वस्तुतः निरस्त कर देता है। इस

प्रकार, संविधान की मूल विशेषताओं में से एक, भाग III और IV के बीच सामंजस्य को नष्ट करने के अलावा, 42 वें संशोधन की धारा 4 इस बात से इनकार करती है कि

लोग एक स्वतंत्र लोकतंत्र का आशीर्वाद देते हैं और एक सत्तावादी राज्य के निर्माण की नींव रखते हैं।

विद्वान वकील ने इन दलीलों का कड़ा विरोध किया

सामान्य रूप से: अवरोधक कानूनी प्रक्रियाओं को समाप्त करके निर्देशात्मक सिद्धांतों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना कभी भी संविधान की बुनियादी विशेषताओं को नष्ट या नुकसान पहुंचाने के लिए नहीं कहा जा सकता है। इसके अलावा,। जहाँ तक अनुच्छेद 19 (1) के खंड (घ) और (ङ) का संबंध है, भाग 4 के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई गई विधियाँ अनिवार्य रूप से लोक हित में होंगी और संविधान के अनुच्छेद 19 (5) के अंतर्गत आएंगी। इसलिए वे किसी भी स्थिति में बच जाएंगे। संविधान का इतिहास, विशेष रूप से अनुच्छेद 31 (4) और 31 (6) को शामिल करना और अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी द्वारा किए गए विभिन्न संशोधन, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था, अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन शक्ति की व्यापकता को स्थापित करता है। इसलिए विवादित संशोधन स्पष्ट रूप से संशोधन शक्ति के दायरे में आता है।

विद्वान महान्यायवादी आगे तर्क देते हैं: एक कानून जो

अनुच्छेद 38 के निर्देश को पूरा करना मौलिक स्वतंत्रताओं को निरस्त करने या संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुंचाने में असमर्थ है। क्योंकि वह संरचना स्वयं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित है। अनुच्छेद 38, जिसमें एक निर्देश है

सिद्धांत, यह प्रदान करता है कि राज्य कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा

लोगों को प्रभावी ढंग से सुरक्षित और संरक्षित करके

सामाजिक व्यवस्था जिसमें न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक,

राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करें। एक कानून जो अनुपालन करता है।

: 1

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

245

अनुच्छेद 38 के साथ कुछ आर्थिक अधिकारों को छोड़कर मौलिक स्वतंत्रताओं को निरस्त नहीं किया जा सकता है और वह भी असमानताओं को कम करने के उद्देश्य से। मौलिक स्वतंत्रताओं को निरस्त करने वाला कानून या तो सामाजिक अन्याय या आर्थिक अन्याय या राजनीतिक अन्याय लाएगा। इस प्रकार

यह अनुच्छेद 38 के अंतर्गत आने के बजाय इसका उल्लंघन करेगा और इस कारण से यह अनुच्छेद 31 सी के संरक्षण से बाहर होगा। किसी भी स्थिति में, अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 का प्रत्येक उल्लंघन संविधान के मूल ढांचे को नुकसान नहीं पहुंचाता है।

विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल ने सावधानीपूर्वक प्रस्तुत किया है

अनवर अली से लेकर इस न्यायालय के 11 फैसलों का तैयार चार्ट सरकार (1) से हाजी कादर कुट्टी (2) उन मामलों पर संशोधित अनुच्छेद 31 सी के संभावित प्रभाव को दिखाने के लिए जहां इस न्यायालय ने प्रावधान किए थे।

अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाले कुछ कानूनों का। उन्होंने आग्रह किया कि

उनके सारणीबद्ध विश्लेषण के आधार पर कि ऐसे कई मामले हो सकते हैं जो

निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित नहीं हैं और इसलिए नहीं होंगे

संशोधित लेख द्वारा सहेजा गया। वे मामले अनवर अली में दर्ज हैं।

सरकार (सुप्रा), लच्मंडस आहूजा, (3) हबीब मुहम्मद (4) मूपिल

नायर, (5) जियालाल, (6) हाजी अब्दुल शकूर, (1) देवी दास, (8) उस्मानिया विश्वविद्यालय, (9) न्यू मानेक चौक, (10) आनंदजी हरिदास, (1 1) और हाजी कादर कुट्टी (सुप्रा)। उन्होंने निर्देशात्मक सिद्धांत से संबंधित कानूनों से जुड़े 13 मामलों का एक चार्ट भी प्रस्तुत किया है जिसमें मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त किया गया था लेकिन निरस्त नहीं किया गया था। चूँकि लोक हित में मौलिक अधिकारों को संक्षिप्त करने की अनुमति है क्योंकि यह मूल संरचना को नुकसान नहीं पहुंचाता है, इसलिए 13 मामलों में शामिल कानूनों के समान कानूनों को संशोधित अनुच्छेद का संरक्षण नहीं लेना होगा। ये उदाहरणात्मक मामले राम प्रसाद साही (1 2), राव मनोहर सिंहजी (1 3), कुन्हीकामन (1 4),

(1) [1952] एससीआर 284।

(2) [1969] 1 एससीआर 645।

(3) [1952] एससीआर 710।

(4) [1953] एससीआर 661।

(5) [1961] 3 एससीआर 77। (6) [1963] 2 एससीआर 864।

(7) [1964] 8 एससीआर 217। (8) [1967] 3 एससीआर 557।

(9) [1967] 2 एससीआर 211। (10) [1967] 2 एससीआर 679।

(11) [1968] 1 एससीआर 661।

(13) [1954] एससीआर 996। (14) [1962] 1 एस. सी. आर. 319 (पूरक)

 उड़ीसा सीमेंट (1), कृष्णस्वामी नायडू (2), मुकनचंद (3), नल्लराजा रेड्डी (4), जालान ट्रेडिंग कंपनी। , ( ) , कामरूप (), मिज़ो जिला परिषद (7), बालम्मल (8), रासबिहारी पांडे (9) और आर. सी. कूपर (10)।

विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल का तर्क इस प्रकार है: केशवानंद भारती (सुप्रा) के अनुपात को निकालने के लिए इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि याचिकाकर्ताओं द्वारा जितने मामले मांगे गए थे, उतने ही मामले थे। अनुच्छेद 368 के संबंध में बहुमत अनुच्छेद 31 सी के संबंध में निर्णय के संबंध में बहुमत से अलग है। अनुच्छेद 368 के संबंध में बाध्यकारी अनुपात के साथ-साथ अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को बनाए रखने के परिणामस्वरूप होने वाला अनुपात दोनों 42 वें संशोधन की धारा 4 की वैधता को बनाए रखेंगे। मौलिक अधिकारों के संबंध में, 13 न्यायाधीशों में से 12 न्यायाधीशों के निर्णयों का अनुपात, यानी न्यायमूर्ति जगमोहन रेड्डी को छोड़कर सभी, भाग III में प्रत्येक अनुच्छेद के संशोधन को सशक्त बनाएगा, जब तक कि मौलिक अधिकारों का पूर्ण निरसन नहीं होता है जो संविधान की मूल संरचना की आवश्यक विशेषताओं का गठन करते हैं। मौलिक अधिकारों का उन्मूलन जो मूल संरचना की आवश्यक विशेषताओं का गठन नहीं करते हैं या

मौलिक अधिकारों का संक्षिप्तकरण जो इस तरह के आवश्यक हैं

विशेषताएँ संशोधन की अनुमेय सीमाओं के भीतर हैं। केशवानंद भारती में बहुमत द्वारा असंशोधित अनुच्छेद 31 सी को टकटकी के निर्णय के आधार पर और 'समकालीन व्यावहारिक व्याख्या' के आधार पर बरकरार रखे जाने के बाद, संशोधित अनुच्छेद 31 सी को वैध माना जाना चाहिए, विशेष रूप से क्योंकि इसने असंशोधित अनुच्छेद के प्रावधानों की तुलना में गुणात्मक परिवर्तन नहीं लाया है। संवैधानिक कानून के सामंजस्यपूर्ण और व्यवस्थित विकास के लिए आवश्यक होगा कि अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी में आने वाले वाक्यांशों 'असंगत' या 'हटाने' का अर्थ 'प्रतिबंध' या 'कम करने' के लिए पढ़ा जाना चाहिए, न कि 'निरस्त'। यदि उन अभिव्यक्तियों के दो निर्माण यथोचित रूप से संभव थे, तो न्यायालय को उस निर्माण को स्वीकार करना चाहिए जो संवैधानिक संशोधन को वैध बना देगा।

(1) [1962] सप. 3 एससीआर 837।

(2) [1964] 7 एससीआर 82।

(3) [1964] 6 एससीआर 903।

(4) [1967] 3 एससीआर 28.

(5) [1967] 1 एससीआर 15. (6) [1968] आई एस. सी. आर. 561।

(8) [1969] 1 एससीआर 90। (9) [1969] 3 एससीआर 374।

(10) [1970] 3 एससीआर 530।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

247

विद्वान वकील आगे तर्क देते हैं: निर्देशात्मक सिद्धांत,

अनुच्छेद 38 में निहित एक को शामिल करते हुए, संविधान की सातवीं अनुसूची से संबंधित प्रत्येक विधायी शक्ति का प्रयोग शामिल नहीं है। इसके अलावा, निर्देशात्मक सिद्धांत स्वयं देश के शासन में मौलिक होने के कारण, निर्देशात्मक सिद्धांतों में निर्दिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान का कोई भी संशोधन कभी भी संविधान की मूल संरचना को बदल नहीं सकता है। यदि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी अनुच्छेद 39 (बी) और (सी) से संबंधित कानूनों के संदर्भ में मान्य है, तो एक ओर उन प्रावधानों से संबंधित कानूनों और अन्य निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित कानूनों के बीच कोई द्विभाजन नहीं किया जा सकता है। इस क्षेत्र में न्यायालय को मूल्य निर्णय की अनुमति नहीं है।

अंततः विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा यह आग्रह किया जाता है कि

संशोधित अनुच्छेद 31 सी द्वारा न्यायिक समीक्षा को पूरी तरह से बाहर नहीं किया गया है क्योंकि यह अभी भी न्यायालय के लिए विचार करने के लिए खुला होगा:

((i) क्या विवादित कानून प्रत्यक्ष और उचित है।

किसी भी निर्देशात्मक सिद्धांत के साथ संबंध;

((ii) क्या मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले प्रावधान हैं।

एकीकृत रूप से जुड़े हुए हैं और प्रभावी होने के लिए आवश्यक हैं

निर्देशक सिद्धांत या कम से कम सहायक हैं;

((iii) क्या मौलिक अधिकार का अतिक्रमण किया गया है -

संविधान की मूल संरचना की अनिवार्य विशेषता;

और

((iv) यदि ऐसा है, तो क्या अतिक्रमण वास्तव में इसे निरस्त करता है।

मौलिक अधिकार।

इन दलीलों के अलावा श्री आर. के. गर्ग ने एक लिखित याचिका दायर की है।

इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स की ओर से संक्षिप्त,

कर्नाटक और उत्तर प्रदेश राज्य के महाधिवक्ता। श्री अरुणेश्वर गुप्ता ने राज्य की ओर से एक संक्षिप्त आवेदन दायर किया है।

राजस्थान श्री पालखीवाला की दलीलों का समर्थन कर रहा है। तो ऐसा भी है

राजस्थान राज्य। अधिवक्ता-महाराष्ट्र के महाधिवक्ता, केरल,

पश्चिम बंगाल और उड़ीसा अपने-अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से पेश हुए।

महान्यायवादी और अतिरिक्त महान्यायवादी दोनों

के विचार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई है

धाराओं की वैधता के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया प्रश्न 4 और 42 वें संशोधन का 55। उनके द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि

अदालत के विचार के लिए तैयार किया गया मुद्दा; "क्या। द.

संविधान के बयालीसवें संशोधन के प्रावधान जो

उनकी सर्वोच्चता के मौलिक अधिकारों से वंचित और, अन्य बातों के साथ-साथ,

उन्हें राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अधीन बनाया गया है #

संसद की संशोधन करने की शक्ति से परे है? बहुत चौड़ा है और

अकादमिक। यह आग्रह किया जाता है कि चूंकि यह अदालत की तय की गई प्रथा है

शैक्षणिक प्रश्नों का निर्णय नहीं करना और क्योंकि संपत्ति के अधिकारों का दावा किया गया है।

कला के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा। 19 (1) (च) और 31 के बाद जीवित नहीं रहते हैं 44 वां संशोधन, अदालत को किसी भी तर्क पर विचार नहीं करना चाहिए

याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर।

इस समर्पण के समर्थन में विद्वानों द्वारा निर्भरता रखी जाती है

अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के फैसलों पर वकील

मैसाचुसेट्स का राष्ट्रमंडल बनाम। एंड्रयू डब्ल्यू. मेलन (1), जॉर्ज

अश्वंदर बनाम. टेनेसी घाटी प्राधिकरण (), और बुनकरों पर

संवैधानिक कानून, 1946 संस्करण (3) और अमेरिकी न्यायशास्त्र (4)।

रिलायंस को इस अदालत के कुछ फैसलों पर भी रखा गया है जिन पर

इसे संदर्भित करना अनावश्यक है क्योंकि महान्यायवादी और अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल सही हैं कि यह तय की गई प्रथा है

इस न्यायालय का शैक्षणिक प्रश्नों पर निर्णय नहीं लेना। द अमेरिकन जिन अधिकारियों पर विद्वान वकील भरोसा करते हैं, उनका विचार है कि

किसी कानून की संवैधानिकता पर विचार और निर्धारण नहीं किया जाएगा।

अदालतों द्वारा एक काल्पनिक प्रश्न के रूप में, क्योंकि संवैधानिक

प्रश्नों को अमूर्त रूप से या एक तरीके से नहीं निपटाया जाना चाहिए

अकादमिक चर्चा। दूसरे शब्दों में, अदालतें अनुमान नहीं लगाती हैं संवैधानिक मुद्दे ताकि पहले से मान लिया जा सके कि एक निश्चित कानून

एक निश्चित संवैधानिक संशोधन के अनुसरण में पारित किया जा सकता है जो संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन कर सकता है। इसी तरह,

हमारे न्यायालय ने लगातार यह विचार रखा है कि हम संवैधानिक कानून का एक नियम तैयार नहीं करेंगे जो सटीक कानून द्वारा आवश्यक है।

जिन तथ्यों पर इसे लागू किया जाना है। यह तभी होता है जब व्यक्तियों के अधिकार सीधे शामिल होते हैं कि इस न्यायालय द्वारा राहत दी जाती है।

लेकिन, हमें प्रारंभिक आपत्ति को बरकरार रखना मुश्किल लगता है

क्योंकि 42 वें संशोधन की धारा 4 और 55 की संवैधानिकता के संबंध में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया प्रश्न कोई अकादमिक या काल्पनिक प्रश्न नहीं है। 42 वां संशोधन किसी को भी देखने के लिए है और इसकी धारा 4 और 55 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 31 सी और 368 में संशोधन किए गए हैं। याचिकाकर्ताओं के खिलाफ उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 18 ए के तहत एक आदेश पारित किया गया है, जिससे याचिकाकर्ता व्यथित हैं।

इसके अलावा दो अन्य प्रासंगिक विचार हैं जो आवश्यक हैं।

प्रारंभिक आपत्ति से निपटने के दौरान ध्यान में रखा जाए। निर्णय के खिलाफ कोई संवैधानिक या वैधानिक अवरोध नहीं है।

(1) 67 वकीलों का संस्करण, 1078,1084। (2) 80 वकीलों का संस्करण, 688,711।

(3) बुनकरों का संवैधानिक कानून, 1946 एडन। पी। 68 , 69 .

. (4) अमेरिकी न्यायशास्त्र। 2 डी, वॉल्यूम। 16 , पीपी। 299-301 .

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

. 249

इससे पहले कि वे वास्तव में विचार के लिए उत्पन्न हों। उठाए गए प्रश्न के महत्व को देखते हुए और तथ्य को ध्यान में रखते हुए

यह कि यह प्रश्न कई याचिकाओं में उठाया गया है, न्याय के हित में सही स्थिति का निपटारा करना समीचीन है। दूसरा, हम जिस पर विचार कर रहे हैं वह एक साधारण कानून नहीं है जिसे पारित किया जा सकता है या नहीं किया जा सकता है ताकि यह कहा जा सके कि हमारे अधिकार क्षेत्र को इस काल्पनिक विचार पर लागू किया जा रहा है कि भविष्य में एक कानून पारित किया जा सकता है जो याचिकाकर्ताओं के अधिकारों को नुकसान पहुंचाएगा। हम एक संवैधानिक संशोधन पर विचार कर रहे हैं जिसे लागू किया गया है और जो अपने बल पर कुछ उद्देश्यों के लिए पारित कानूनों के माध्यम से कुछ स्वतंत्रताओं के उल्लंघन की अनुमति देता है। इसलिए हम प्रारंभिक आपत्ति को खारिज करते हैं और याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए मुद्दे को निर्धारित करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

इन याचिकाओं में मुख्य विवाद इस सवाल पर केंद्रित है।

क्या राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत भाग IV में निहित हैं

प्रमुखता हो सकती है। भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों पर संविधान से। यही बात का मूल है। एक-दूसरे को

विचार और अन्य सभी विवाद उप-उत्पादों की प्रकृति में हैं।

मामले के उस केंद्रीय विषय का। भागों के प्रतिस्पर्धी दावे III और IV मामले का महत्वपूर्ण बिंदु हैं क्योंकि, अनुच्छेद

31 सी 42 वें संशोधन की धारा 4 द्वारा संशोधित के रूप में प्रदान करता है

ऐसी शर्तें जो किसी भी निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने वाला कानून नहीं हो सकता है

इस आधार पर शून्य के रूप में चुनौती दी गई कि यह प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन करता है

अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा। अपनी धारा 4 द्वारा 42 वां संशोधन

इस प्रकार अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को अधीनस्थ करता है।

और 19 निर्देशक सिद्धांतों के लिए।

सवाल यह है कि क्या बहुमत को देखते हुए

केशवानंद भारती में यह निर्णय संसद के लिए अनुज्ञेय है

संविधान में इस प्रकार संशोधन करना ताकि उसे प्राथमिकता दी जा सके -

मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धांत। इसका जवाब

सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति निदेशक नीति की मूल संरचना की आवश्यक विशेषताएं हैं

संविधान। यह केवल तभी है जब इन दो अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार

संविधान की मूल संरचना का हिस्सा नहीं हैं कि वे

संवैधानिक संशोधन द्वारा निरस्त किए जाने की अनुमति दी जा सकती है। अगर वे मूल संरचना का एक हिस्सा हैं जिन्हें मिटाया नहीं जा सकता है।

अनुच्छेद में वर्णित कानूनों की एक श्रेणी के संबंध में अस्तित्व

31 ग या, उस मामले के लिए, किसी भी विवरण के कानूनों के संबंध में

जो भी हो, किसी भी उद्देश्य या नीति को प्राप्त करने के लिए पारित किया गया

जो भी हो। यह इस बात को सामने लाने का काम करेगा कि कुल संविधान की आवश्यक विशेषताओं का ह्रास, द्वारा है

केशवानंद भारती में अनुपात, संसद के लिए अनुमेय नहीं।

डब्ल्यू.

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

2 50

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हालांकि अदालतों ने हमेशा संलग्न किया है

मानव स्वतंत्रता के संरक्षण के लिए बहुत महत्वपूर्ण, कम नहीं

भाग IV में उल्लिखित राज्य नीति के कुछ निदेशक सिद्धांतों को महत्व दिया गया है। ग्रैनविल ऑस्टिन के शब्दों में,

(भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला, पी। 50) भारतीय

संविधान सबसे पहले एक सामाजिक दस्तावेज और बहुमत है। इसके प्रावधानों का उद्देश्य सामाजिक क्रांति के लक्षयों को आगे बढ़ाना है:

इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक शर्तों को स्थापित करके। इसलिए हमारी योजना में निर्देशक सिद्धांतों का महत्व

संविधान पर कभी भी अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। वे सिद्धांत

उच्च आदर्श की परिकल्पना करें जिसे संविधान प्राप्त करने का लक्षय रखता है। वास्तव में राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत बुनियादी हैं।

देश और महान्यायवादी का शासन सही है कि सार्वजनिक जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां देरी न्याय को अधिक स्पष्ट प्रभाव से हरा सके, जिसमें आम आदमी न्याय चाहता है।

अपनी आकांक्षाओं को साकार करना। एक बेहतर कल का वादा आज तक पूरा किया जाना चाहिए; दिन के बाद-कल यह आसानी से भुला दिए जाने का जोखिम चलाता है। वास्तव में इतने सारे कल हैं बिना एक पत्ता बदले आए और चले गए कि आज एक छिपा हुआ खतरा है कि लोग अपने "गंदे हाथों" के मजबूर पंथ के माध्यम से अपने भाग्य का निर्धारण करेंगे। संगमरमर के हॉल में रखे गए शब्द बहुत कुछ कहते हैं लेकिन उतना हासिल करने में विफल रहते हैं,

लेकिन एक और प्रतिस्पर्धी संवैधानिक हित है।

उस योजना में समान रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह हित भाग III के प्रावधानों में परिलक्षित होता है जो कुछ नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करते हैं जैसा कि अनुच्छेद 15,16 और 19 करते हैं और कुछ सभी व्यक्तियों को समान रूप से प्रदान करते हैं जैसा कि अनुच्छेद 14,20,21 और 22 करते हैं। जैसा कि ग्रैनविल ऑस्टिन कहते हैं: सामाजिक क्रांति के प्रति प्रतिबद्धता का मूल भाग III और IV में निहित है। ये संविधान की अंतरात्मा हैं "।

उन निर्णयों का हवाला देने की आवश्यकता नहीं है जिन्होंने प्रशंसा की है और उन्हें बरकरार रखा है

व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ-उनकी महिमा, और कुछ परिस्थितियों में, उनकी अलंघनीयता। हालाँकि यह देखना लाभदायक हो सकता है कि व्यापक रूप से तुलनीय संविधान से निपटने वाले अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने उन स्वतंत्रताओं के दावे के लिए कैसे संपर्क किया है।

बारबरा एल्फब्रांड्ट बनाम। इमोजेन रसेल (1) अमेरिकी सुप्रीम

अदालत एक एरिजोना क़ानून की संवैधानिकता पर विचार कर रही थी जिसमें राज्य के कर्मचारियों को वफादारी की शपथ लेने की आवश्यकता थी। न्यायमूर्ति डगलस ने बहुमत की ओर से बोलते हुए इस प्रावधान को निरस्त करते हुए कहा कि: वैध विधायी लक्ष्यों को ऐसे माध्यमों से आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है जो मोटे तौर पर मौलिक व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को दबा देते हैं जब अंत हो सकता है:

(1) 16 एल. एड, 2 डी, 321,326।

1 .

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

251

अधिक संकीर्ण रूप से प्राप्त किया जाए '। "आपत्तिजनक गुणवत्ता

का. अतिव्याप्ति "एक क़ानून के अस्तित्व पर निर्भर करता है

" व्यापक और अनुचित अनुप्रयोग के लिए अतिसंवेदनशील। ..... ये

स्वतंत्रताएँ नाजुक और कमजोर होने के साथ-साथ अत्यंत मूल्यवान भी होती हैं।

हमारे समाज में। प्रतिबंधों की धमकी उनके अभ्यास को लगभग रोक सकती है।

प्रतिबंधों के वास्तविक अनुप्रयोग के रूप में शक्तिशाली "।

संयुक्त राज्य अमेरिका में वी। हर्बेट गेस्ट (1), हालांकि यात्रा करने का अधिकार

संयुक्त राज्य अमेरिका के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से

अमेरिकी संविधान में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है

अभिनिर्धारित किया कि एक राज्य से दूसरे राज्य में यात्रा करने का अधिकार एक संघीय संघ की अवधारणा के लिए मौलिक स्थिति और

अमेरिका में अधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लेख क्यों नहीं किया गया था यद्यपि संविधान का उल्लेख विश्वास के अनुच्छेदों में किया गया था,

यह था कि "एक प्राथमिक अधिकार की कल्पना शुरू से ही की गई थी

सशक्त संघ का एक आवश्यक सहवर्ती होने के लिए संविधान

बनाया गया "।

इस स्थिति को विनफील्ड डन बनाम में दोहराया गया था। जेम्स एफ.

संयुक्त राज्य अमेरिका संविधान के तहत एक बुनियादी अधिकार था और वह अधिकार एक बिना शर्त व्यक्तिगत अधिकार था जिसका प्रयोग हो सकता है

शर्त नहीं है। इसलिए, कोई भी वर्गीकरण जो

उस अधिकार के प्रयोग को दंडित करें, जब तक कि आवश्यक न दिखाया जाए

एक सम्मोहक सरकारी हित को बढ़ावा देना असंवैधानिक था।

न्यूयॉर्क टाइम्स कंपनी बनाम। संयुक्त राज्य अमेरिका (3)

राज्य सरकार ने प्रकाशन के खिलाफ निषेधाज्ञा की मांग की,

न्यूयॉर्क टाइम्स ने "इतिहास का इतिहास" शीर्षक वाले वर्गीकृत अध्ययन के बारे में बताया। अमेरिका का निर्णय-वियतनाम नीति पर प्रक्रिया बनाना "। यह आयोजित किया गया था

छह न्यायाधीशों के बहुमत से कि पूर्व प्रतिबंधों की कोई भी प्रणाली

अभिव्यक्ति एक भारी असर के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में आती है

इसकी संवैधानिक वैधता के खिलाफ धारणा, और एक पार्टी जो चाहती है

इस तरह के संयम को बनाए रखने के लिए प्रदर्शन का भारी बोझ पड़ता है इस तरह के प्रतिबंध को लागू करने का औचित्य,

रंगीन लोगों की उन्नति के लिए राष्ट्रीय संगठन

वी. अलबामा राज्य (4), एक सर्वसम्मत न्यायालय जब एक

नेशनल एसोसिएशन ऑफ कलर्ड पीपल को बाहर करने का प्रयास

अलबामा राज्य ने आयोजित किया:

" इन अपरिहार्य स्वतंत्रताओं के क्षेत्र में, क्या

भाषण, प्रेस, या संघ, इस न्यायालय के निर्णयों को मान्यता देते हैं कि ऐसे अधिकारों का संक्षिप्तकरण, भले ही अनपेक्षित हो,

(1) 16 एल. एड. 2 डी। 239 , 249 .

(2) 31 एल. एड. 2 डी। 274 , 276 .

(3) 29 एल. एड. 2 डी। 822 , 824 . (4) 2 एल. एड. 2 डी, 1488,1499।

7—646 एस. सी. इंडिया/80

1 :

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[1981] 1

एस सी आर।

252

अनिवार्य रूप से सरकारी कार्रवाई के विभिन्न रूपों का पालन करें।

फ्रैंक पाल्को बनाम। कनेक्टिकट राज्य (1), न्यायमूर्ति कार्डोजो

स्वतंत्रता के अधिकार के संबंध में न्यायालय की राय देना

विचार और भाषण का अवलोकन किया गया:

" उस स्वतंत्रता के बारे में कोई कह सकता है कि यह मैट्रिक्स है,

लगभग हर अन्य प्रकार की स्वतंत्रता की अपरिहार्य शर्त "।

जेसी कैंटवेल बनाम। कनेक्टिकट राज्य (2), न्यायमूर्ति रॉबर्ट्स जो

न्यायालय की राय में कहा गया है:

" धार्मिक आस्था और राजनीतिक आस्था के क्षेत्र में,

तीव्र मतभेद उत्पन्न होते हैं। दोनों क्षेत्रों में एक व्यक्ति के सिद्धांत

अपने पड़ोसी को यह सबसे बड़ी गलती लग सकती है। मनाने के लिए

कभी-कभी, अतिशयोक्ति का सहारा लेते हैं, उन लोगों की निंदा करते हैं जिनके पास है चर्च या राज्य में प्रमुख थे या हैं, और यहाँ तक कि गलत भी हैं

बयान। लेकिन इस राष्ट्र के लोगों ने आदेश दिया है कि

नागरिकों की ओर से प्रबुद्ध राय और सही आचरण एक लोकतंत्र। इन स्वतंत्रताओं की अनिवार्य विशेषताएँ हैं -

कि उनकी ढाल के नीचे कई प्रकार के जीवन, चरित्र, राय और विश्वास निर्बाध और निर्बाध रूप से विकसित हो सकता है। यह कहीं नहीं है।

लोगों के लिए हमारे अपने देश की तुलना में अधिक आवश्यक ढाल

यह कई जातियों और कई पंथों से बना है। सीमाएँ हैं।

धार्मिक घमंड हिंसा और शांति के उल्लंघन को उकसाएगा दूसरों को अभ्यास के समान अधिकार से वंचित करने के लिए

उनकी स्वतंत्रता पर, सभी से परिचित घटनाओं द्वारा जोर दिया जाता है। ये और उन सीमाओं के अन्य उल्लंघन राज्यों को उचित रूप से सीमित करते हैं

दंडित किया जा सकता है "।

आर्थर टर्मिनियेलो बनाम। शिकागो शहर (3), न्यायमूर्ति डगलस

न्यायालय की बहुमत राय देते हुए,

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का महत्व, देखा गया:

" हमारे समाज में नागरिक और राजनीतिक संस्थानों की जीवंतता

स्वतंत्र चर्चा पर निर्भर करता है। जैसा कि मुख्य न्यायाधीश ह्यूज ने लिखा है

डी जोंग बनाम। ओरेगन (4), यह केवल मुक्त बहस और मुक्त के माध्यम से है

:

(1) 82 एल. एड. 239 , 293 .

(2) 84 एल. डी. एड। 1213 , 1221 .

(3) 93 एल. एड. 1131 , 1134 .

(4) 299 यूएस 353,365,81 एल. एड। 278 , 284 , 57 एस. सीटी. 255 .

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड, v. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

253

उन विचारों का आदान-प्रदान जो सरकार के प्रति उत्तरदायी हैं

लोगों की इच्छा और शांतिपूर्ण परिवर्तन प्रभावित होता है। अधिकार।

स्वतंत्र रूप से बोलना और विचारों और कार्यक्रमों की विविधता को बढ़ावा देना।

इसलिए यह एक मुख्य अंतर है जो हमें अलग करता है

अधिनायकवादी शासन।

तदनुसार हमारी प्रणाली के तहत स्वतंत्र भाषण का एक कार्य

सरकार को विवाद को आमंत्रित करना है। यह वास्तव में सबसे अच्छी सेवा कर सकता है उच्च उद्देश्य जब यह अशांति की स्थिति पैदा करता है,

परिस्थितियों के साथ असंतोष जो वे हैं, या यहां तक कि लोगों को उत्तेजित करता है

गुस्सा करने के लिए। भाषण अक्सर उत्तेजक और चुनौतीपूर्ण होता है। यह हो सकता है

पूर्वाग्रहों और पूर्वधारणाओं पर प्रहार करें और गहरा प्रभाव डालें

परेशान करने वाले प्रभाव जब यह किसी विचार की स्वीकृति के लिए दबाव डालता है। कि

यही कारण है कि बोलने की स्वतंत्रता, हालांकि निरपेक्ष नहीं है (चैप्लिंस्की वी।

न्यू हैम्पशायर), (1) फिर भी सेंसरशिप के खिलाफ संरक्षित है या सजा जब तक कि एक स्पष्ट और वर्तमान उत्पन्न करने की संभावना न दिखाई जाए

एक गंभीर मूल बुराई का खतरा जो जनता से बहुत ऊपर उठ जाता है

असुविधा, झुंझलाहट या अशांति। ब्रिजेस वी. देखें। कैलिफोर्निया (1);

क्रेग वी. हॉर्नी (3)। हमारे संविधान में कोई जगह नहीं है।

अधिक प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण के लिए। विकल्प के लिए नेतृत्व करेंगे

विधानमंडलों, न्यायालयों द्वारा विचारों के मानकीकरण के लिए, या

प्रमुख राजनीतिक या सामुदायिक समूह "। भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास और बहसें

संविधान सभा से पता चलता है कि हमारे लोग उन्हें कितना महत्व देते हैं

व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ और उन स्वतंत्रताओं को कैसे माना जाता है हमारे संविधान का अपरिहार्य और अभिन्न अंग। यह महत्वपूर्ण है।

कि यद्यपि भाग III और IV संविधान में दो अलग-अलग रूप में दिखाई देते हैं

लेखों के फासिकुलस, हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं ने आकर्षित किया

दो प्रकार के राज्य के दायित्वों के बीच कोई अंतर नहीं-नकारात्मक

और सकारात्मक "। दोनों प्रकार के अधिकार एक समान अधिकार के रूप में विकसित हुए थे।

मांग, राष्ट्रीय और सामाजिक क्रांतियों के उत्पाद, उनके

लगभग अविभाज्य अंतर्संबंध, और भारतीय राजनीति के चरित्र का

स्वयं (4) "। अविभाज्य अधिकारों की मांग की उत्पत्ति भारत में 19 वीं शताब्दी में हुई और इसके गठन में फूल आया

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस। भारतीयों ने इस सिद्धांत पर अपने ब्रिटिश शासकों के साथ समानता की मांग की कि लोकतंत्र में प्रजा के अधिकार शासकों के अधिकारों से कम नहीं हो सकते हैं। उस मांग से समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पौधे बढ़े। उन और अन्य बुनियादी अधिकारों की अभिव्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 16 में पाई गई

(1) 315 यूएस पीपी। 571 , 572 ; 86 एल. एड. 1034 , 1035 ; 62 एस. सीटी. 766 .

(2) 314 यूएस 252,262,86 एल. एड। 192 , 202 , 62 एस. सीटी. 190 , 159 एएलआर 1346।

(3) 331 यूएस 367,373,91 एल. एड। 1546 , 1550 , 67 एस. सीटी. 1249. · (4) भारतीय संविधानः ग्रैनविल ऑस्टिन द्वारा एक राष्ट्र की आधारशिला,

पी। 52 .

1 :

भारत विधेयक, 1895। कांग्रेस के प्रस्तावों की एक श्रृंखला ने 1917 और 1919 के बीच उस मांग को दोहराया। राजनीतिक परिदृश्य पर महात्मा गांधी के उदय ने स्वतंत्रता आंदोलन को एक

नया आयाम: यह केवल अंग्रेजों के खिलाफ नहीं रह गया; यह भारतीय समुदाय के लिए स्वतंत्रता के अधिकारों के अधिग्रहण के लिए एक आंदोलन बन गया। श्रीमती बेसन 'ट भारत का राष्ट्रमंडल विधेयक, 1925 और

1928 के मद्रास कांग्रेस के प्रस्ताव ने उस आंदोलन के लिए एक उल्लेखनीय निरंतरता प्रदान की। द्वारा नियुक्त मोतीलाल नेहरू समिति

मद्रास कांग्रेस के प्रस्ताव ने पीपी में कहा। 89-90 :

" यह स्पष्ट है कि हमारी पहली देखभाल हमारी होनी चाहिए

किसी भी परिस्थिति में उन्हें वापस लेने की अनुमति दें। एक अन्य जिस कारण से अधिकारों की घोषणा को बहुत महत्व दिया जाता है

में सांप्रदायिक मतभेदों का दुर्भाग्यपूर्ण अस्तित्व है

देश। कुछ सुरक्षा उपाय बनाने के लिए आवश्यक हैं और

उन लोगों के बीच सुरक्षा की भावना स्थापित करें जो प्रत्येक को देखते हैं अन्य अविश्वास और संदेह के साथ। हम इससे बेहतर सुरक्षित नहीं हो सकते थे।

धार्मिक और सांप्रदायिक अधिकारों का पूरा आनंद लेना

सभी समुदायों को बुनियादी क्षेत्रों में शामिल करने के अलावा

संविधान के सिद्धांत "।

भारत विविधतापूर्ण धार्मिक विविधताओं से युक्त मानवता का प्रतिनिधित्व करता है।

भाषाई और जाति समूह। आग्रह के पीछे का तर्क अफसोस हो या न हो, मौलिक अधिकारों ने अभी तक अपनी प्रासंगिकता नहीं खोई है। द.

कराची के कांग्रेस सत्र ने 1931 में अपनाए गए प्रस्ताव

मौलिक अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन पर भी। द.

1945 की सप्रू रिपोर्ट में कहा गया था कि मौलिक अधिकारों की पूर्ति होनी चाहिए सभी संबंधित लोगों के लिए एक "स्थायी चेतावनी" के रूप में कि:

" संविधान जो माँग और अपेक्षा करता है वह पूर्ण है

समुदाय के एक वर्ग और दूसरे वर्ग के बीच समानता।

राजनीतिक और नागरिक अधिकारों का मामला स्वतंत्रता की समानता और

धर्म, पूजा की स्वतंत्रता के आनंद में सुरक्षा।

और जीवन के सामान्य अनुप्रयोगों की खोज "। (पी। 260)। इस पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्र ने स्वतंत्रता की ओर कूच किया। द.

संविधान सभा ने मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का संकल्प लिया

संविधान के लिखित पाठ में। आपस में जुड़े लक्षय

दो अलग-अलग भागों में, फिर भी एक अभिन्न, अविभाज्य के भाग योजना जिसकी आधे से अधिक समय तक सावधानीपूर्वक और सोच-समझकर देखभाल की गई थी।

शताब्दी। 19 वीं शताब्दी में बोए गए बीजों ने अपना फल देखा

1950 जवाहरलाल नेहरू और डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में।

भाग III द्वारा दी गई गारंटी को कथित रूप से नष्ट करना।

भाग IV के लक्षयों को प्राप्त करना स्पष्ट रूप से संविधान को नष्ट करना है।

इसकी मूल संरचना को नष्ट करके।

कोई नहीं।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

255

सभ्य लोगों के जीवन में मौलिक अधिकारों का एक अनूठा स्थान है

समाज और हमारे निर्णयों में विभिन्न रूप से वर्णित किया गया है

" " दिव्य "", "अविच्छेद्य" और "आदिम"। हमारे लिए, यह केशवानंद भारती में कहा गया है। 991), वे सन्दूक का गठन करते हैं

संविधान।

इस धारणा का महत्व कि भाग III और IV एक साथ

सामाजिक क्रांति के प्रति प्रतिबद्धता का मूल है और वे,

एक साथ, क्या संविधान की अंतरात्मा का पता लगाया जाना है

भारतीय संविधान की योजना को गहराई से रेखांकित करना।

ग्रैनविल ऑस्टिन का अवलोकन इस सही स्थिति को सामने लाता है कि

III और IV रथ के दो पहियों की तरह हैं, एक कम महत्वपूर्ण नहीं है।

दूसरे से अधिक। आप एक को स्नैप करते हैं और दूसरा अपनी प्रभावशीलता खो देगा।

वे सामाजिक क्रांति को प्राप्त करने के लिए एक दोहरे सूत्र की तरह हैं, जो यह वह आदर्श है जिसे संविधान के दूरदर्शी संस्थापकों ने पहले रखा था

स्वयं। दूसरे शब्दों में, भारतीय संविधान की स्थापना किस पर हुई है

भाग III और IV के बीच संतुलन की तल-चट्टान। देने के लिए।

एक के ऊपर दूसरे के लिए पूर्ण प्रधानता सद्भाव को बाधित करना है संविधान। बुनियादी बातों के बीच यह सामंजस्य और संतुलन

अधिकार और निर्देशक सिद्धांत बुनियादी ढांचे की एक अनिवार्य विशेषता है।

संविधान की संरचना।

यह केवल शब्दार्थ नहीं है। हमारे संविधान की इमारत है

प्रस्तावना में स्पष्टीकृत अवधारणाओं पर निर्मित। हमने संकल्प लिया कि

स्वयं को एक समाजवादी राज्य के रूप में गठित करें जो अपने साथ ले गया

हमारे लोगों के लिए न्याय सुनिश्चित करने का दायित्व-सामाजिक, आर्थिक और

राजनीतिक। इसलिए, हम अपने संविधान में भाग IV डालते हैं जिसमें शामिल हैं -

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, विश्वास और पूजा; स्थिति की समानता और अवसर और यह आश्वासन कि व्यक्ति की गरिमा

` हर कीमत पर संरक्षित किया जाएगा। इसलिए, हम। भाग III को हमारे में डालें

संविधान लोगों को वे अधिकार प्रदान करता है। ये हैं अधिकार

अपने आप में अंत नहीं बल्कि अंत के साधन हैं। अंत यह है कि

भाग IV में निर्दिष्ट। इसलिए, फार्ट III द्वारा प्रदत्त अधिकार हैं -

उचित प्रतिबंधों के अधीन और संविधान प्रदान करता है कि

निलंबित किया जाए। लेकिन जैसे भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकार होंगे एक रडार और एक कम्पास के बिना यदि वे एक आदर्श के लिए तैयार नहीं थे,

उसी तरह भाग IV में निर्धारित आदर्शों की प्राप्ति

अगर कीमत चुकानी पड़े तो यह अत्याचार का ढोंग बन जाएगा

उस आदर्श को प्राप्त करना मानव स्वतंत्रता है। हमारे विश्वासों में से एक

संस्थापक पिता साधनों की शुद्धता थे। वास्तव में, हमारे कानून के तहत, हत्या करने वाले डकैत को भी मौत की सजा नहीं दी जा सकती [1981] 1 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

256

आत्मरक्षा के अधिकार के प्रयोग में, जब वह अपना काम पूरा कर लेता है।

' पलायन करें। शुद्धता पर सभ्य कानूनों का आग्रह इतना महान है

मतलब। इसलिए भाग IV में निर्धारित लक्षयों को प्राप्त किया जाना है।

इस अर्थ में कि भाग III और IV एक साथ हमारे मूल का गठन करते हैं अपनी अंतरात्मा बनाने के लिए संविधान और संयोजन। कुछ भी जो

दोनों भागों के बीच संतुलन को नष्ट करने से वास्तव में नष्ट हो जाएगा

यह हमारे संविधान की मूल संरचना का एक अनिवार्य तत्व है।

इसी आलोक में संशोधित अनुच्छेद 31 सी की वैधता है।

जाँच की जानी चाहिए। अनुच्छेद 13 (2) कहता है कि राज्य ऐसा नहीं करेगा

कोई भी कानून जो भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनता है या कम करता है

और उस खंड के उल्लंघन में बनाई गई कोई भी कानून इस हद तक

उल्लंघन शून्य होगा। अनुच्छेद 31 सी एक गैर-अड़चन के साथ शुरू होता है।

अनुच्छेद 13 को हानि के रास्ते से बाहर करके खंड। यह एक प्रदान करता है

अनुच्छेद 13 में कुछ भी निहित होने के बावजूद कुछ परिणाम।

यह तब उनकी कार्यात्मक उपयोगिता के अनुच्छेद 14 और 19 को अस्वीकार करता है

यह प्रावधान करते हुए कि इन अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार कोई बाधा नहीं होंगे

में निर्धारित सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून पारित करने के खिलाफ

भाग IV। किसी भी उचित व्याख्या पर कोई संदेह नहीं हो सकता है।

कि 42 वीं की धारा 4 द्वारा प्रस्तुत संशोधन द्वारा

संशोधन, अनुच्छेद 14 और 19 कम से कम के संबंध में निरस्त कर दिया गया है

अनुच्छेद 31 सी में वर्णित कानूनों की श्रेणी। चौंकाने वाला परिणाम

संशोधन ने जो प्रस्तुत किया है वह यह है कि भले ही कोई कानून कुल में हो

अनुच्छेद 14 और 19 के साथ पठित अनुच्छेद 13 के अधिदेश की अवज्ञा,

इसकी वैधता पर तब तक सवाल नहीं उठाए जा सकते जब तक कि इसका उद्देश्य

राज्य नीति का एक निर्देशक सिद्धांत सुनिश्चित करना। हम स्वीकार करने के लिए तैयार हैं

विद्वान महान्यायवादी का प्रस्तुतिकरण, दोनों पर विचार करते हुए उसके द्वारा प्रस्तुत मामलों के चार्ट, जिनकी कल्पना करना संभव है

और भाग IV के प्रावधानों के साथ उचित संबंध। लेकिन, उस में, हमारी राय, बिंदु से परे है। कानूनों का एक बड़ा बहुमत, थोक

उनमें से, किसी भी दर पर आसानी से उचित ठहराया जा सकता है के लिए पारित किया गया है

राज्य की नीति को प्रभावी बनाने का उद्देश्य

भाग IV में कुछ न कुछ सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं। सबके संबंध में ऐसे कानून, जो प्रासंगिक के एक व्यापक सरगम को शामिल करेंगे

विधायी गतिविधि, अनुच्छेद 14 और 19 का संरक्षण कायम रहेगा।

पूरी तरह से वापस ले लिया। यह तब कहने के लिए कोई जवाब नहीं है, जब यह निर्धारित किया जाता है

क्या संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन किया गया है, कि कम से कम

कुछ कानून अनुच्छेद 31 सी के दायरे से बाहर होंगे।

हमें अपने सामने मामले का फैसला मेटाफिजिकल से नहीं करना है

सूक्ष्मता, न ही शब्दार्थ के मामले के रूप में, बल्कि एक व्यापक और मुक्त दृष्टिकोण से। हमें पेड़ों के लिए लकड़ी नहीं छोड़नी चाहिए।

कुल मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

257

मौलिक अधिकारों का अभाव, यहां तक कि एक सीमित क्षेत्र में भी, एक मौलिक अधिकार को निरस्त करने के बराबर हो सकता है जैसे कि मौलिक अधिकारों में आंशिक अभाव। हर क्षेत्र कर सकता है। एक लेखक, जो विशेष रूप से विदेशी मामलों पर लिखते हैं, को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार से पूरी तरह से वंचित किया गया होगा और

अभिव्यक्ति यदि उसे विदेशी मामलों पर लिखने से प्रतिबंधित किया गया है। इसलिए यह तथ्य कि कुछ कानून अनुच्छेद 31 सी के दायरे से बाहर हो सकते हैं, इस तर्क का जवाब नहीं है कि बड़ी संख्या में कानूनों से अनुच्छेद 14 और 19 के संरक्षण को वापस लेना संविधान की मूल संरचना को नष्ट कर देता है।

यह बार-बार हम पर, विशेष रूप से वकील द्वारा प्रभावित किया गया था

सामान्य तौर पर, संविधान का अनुच्छेद 38 निर्देशात्मक सिद्धांतों का प्रमुख तत्व है और उसमें निहित सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए पारित कोई भी कानून कभी भी संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट नहीं कर सकता है। उस अनुच्छेद में प्रावधान है कि राज्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को प्रभावी ढंग से सुरक्षित और संरक्षित करके लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास करेगा जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा। हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि भाग IV में निहित राज्य नीति के सभी निदेशक सिद्धांत अंततः अनुच्छेद 38 पर निर्भर हैं। अनुच्छेद 38 में निस्संदेह एक व्यापक दिशानिर्देश है, लेकिन अन्य निर्देशात्मक सिद्धांत अनुच्छेद 38 में निहित सिद्धांत के केवल उदाहरण नहीं हैं। दूसरा, यदि यह सच है कि अनुच्छेद 38 में निहित निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से पारित कोई भी कानून संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट नहीं कर सकता है, तो क्या आवश्यकता थी, और अधिक औचित्य। संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध करने के लिए कि भाग IV में निर्धारित किसी भी सिद्धांत को प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पारित कोई भी कानून इस आधार पर शून्य नहीं माना जाएगा कि वह अनुच्छेद 14

और 19 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के साथ असंगत है या उन्हें छीनता है या कम करता है? अनुच्छेद 31 सी के संशोधन का उद्देश्य और उद्देश्य वास्तव में उन कानूनों को बचाना है जिन्हें अनुच्छेद 19 (2) से (6) के तहत बचाया नहीं जा सकता है। उन प्रावधानों के तहत आने वाले कानून जनहित में मौलिक अधिकारों पर उचित प्रतिबंधों की प्रकृति के होते हैं।

और इसलिए वे मौलिक अधिकारों को कम करते हैं लेकिन निरस्त नहीं करते हैं। उन कानूनों से निपटने के लिए जिन्हें अनुच्छेद 19 (2) से (6) का संरक्षण नहीं मिलता है, अनुच्छेद 31 सी को यह कहने के लिए संशोधित किया गया था कि अनुच्छेद 19 के प्रावधानों को अन्य बातों के साथ-साथ अनुच्छेद 31 सी में उल्लिखित विवरण के कानूनों को रद्द करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 14 और 19 कोई काल्पनिक अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। वे प्रदान करते हैं

ऐसे अधिकार जो लोकतंत्र के उचित और प्रभावी संचालन के लिए प्राथमिक हैं। जैसा कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा से स्पष्ट है, उन्हें सार्वभौमिक रूप से ऐसा माना जाता है। सभ्य दुनिया के कई देश आशा और विश्वास में अपनी संप्रभुता से अलग हो गए हैं

कि उनके नागरिक मानव स्वतंत्रता का आनंद लेंगे। और वे मानव स्वतंत्रता से संबंधित मामलों पर विदेशी न्यायाधिकरणों के निर्णयों और फरमानों से बंधे रहना पसंद करते थे। यदि अनुच्छेद 14 और 19 को उन अधिकांश कानूनों के संबंध में प्रभाव से बाहर कर दिया जाता है जिन्हें पारित करने के लिए विधानसभाओं को अधिकार दिया गया है, तो अनुच्छेद 32 का जीवन समाप्त हो जाएगा-रक्त, अनुच्छेद।

32 (4) यह प्रावधान करता है कि अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटीकृत अधिकार

संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित किए जाने को छोड़कर निलंबित। 42 वें संशोधन की धारा 4 ने कानूनों की एक बड़ी श्रेणी के संबंध में अनुच्छेद 14 और 19 के संरक्षण को पूरी तरह से वापस लेकर अनुच्छेद 32 (4) को दरकिनार करने का एक आसान तरीका खोज लिया, ताकि किसी भी प्रकार का कोई प्रावधान न हो।

' शिकायत का उल्लंघन जिसके संबंध में अनुच्छेद 32 के तहत निवारण की मांग की जा सकती है। अनुच्छेद के संरक्षण को छीनने की शक्ति

14 वर्गीकरण के लिए एक वैध आधार के बिना भेदभाव करने की शक्ति है। निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा इस न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 14 वर्ग विधान को मना करता है लेकिन यह वर्गीकरण को मना नहीं करता है। इसलिए, अनुच्छेद 14 के संरक्षण को वापस लेने का उद्देश्य केवल वर्ग कानून बनाने की शक्ति प्राप्त करना हो सकता है। अगर अनुच्छेद 19 (1) (डी) नागरिकों के लिए उपलब्ध नहीं है तो फिर से, क्षेत्रीय रूढ़िवाद का एक व्यावहारिक दिन होगा। पहले से ही, एक तरफ से परेशान करने वाले रुझान हैं

भारतीय क्षितिज। उन रुझानों को ताकत और प्रोत्साहन मिलेगा। यदि कानून प्रतिरक्षा के साथ पारित किए जा सकते हैं, तो नागरिकों को भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने के अपने अधिकार का प्रयोग करने से रोका जा सकता है। 42 वें संशोधन की धारा 4 द्वारा पेश किए गए संशोधन की प्रकृति और गुणवत्ता इसलिए ऐसी है कि यह बुनियादी मौलिक स्वतंत्रताओं के दिल को वस्तुतः छीन लेता है।

अनुच्छेद 31 सी की नीति को प्रभावी बनाने वाले कानूनों की बात करता है

" राज्य "। अनुच्छेद 12, जो अनुच्छेद 31 सी की व्याख्या को नियंत्रित करता है, प्रदान करता है कि भाग 3 में "राज्य" शब्द में भारत की सरकार और संसद और प्रत्येक राज्य की सरकार और विधानमंडल और भारत के क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण शामिल हैं। अनुच्छेद 31 सी की भाषा जितनी व्यापक है, अनुच्छेद 12 में "राज्य" शब्द की परिभाषा अनुच्छेद 31 सी को व्यापक आयाम का संचालन देती है।

भले ही कोई राज्य विधानमंडल देने के उद्देश्य से कोई कानून पारित करे

एक निर्देश सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में एक स्थानीय प्राधिकरण द्वारा नीति के प्रभाव से, कानून को अनुच्छेद 14 और 19 के प्रावधानों से छूट प्राप्त होगी। इस प्रकार राज्य विधानमंडलों को लगभग निर्बाध अधिकार दिए गए हैं।

लोगों को उनकी नागरिक स्वतंत्रता से वंचित करने का विवेकाधिकार।

विद्वान महान्यायवादी का तर्क है कि राज्य एक के अधीन है

लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए कदम उठाने का दायित्व

एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था लाना जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा। उनका कहना है कि मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के उद्देश्य के लिए कुछ मौलिक अधिकारों से वंचित होना।

वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

इस लक्षय को प्राप्त करना संभवतः विनाश नहीं हो सकता है

संविधान की मूल संरचना। हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

विवाद। भाग IV में प्रतिपादित सिद्धांत घोषित नहीं हैं।

केवल लोकतंत्रों का एकाधिकार। वे सभी राज्यों के लिए समान हैं, लोकतांत्रिक या सत्तावादी। प्रत्येक राज्य लक्षय-उन्मुख है और दावा करता है

अपने लोगों के कल्याण को सुरक्षित करने के लिए प्रयास करना। के बीच अंतर सरकार के विभिन्न रूपों में एक वास्तविक लोकतंत्र शामिल है।

अनुशासन के माध्यम से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करेगा

अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा प्रदत्त मौलिक स्वतंत्रताएँ।

ये सबसे प्राथमिक स्वतंत्रताएँ हैं जिनके बिना ए। मुफ़्त।

लोकतंत्र असंभव है और इसलिए इसे बिल्कुल भी संरक्षित किया जाना चाहिए

लागतें। . इसके अलावा, जैसा कि ब्रांडीज, जे. द्वारा देखा गया है, स्वतंत्रता की रक्षा करने की आवश्यकता है

यह सबसे बड़ा तब होता है जब सरकार के उद्देश्य लाभकारी होते हैं। अगर

अनुच्छेद 14 का अनुशासन वापस ले लिया जाता है और यदि इससे प्रतिरक्षा

उस अनुच्छेद का संचालन प्रदान किया जाता है, न केवल द्वारा पारित कानूनों पर

संसद लेकिन राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित कानूनों पर भी, संख्यात्मक रूप से बड़े समूहों द्वारा प्रयोग किया जाने वाला राजनीतिक दबाव इसे तोड़ सकता है।

देश को चुनने और चुनने के लिए विधायिका पर छोड़ कर अलग करें

तरजीही उपचार के लिए पसंदीदा क्षेत्र और पसंदीदा वर्ग।

}

विद्वान महान्यायवादी और विद्वान महान्यायवादी

हम इस बात से बहुत प्रभावित हुए कि अनुच्छेद 31 सी को इस तरह पढ़ा जाना चाहिए

ताकि इसे असंवैधानिकता की चुनौती से बचाया जा सके। यह आग्रह किया गया

कि उस अनुच्छेद में आशय को पढ़ना वैध होगा कि केवल ऐसे कानूनों को चुनौती से प्रतिरक्षित किया जाएगा

अनुच्छेद 14 और 19 मूल संरचना को नुकसान या नष्ट नहीं करते हैं।

संविधान। ए के प्रावधानों को पढ़ने का सिद्धांत

इसे संवैधानिक चुनौती से बचाने के उद्देश्य से कानून है

अच्छी तरह से ज्ञात। लेकिन हम इस तर्क को स्वीकार करना असंभव पाते हैं

इस ओर से विद्वान वकील क्योंकि, ऐसा करने के लिए एक शामिल होगा

पढ़ने के सिद्धांत की घोर विकृति, उस सिद्धांत को वंचित करना

जब चौड़ाई के शब्दों का अनजाने में उपयोग किया जाता है तो इसका एकमात्र या सही तर्क होता है।

बचत करने के लिए नीचे पढ़ने के उपकरण का सहारा नहीं लेना चाहिए।

कानून निर्माताओं की संवेदनशीलता, और न ही वास्तव में एक कानून की कल्पना करना किसी की पसंद से पारित किया गया है। कम से कम एक को तो लेना ही होगा

संसद अपने वचन पर जब, विशेष रूप से, एक संवैधानिक कार्य करती है

!

संशोधन।

श्री पालखीवाला ने हमें उनके भाषण का एक अंश पढ़ा।

तब कानून मंत्री जो अनुच्छेद में संशोधन पर बोलते हुए

-31 सी ने कहा कि संशोधन पेश किया जा रहा था क्योंकि

सरकार बुनियादी ढांचे की "छूट और बाधा" नहीं चाहती थी। अधिकार। यदि संसद ने अभ्यास करने का स्पष्ट इरादा प्रकट किया है

एक असीमित शक्ति, के आयाम को पढ़ने की अनुमति नहीं है *

¦

वह शक्ति ताकि उसे सीमित किया जा सके। पढ़ने के सिद्धांत को विधायिका के स्पष्ट इरादे के विरोध में लागू या लागू नहीं किया जा सकता है। हम मानते हैं कि संवैधानिक कानून के इतिहास में, किसी भी संवैधानिक संशोधन को कभी भी इसके कहने और इरादे के बिल्कुल विपरीत अर्थ में नहीं पढ़ा गया है। वास्तव में, इस तर्क को स्वीकार करना कि हमें अनुच्छेद 31 सी को पढ़ना चाहिए, ताकि इसे केशवानंद भारती में बहुमत के निर्णय के अनुपात के अनुरूप बनाया जा सके, अनुच्छेद 31 सी के घोषित उद्देश्य को नष्ट करना है जैसा कि "कुछ कानूनों की बचत" शीर्षक द्वारा इंगित किया गया है, जिसके तहत अनुच्छेद 31 ए, 31 बी है। और 31 सी को समूहीकृत किया गया है। चूंकि अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया गया था

निर्विवाद रूप से विधायिकाओं को एक विशेष विवरण के कानून पारित करने के लिए सशक्त बनाने की दृष्टि से बनाया गया है, भले ही वे कानून उल्लंघन करते हों

अनुच्छेद 14 और 19 के अनुशासन में, हमें यह मानना असंभव लगता है कि हमें अभी भी अनुच्छेद 31 सी को असंवैधानिकता की चुनौती से बचाना चाहिए, उस अनुच्छेद के शब्दों को पढ़कर जो तर्क को नष्ट करते हैं। उस अनुच्छेद और एक इरादे का जो इसके घोषित उद्देश्य के स्पष्ट रूप से विपरीत है।

उसी तर्क का एक हिस्सा विद्वानों द्वारा हम पर दबाया गया था

अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल जिन्होंने तर्क दिया कि यह अभी भी चार प्रश्नों पर निर्णय लेने के लिए अनुच्छेद 31 सी के तहत अदालतों के लिए खुला होगा: (1) क्या कानून राज्य नीति के किसी भी निर्देशक सिद्धांत को सुरक्षित करता है? ((ख) क्या निर्देशात्मक सिद्धांतों के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करना आवश्यक है? ((iii) इसकी सीमा क्या है। इस तरह के अतिक्रमण, यदि कोई हो? और (iv) क्या यह अतिक्रमण संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करता है?

यह तर्क उसी आलोचना के लिए खुला है जिसके लिए तर्क दिया गया है।

विद्वान महान्यायवादी खुला है और जिसका हमने अभी-अभी निपटारा किया है। अनुच्छेद 31 सी में एक व्यापक न्यायिक समीक्षा के अस्तित्व को पढ़ना वास्तव में उस अनुच्छेद के उद्देश्य को विकृत करने की अनुमति देता है। यह स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि किसी विशेष विवरण के किसी भी कानून को इस आधार पर अमान्य नहीं माना जाएगा कि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 का उल्लंघन करता है। यह अधिकांश लोगों का सरासर साहसिक कार्य होगा। असाधारण प्रकृति की न्यायिक जांच शुरू करना, जो विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के अनुसार, अदालतें करने के लिए स्वतंत्र हैं।

हमें यह भी उल्लेख करना चाहिए, जो शायद पूरी तरह से साकार नहीं हुआ है, कि

अनुच्छेद 31 सी भाग IV में निर्धारित सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में "राज्य की नीति" को प्रभावी बनाने वाले कानूनों की बात करता है। " चीजों की प्रकृति में अदालत के लिए यह निर्धारित करना मुश्किल है कि क्या कोई विशेष कानून किसी विशेष नीति को प्रभावी बनाता है। क्या कोई कानून निर्देशात्मक सिद्धांत प्राप्त करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त है, यह हमेशा एक विवादास्पद प्रश्न होता है।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। y. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

261

और अदालतें कानून को केवल इसलिए अमान्य नहीं ठहरा सकतीं क्योंकि,

उनकी राय है, कानून एक निश्चित को प्रभाव देने के लिए पर्याप्त नहीं है

नीति। वास्तव में, हालांकि अनुच्छेद 31 सी का स्पष्ट इरादा बंद करना है

सभी न्यायिक समीक्षा, विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर का तर्क

जनरल ने दोगुनी या तिगुनी व्यापक न्यायिक समीक्षा की मांग की यहां तक कि आम तौर पर अदालतों को भी अनुमति है। यह याद रखें कि

इस प्रश्न की जांच करने की शक्ति कि क्या कोई प्रत्यक्ष और कानून के प्रावधानों और निर्देश के बीच उचित संबंध

सिद्धांत अदालतों को निर्णय में बैठने की शक्ति प्रदान नहीं कर सकता है।

राज्य की स्वयं की नीति पर। उच्चतम स्तर पर, अदालतें निम्नानुसार कर सकती हैं -

अनुच्छेद 31 सी, इस अर्थ में कानून की पहचान के बारे में खुद को संतुष्ट करता है

क्या यह निर्देशात्मक सिद्धांत के साथ प्रत्यक्ष और उचित संबंध रखता है।

यदि न्यायालय इस तरह की सांठगांठ के अस्तित्व के बारे में संतुष्ट है, तो अपरिहार्य अनुच्छेद 31 सी द्वारा प्रदान किए गए परिणाम का पालन करना चाहिए। वास्तव में, यदि

यह एक ऐसा विषय है जिस पर केशवानंद भारती के सभी 13 न्यायाधीश थे।

सहमत हैं, यह एकमात्र सवाल है जो न्यायिक समीक्षा के लिए खुला है

अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी यह था कि क्या कोई प्रत्यक्ष और

विवादित कानून और के प्रावधानों के बीच उचित संबंध अनुच्छेद 39 (बी) और (सी)। नेक्सस के संबंध में तर्कसंगतता स्पष्ट रूप से है

और कानून के बारे में नहीं। इसलिए यह स्वीकार करना असंभव है कि

यह तर्क कि यह अदालतों के लिए इस तरह की जांच करने के लिए खुला है

अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा सुझाए गए। इसलिए किया जा रहा प्रयास

अनुच्छेद 31 सी को एक लोकतांत्रिक संगठन में शामिल करना जिसके तहत व्यापक

न्यायिक समीक्षा की अनुमति होगी जो विफल होनी चाहिए।

हमें यह उल्लेख करना चाहिए था कि एक समान तर्क था। उन्नत

42 वीं की धारा 55 द्वारा प्रभावी संशोधन के संबंध में

खंड (4) और (5) को जोड़कर अनुच्छेद 368 में संशोधन

उसमें। यह आग्रह किया गया कि हमें "संशोधन" शब्द का ऐसा अर्थ निकालना चाहिए।

खंड (4) में और खंड 5 में "संशोधन" शब्द केवल समझने के लिए है।

ऐसे संशोधन जो मूल संरचना को नष्ट नहीं करते हैं

संविधान। यह तर्क एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रदान करता है कि

नीचे पढ़ने के सिद्धांत की सीमाएँ। घोषित उद्देश्य

अनुच्छेद 368 के खंड (4) और (5) में से - संसद बिना किसी सीमा के संविधान में संशोधन करेगी

जो भी हो "। इस प्रकृति के प्रावधानों को शब्दों और एक बिल्कुल विपरीत अर्थ के इरादे को पढ़कर बचाया नहीं जा सकता है और सामग्री।

विद्वान महान्यायवादी तब तर्क देते हैं कि अनुच्छेद 31 सी

इसे उन्हीं कारणों से बरकरार रखा जाना चाहिए जिनके लिए अनुच्छेद 31 ए (1) को बरकरार रखा गया था। अनुच्छेद 31 ए (1) को संविधान की समकालीन व्यावहारिक व्याख्या माना जाता था क्योंकि इसे पहले संशोधन द्वारा जोड़ा गया था जिसे 1951 में उसी निकाय द्वारा पारित किया गया था जो संविधान सभा के सदस्य थे। हम समझ सकते हैं।

!

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

262 .

कि अनुच्छेद 31 ए को समकालीन व्यावहारिक के रूप में देखा जा सकता है संविधान के इरादे की व्याख्या, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है

अनुच्छेद 31 सी के बारे में कहा जाए। इसके अलावा, एक महत्वपूर्ण गुणात्मक है दोनों लेखों के बीच अंतर। अनुच्छेद 31 ए, जिसकी वैधता

वर्षों से मान्यता प्राप्त है जिसके तहत चुनौती शामिल नहीं है

विधियों की एक निर्दिष्ट श्रेणी के संबंध में अनुच्छेद 14 और 19। यदि ए. संवैधानिक संशोधन, अनुच्छेद 14 और 19 का अनुप्रयोग है

विधायी गतिविधि के एक परिभाषित क्षेत्र से वापस ले लिया गया, जो है

यथोचित रूप से जनहित में, संविधान का मूल ढांचा

अप्रभावित रह सकते हैं। लेकिन अगर उन वस्तुओं की सुरक्षा है

असंकलित विभिन्न कानूनों के संबंध में वापस लिया गया, मौलिक स्वतंत्रता एक कांच के मामले में एक चर्मपत्र बन जाएगी जिसे देखा जाना चाहिए

ऐतिहासिक जिज्ञासा का विषय है।

अनुच्छेद 31 सी के प्रावधानों की बराबरी करने का प्रयास किया गया था।

विवाद को संभाव्यता प्रदान करने के लिए अनुच्छेद 31 ए के साथ

कि चूंकि अनुच्छेद 31 ए को भी टकटकी के फैसले के आधार पर बरकरार रखा गया था

अनुच्छेद 31 सी को उसी आधार पर बरकरार रखा जा सकता है। हम कोई योग्यता नहीं देखते हैं।

इस विवाद में। सबसे पहले, जैसा कि हमने ऊपर संकेत दिया है, पाँच मामले जो अनुच्छेद 31 ए में निर्दिष्ट हैं, ऐसी गुणवत्ता के हैं।

प्रकृति, विषय-वस्तु और चरित्र जो कम से कम एक बहस उचित रूप से कर सकती है

उत्पन्न होता है कि क्या उनके संबंध में मौलिक अधिकारों का निरसन मामले संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुंचाएंगे या नष्ट कर देंगे।

अनुच्छेद 31 सी विशिष्ट विषयों से संबंधित नहीं है। निर्देशात्मक सिद्धांत

व्यापक और सामान्य शब्दों में इस सरल कारण से जोड़े जाते हैं कि वे

प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों को निर्दिष्ट करें। दूसरा, टकटकी का सिद्धांत

- निर्णय को निरंतर कटौती के एक फलदायी स्रोत के रूप में नहीं माना जा सकता है।

मानव स्वतंत्रताएँ। किसी भी अदालत ने अनुच्छेद 31 ए की वैधता को बरकरार नहीं रखा है।

इस आधार पर कि यह मूल संरचना का उल्लंघन नहीं करता है

संविधान। अनुच्छेद 31 ए की वैधता पर कोई निर्णय नहीं है।

जिसे मापने वाली छड़ के रूप में देखा जा सकता है

शक्ति में संशोधन। हर बार अनुच्छेद 31 ए को वापस लेने के लिए संवैधानिक संशोधन को चुनौती दी जाती है, यह सुनिश्चित करने का सबसे निश्चित साधन है

भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का भारी क्षरण। इस तरह

एक प्रक्रिया कपटपूर्ण रूप से अनुपात की प्रभावकारिता को कमजोर कर देगी

मूल संरचना। उस अनुपात के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक की वैधता नए संवैधानिक संशोधन को उसके गुण-दोष के आधार पर आंका जाना चाहिए।

न ही हम वास्तव में उसी तर्क के एक अंग से प्रभावित हैं कि

जब अनुच्छेद 31 ए को टकटकी के फैसले के आधार पर बरकरार रखा गया था, तो क्या?

बरकरार रखा गया था एक संवैधानिक उपकरण जिसके द्वारा विषय का एक वर्ग

उन्मुख कानूनों को वैध माना जाता था। सरल जमीन पर

जिसके आधार के अलावा अनुच्छेद 31 ए को बरकरार रखा गया था

समकालीन व्यावहारिक व्याख्या यह थी कि इसकी वैधता को स्वीकार कर लिया गया था

और वर्षों से मान्यता प्राप्त है और इसलिए, यह मिनर्वा मिल्स लिमिटेड की अनुमति नहीं थी।

वी. यूनियन (चंद्रचूड़, सी. जे.)

263

इसकी संवैधानिकता को चुनौती देना। टकटकी निर्णय का सिद्धांत उस उपकरण या तंत्र के अनुमोदन का संकेत नहीं देता है जिसे कानूनी या संवैधानिक प्रावधान तैयार करने के उद्देश्य से नियोजित किया जाता है।

अंततः विद्वान महान्यायवादी ने आग्रह किया कि यदि हम

अनुच्छेद 31 सी की वैधता को चुनौती देते हुए, अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) की वैधता गंभीर रूप से खतरे में पड़ जाएगी क्योंकि उन खंडों को भी निरस्त करने के रूप में निरस्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद 19 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार जो संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अनुच्छेद 19 के खंड (2) से (6) के तहत, प्रतिबंध केवल तभी लगाए जा सकते हैं जब वे उचित हों और फिर, उन्हें केवल विषयों के एक निर्दिष्ट वर्ग के हित में लगाया जा सकता है। यह अदालतों को तय करना है कि क्या प्रतिबंध उचित हैं और क्या वे विशेष विषय के हित में हैं। अन्य बुनियादी विषमताओं के अलावा, अनुच्छेद 31 सी न्यायिक समीक्षा की शक्ति को इस हद तक छीन लेता है जो इसके प्रावधानों और उन प्रावधानों के बीच तुलना की झलक को भी नष्ट कर देता है।

अनुच्छेद 19 के खंड (2) से खंड (6) तक। मानव सरलता, असीम विचार हो सकता है, ने अभी तक एक ऐसी प्रणाली तैयार नहीं की है जिसके द्वारा लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा की जा सके सिवाय अदालतों के हस्तक्षेप के।

हमारे संविधान के तीन अनुच्छेद, और केवल तीन, इनके बीच स्थित हैं।

स्वतंत्रता का स्वर्ग जिसमें टैगोर चाहते थे कि उनका देश जागे और अनियंत्रित शक्ति का रसातल। वे अनुच्छेद 14,19 और 21 हैं।

अनुच्छेद 31 सी ने उस सुनहरे त्रिभुज की दो भुजाओं को हटा दिया है जो

इस देश के लोगों को यह आश्वासन देता है कि

प्रस्तावना द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा

मौलिक अधिकारों के अनुशासन के माध्यम से समतावादी युग, अर्थात,

स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों के उन्मूलन के बिना जो केवल

व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखने में मदद कर सकते हैं।

ये हमारे उस आदेश के कारण हैं जो हमने पारित किया था।

9 मई, 1980 से निम्नलिखित प्रभाव:

" संविधान 42 वें संशोधन अधिनियम की धारा 4 इससे परे है।

संसद की संशोधन शक्ति और शून्य है क्योंकि यह

19 संविधान का, यदि कानून नीति को प्रभावी बनाने के लिए है सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य का

संविधान के भाग IV में नीचे "।

" संविधान 42 वें संशोधन अधिनियम की धारा 55 है -

संसद की संशोधन शक्ति से परे और तब से शून्य है

यह संसद की शक्ति पर सभी सीमाओं को हटा देता है #

[1981]

1 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

264

संविधान में संशोधन करता है और उसे संशोधन करने की शक्ति प्रदान करता है

संविधान ताकि इसके मूल या आवश्यक को नुकसान पहुँचाया या नष्ट किया जा सके

विशेषताएँ या इसकी मूल संरचना "।

लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

भगवती, जे. (उनके लॉर्डशिप का निर्णय एक सामान्य निर्णय है

वामन राव का मामला और मिनर्वा मिल का मामला। याचिकाकर्ता लिखित में

याचिका सं। 656 1977 का 660-वामनराव और अन्य आदि, v. द.

भारत संघ और अन्य। (इसके बाद वामनराव के मामले के रूप में संदर्भित) और

अन्य संबद्ध याचिकाओं ने इसकी संवैधानिक वैधता को चुनौती दी है

महाराष्ट्र कृषि भूमि (अधिकतम सीमा) अधिनियम, 1961 (इसमें कहा गया है)

मुख्य अधिनियम के रूप में संदर्भित) जैसा कि महाराष्ट्र द्वारा संशोधित किया गया है

कृषि भूमि (जोत पर अधिकतम सीमा को कम करना) और (संशोधन) अधिनियम 1972 (इसके बाद 1975 का अधिनियम 21 के रूप में संदर्भित) और

महाराष्ट्र कृषि भूमि (जोत पर अधिकतम सीमा को कम करना)

और (संशोधन) अधिनियम 1975 (इसके बाद 1975 का अधिनियम 47 के रूप में संदर्भित)

और महाराष्ट्र कृषि भूमि (अधिकतम जोत) संशोधन अधिनियम 1975 (इसके बाद 1976 का अधिनियम 2 के रूप में संदर्भित)

इस आधार पर कि अधिनियम के संशोधित प्रावधान उल्लंघनकारी हैं

संविधान के अनुच्छेद 14,19 (1) (च), 31 और 31 ए। हम आगे चलेंगे

सुविधा के लिए मूल अधिनियम को विधिवत संशोधित के रूप में संदर्भित करें

1975 के 21,1975 के 47 और 1976 के 2 के बाद के अधिनियमों द्वारा

विवादित कानून "। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है

विवादित विधान के प्रासंगिक प्रावधानों को निर्धारित करने के लिए राय

लेकिन यह कहने के लिए पर्याप्त है कि इसने अधिकतम सीमा लागू की

महाराष्ट्र राज्य में कृषि भूमि का स्वामित्व और प्रदान किया गया

अधिकतम सीमा से अधिक भूमि के अधिग्रहण के लिए और ऐसी अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनों और अन्य व्यक्तियों को वितरित करने के लिए

कृषि भूमि के वितरण को एक तरह से सुरक्षित करने का दृष्टिकोण

जो लोगों की आम भलाई के लिए सबसे अच्छा होगा। द.

विवादित कानून ने सीलिंग के उद्देश्य से दो इकाइयों को मान्यता दी

कृषि भूमि के स्वामित्व पर। एक 'व्यक्ति' था जिसके द्वारा

धारा 2, उप-धारा (2) में परिभाषा में एक परिवार और परिवार शामिल था '

धारा 2 के आधार पर, उप-धारा (11) में एक हिंदू अविभाजित परिवार शामिल था और अन्य व्यक्तियों के मामले में, एक समूह या इकाई जिसके सदस्य प्रथा या उपयोग से संयुक्त रूप से संपत्ति या कब्जा या निवास हैं और दूसरी 'पारिवारिक इकाई' थी, जो धारा 4 के साथ पठित धारा 2 (11 ए) में इसकी परिभाषा

के अनुसार, एक व्यक्ति और उसके पति या पत्नी और उनके नाबालिग बेटे और नाबालिग अविवाहित बेटियां थीं। विवादित विधान ने अधिकतम सीमा को लागू करने के उद्देश्य से एक परिवार इकाई की एक कृत्रिम अवधारणा बनाई और यह प्रावधान किया कि परिवार इकाई के प्रत्येक सदस्य के पास संयुक्त रूप से या संयुक्त रूप से सभी भूमि है।

अलग से एक साथ और परिवार इकाई द्वारा धारित माने जाने वाले कानून की कल्पना द्वारा एकत्रित किया जाएगा। विवादित कानून में कुछ प्रावधान भी थे जो माइनरवा मिल्स लिमिटेड के हस्तांतरण और अधिग्रहण को प्रतिबंधित करते थे।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

265

सामाजिक नीति को प्रभावी बनाने की दृष्टि से कृषि भूमि और कानून का आर्थिक मिशन। विवादित कानून में यह भी शामिल था

अपने मूल प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए तंत्र को निर्धारित करने वाले प्रावधान। अब स्पष्ट रूप से और निर्विवाद रूप से यह एक

कृषि सुधार से संबंधित कानून का एक टुकड़ा और टीकाकरण किया गया था

सुरक्षात्मक वस्त्र द्वारा अनुच्छेद 14,19 और 31 के तहत चुनौती के खिलाफ

अनुच्छेद 31 ए का लेकिन फिर भी; प्रचुर सावधानी के माध्यम से, यह दिया गया था

मूल अधिनियम और बाद के संशोधन अधिनियमों को 9 वीं अनुसूची में शामिल करके अनुच्छेद 31 बी का अतिरिक्त संरक्षण: वीडियो में

संविधान (सत्रहवाँ संशोधन) अधिनियम 1964 और संविधान

(चालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976। विवादित कानून का गंभीर प्रभाव बड़े क्षेत्रों के कई भूमि धारकों को वंचित करना था

उनके द्वारा धारित कृषि भूमि। इसलिए उनमें से कुछ ने पसंद किया

नागपुर में बॉम्बे उच्च न्यायालय में रिट याचिकाओं को चुनौती दी गई

विवादित विधान की संवैधानिक वैधता और उच्च न्यायालय द्वारा चुनौती को अस्वीकार किए जाने के कारण, उन्होंने अपीलों को प्राथमिकता दी

इस न्यायालय में। भूमि की ओर से एकमात्र विवाद आगे बढ़ा

अपीलों के समर्थन में धारकों में यह था कि विवादित कानून जहाँ तक इसने एक 'परिवार इकाई' की एक कृत्रिम अवधारणा पेश की और तय की

ऐसी पारिवारिक इकाई द्वारा भूमि पर अधिकार रखने की सीमा का उल्लंघन था

सी. एल. के लिए दूसरा प्रावधान। (1) अनुच्छेद 31 ए और इससे बचाया नहीं गया था

अनुच्छेद 31 बी के सुरक्षात्मक कवच द्वारा अमान्यीकरण। इस तर्क को संविधान पीठ ने नकार दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि -

विवादित कानून ने एक कृत्रिम अवधारणा का निर्माण करके नहीं किया परिवार इकाई और ऐसे परिवार द्वारा भूमि के स्वामित्व पर अधिकतम सीमा तय करना

इकाई, अनुच्छेद 31 ए के खंड (1) के दूसरे परंतुक के साथ संघर्ष

और भले ही यह उस परंतुक का उल्लंघन करता हो, यह अनुच्छेद द्वारा संरक्षित था 31 बी मूल अधिनियम के साथ-साथ बाद के संशोधन अधिनियमों के बाद से

9 वीं अनुसूची में शामिल किए गए थे-दत्तात्रेय गोविंद महाजन

वी. महाराष्ट्र राज्य (1)। अब उस समय जब मामलों का यह जत्था

अदालत के समक्ष तर्क दिया गया था, आपातकाल चल रहा था और

इसलिए भूमि-धारकों के लिए कई भूमि जुटाना संभव नहीं था।

-विवाद जो वे अन्यथा उठा सकते थे और इसलिए,

जैसे ही आपातकाल को निरस्त किया गया, जमींदारों ने समीक्षा दायर कर दी

दत्तात्रेय गोविंद के फैसले के खिलाफ इस अदालत में याचिकाएं

महाजन का मामला और इस अदालत में सीधी रिट याचिकाओं को भी प्राथमिकता दी गई

एक बार फिर विवादित लोगों की संवैधानिक वैधता को चुनौती

कानून। अब, निश्चित रूप से, अनुच्छेद 31 ए ने पूर्ण प्रतिरक्षा प्रदान की

अनुच्छेद 14,19 और 31 के उल्लंघन के खिलाफ विवादित कानून और 9 वीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 31 बी ने विवादित लोगों की रक्षा की।

न केवल अनुच्छेद 14,19 और 31 के उल्लंघन के खिलाफ कानून, बल्कि

(1) [1977] , 2 एससीआर 790।

अनुच्छेद 31 ए के खंड (1) के दूसरे परंतुक के उल्लंघन के खिलाफ भी। इसके अलावा, विवादित विधान अनुच्छेद 39 खंड (बी) और (सी) में निहित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए स्पष्ट रूप से एक होने के कारण, इसे अनुच्छेद 31 सी द्वारा अमान्य होने से भी संरक्षित किया गया था। इसलिए याचिकाकर्ता तब तक विवादित कानून की संवैधानिक वैधता पर सफलतापूर्वक हमला नहीं कर सकते जब तक कि वे पहले अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी के सुरक्षात्मक कवच को छेद नहीं देते। याचिकाकर्ताओं ने तर्क देते हुए अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी को रास्ते से हटाने की मांग की कि वे संविधान के मूल ढांचे के खिलाफ थे और इसलिए, अनुच्छेद 368 के तहत संसद की घटक शक्ति से बाहर थे और इसलिए असंवैधानिक और अमान्य थे। याचिकाकर्ताओं का तर्क था कि अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी के रूप में ये संवैधानिक संशोधन अमान्य हैं।

अनुच्छेद 14,19 (1) (च), 31 और 31 ए की चुनौती का सामना करने की आवश्यकता थी और इन संवैधानिक गारंटी की कसौटी पर परीक्षण किया गया था। विवादित कानून अमान्य था। इसलिए इन मामलों में विचार के लिए पहला और प्रमुख प्रश्न यह उठा कि क्या अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी अधिकार से बाहर हैं और शून्य हैं।

संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाना या नष्ट करना। हम.

यहाँ यह इंगित किया जा सकता है कि हम इन मामलों में चिंतित थे

अनुच्छेद 31 सी की संवैधानिक वैधता जैसा कि यह संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा इसके संशोधन से पहले था. क्योंकि यह अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी था जो उन तारीखों पर लागू था जब मूल अधिनियम में संशोधन करते हुए विधानमंडल द्वारा संशोधन अधिनियम पारित किए गए थे। इन मामलों की सुनवाई एक बड़े क्षेत्र में हुई और पांच सप्ताह से अधिक समय तक चली और हमने 8 मार्च 1979 को फैसला सुरक्षित रखा। दुर्भाग्य से, हम अपने फैसले के साथ तैयार नहीं हो सके और इसलिए 9 मई 1980 को गर्मियों की छुट्टियों से पहले अदालत का अंतिम कार्य दिवस होने के कारण हमने अपने निष्कर्ष को व्यक्त करते हुए एक आदेश दिया, लेकिन यह कहते हुए कि हम अपने कारण बाद में देंगे। इस आदेश द्वारा हमने माना कि अनुच्छेद 31 ए संविधान या इसकी मूल संरचना की किसी भी बुनियादी या आवश्यक विशेषताओं को नुकसान नहीं पहुंचाता है और इसलिए यह वैध और संवैधानिक है और अनुच्छेद 31 सी भी वैसा ही है जैसा कि यह संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा अपने संशोधन से पहले था। जहां तक अनुच्छेद 31 बी का संबंध है, हमने कहा कि मूल रूप से प्रस्तुत किया गया अनुच्छेद 31 बी वैध था और इसी तरह 9 वीं अनुसूची में विभिन्न अधिनियमों और विनियमों सहित

बाद के सभी संशोधन भी समय-समय पर 24 अप्रैल, 1973 तक वैध थे, जब केशवानंद भारती के मामले पर निर्णय लिया गया था। हमने 24 अप्रैल, 1973 को या उसके बाद 9वीं अनुसूची में किए गए संशोधनों की संवैधानिक वैधता पर कोई अंतिम राय व्यक्त नहीं की थी, लेकिन हमने यह स्पष्ट कर दिया कि ये संशोधन उनके लिए खुले होंगे।

(1) [1973] सप. एससीआर 1.

1 .

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

267

इस आधार पर चुनौती दें कि वे या उनमें से कोई एक या अधिक संविधान या इसकी मूल संरचना की बुनियादी या आवश्यक विशेषताओं को नुकसान पहुंचाते हैं, और इसलिए, संसद की घटक शक्ति से बाहर हैं। यह 9 मई, 1980 को हमारे द्वारा दिया गया आदेश था और जिन कारणों का मैं वर्तमान में उल्लेख करूंगा, मैं इस निर्णय में इस आदेश की सदस्यता लेने के अपने कारणों को निर्धारित करने का प्रस्ताव करता हूं।

जहाँ तक मिनर्वा मिल्स मामले का संबंध है, की चुनौती

याचिकाकर्ताओं को मुख्य रूप से 19 अक्टूबर, 1971 के एक आदेश के खिलाफ निर्देश दिया गया था, जिसके द्वारा भारत सरकार ने उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 18ए के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग करते हुए, बीमार कपड़ा उपक्रम (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1974 (जिसे इसके बाद राष्ट्रीयकरण अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) के तहत राष्ट्रीय कपड़ा निगम द्वारा याचिकाकर्ताओं के औद्योगिक उपक्रम के प्रबंधन को अपने हाथ में लेने के लिए अधिकृत किया, जिसके द्वारा पूरे औद्योगिक उपक्रम और इसमें याचिकाकर्ताओं का अधिकार, अधिकार और हित केंद्र सरकार को हस्तांतरित किया गया और नियुक्त किए गए लोगों पर निहित किया गया। तिथि. हम 19 अक्टूबर, 1971 के आदेश की वैधता के खिलाफ चुनौती के साथ वर्तमान राय के उद्देश्य से चिंतित नहीं हैं, क्योंकि हमारे सामने जिस प्रश्न पर बहस की गई है वह केवल राष्ट्रीयकरण अधिनियम की संवैधानिकता के खिलाफ हमले से उत्पन्न होता है। याचिकाकर्ताओं ने अन्य बातों के साथ राष्ट्रीयकरण अधिनियम की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी

अनुच्छेद 14,19 (1) (च) और (छ) और 31 खंड (2) के उल्लंघन का आधार, लेकिन चूंकि राष्ट्रीयकरण अधिनियम को 9वीं अनुसूची में शामिल किया गया है

संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा याचिकाकर्ताओं ने संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 की संवैधानिकता पर भी हमला किया, क्योंकि यह केवल तभी है जब वे

संविधान (उनतालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 को निरस्त करने के लिए न्यायालय का अनुसरण करके अनुच्छेद 31 बी के सुरक्षात्मक विंग से राष्ट्रीयकरण अधिनियम को बाहर निकाल सकते हैं, कि वे राष्ट्रीयकरण अधिनियम की संवैधानिक वैधता के खिलाफ अपनी चुनौती के साथ आगे बढ़ सकते हैं। अब खंड (4) और (5) जो संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 55 द्वारा अनुच्छेद 368 में प्रस्तुत किए गए थे और जो रिट याचिकाएं दायर करने की तारीख से लागू थे, उनमें यह प्रावधान था कि उस धारा के प्रारंभ से पहले या बाद में किए गए या किए गए संविधान के किसी भी संशोधन पर किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं उठाया जाएगा और किसी संविधान की वैधता की न्यायिक समीक्षा पर रोक लगा दी जाएगी।

संशोधन। जाहिर है, अगर इन दो खंडों को अनुच्छेद 368 में वैध रूप से शामिल किया जाता है, तो वे संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ताओं के रास्ते में खड़े होंगे। इसलिए याचिकाकर्ताओं को संविधान की धारा 55 की संवैधानिक वैधता पर आपत्ति जताने के लिए मजबूर होना पड़ा

18-646 एस. सी. इंडिया/80

पी 4

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

268 (42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976। इतनी चुनौती, जैसा कि मैं वर्तमान में बताऊंगा, रास्ता साफ करने के लिए पर्याप्त होती।

याचिकाकर्ताओं ने राष्ट्रीयकरण अधिनियम की संवैधानिक वैधता पर आरोप लगाया, लेकिन याचिकाकर्ताओं ने संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 को भी चुनौती दी, जिसमें संशोधन किया गया था।

अनुच्छेद 31 सी। कई आधार थे जिन पर संवैधानिक

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की वैधता रिट याचिकाओं में विवादित थी और जब मैं पक्षों की ओर से पेश की गई दलीलों पर विचार करूंगा तो मैं उनका उल्लेख करूंगा। वर्तमान में यह कहने के लिए पर्याप्त है, और यह इंगित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि जब रिट याचिकाएं हमारे समक्ष सुनवाई के लिए पहुंचीं, तो याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश विद्वान वकील श्री पालखीवाला ने अदालत से केवल एक प्रश्न की जांच करने का अनुरोध किया, 'अर्थात्, क्या इसमें किए गए संशोधन

संविधान की धारा 4 और 55 द्वारा अनुच्छेद 31 सी और अनुच्छेद 368

(बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 संवैधानिक और वैध था और प्रस्तुत किया कि यदि ये संवैधानिक संशोधन आयोजित किए गए थे

अमान्य, तब अन्य दलीलों की अदालत द्वारा जांच की जा सकती है

बाद की तारीख में। उन्होंने हमारे सामने, तर्कों के दौरान स्वीकार किया, कि वह अनुच्छेद 31 ए, 31 बी की संवैधानिक वैधता को स्वीकार कर रहे थे

और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी और उसका एकमात्र विवाद-ए-विस

अनुच्छेद 31 सी यह था कि यह अनुच्छेद 31 सी में किया गया संशोधन था। जिसकी मूल संरचना को नुकसान पहुँचाने या नष्ट करने का प्रभाव पड़ा

संविधान और वह संशोधन, इसलिए, से परे था

संसद की घटक शक्ति। विद्वान महान्यायवादी ने

भारत संघ की ओर से श्री पालखीवाला की इस याचिका का विरोध किया गया

और प्रारंभिक आपत्ति के माध्यम से आग्रह किया कि हालांकि प्रश्न

अनुच्छेद 368 के खंड (4) और (5) की संवैधानिक वैधता

संविधान की धारा 55 द्वारा संशोधन के माध्यम से (42) संशोधन) अधिनियम, 1976 निस्संदेह न्यायालय के समक्ष उत्पन्न हुआ और यह

था। न्यायालय के लिए इस पर निर्णय देना आवश्यक है, दूसरा प्रश्न

में किए गए संशोधन की संवैधानिक वैधता के संबंध में

अनुच्छेद 31 सी रिट याचिकाओं और काउंटर पर नहीं उठा शपथ पत्र और यह निर्णय लेना पूरी तरह से अकादमिक और अनावश्यक था।

विद्वान महान्यायवादी द्वारा उठाई गई यह प्रारंभिक आपत्ति

मेरी राय में यह अच्छी तरह से स्थापित था और बनाए रखने के योग्य था। एक बार

श्री पालखीवाला ने स्वीकार किया कि वे संविधान को चुनौती नहीं दे रहे थे।

अनुच्छेद 31 ए, अनुच्छेद 31 बी और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी और

उन्हें संवैधानिक रूप से मान्य स्वीकार करने के लिए तैयार था, यह बन गया

इसके समर्थन में संशोधित अनुच्छेद 31 सी पर भरोसा करना पूरी तरह से अनावश्यक है।

राष्ट्रीयकरण अधिनियम की वैधता, क्योंकि अनुच्छेद 31 बी,

किसी भी स्थिति में, इसे उल्लंघन के आधार पर अमान्य होने से बचाएँ

कोई भी मौलिक अधिकार। वास्तव में, अगर हम काउंटर को देखें

श्री टी. एस. साहनी, उप सचिव, मिनर्वा मिल्स लिमिटेड सरकार द्वारा दायर हलफनामा।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

269

भारत ने रिट याचिकाओं के जवाब में पाया कि संशोधित अनुच्छेद 31 सी पर सरकार की ओर से कोई निर्भरता नहीं रखी गई है। भारत संघ का मामला है और वह इसके द्वारा समर्थित है

राष्ट्रीयकरण अधिनियम की धारा 39 में निहित विधायी घोषणा, कि यह अधिनियम अनुच्छेद के खंड (बी) में निर्दिष्ट सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था

39 संविधान से। न ही भारत संघ अपने विरोध में

शपथ पत्र और न ही विद्वान महान्यायवादी अपनी दलीलों के दौरान

अनुच्छेद में निहित को छोड़कर किसी अन्य निदेशक सिद्धांत पर भरोसा किया

39 खंड (बी)। श्री पालखीवाला ने भी कोई प्रयास नहीं किया

राष्ट्रीयकरण अधिनियम को राज्य नीति के किसी अन्य निदेशक सिद्धांत से संबंधित करें। अब या तो राष्ट्रीयकरण अधिनियम वास्तव में और वास्तव में एक था

अनुच्छेद 39 में निर्धारित निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए कानून

खंड (ख) जैसा कि धारा 39 में घोषित किया गया था या यह ऐसी विधि नहीं थी और

धारा 39 में निहित विधायी घोषणा एक रंगीन उपकरण था।

यदि यह पहला था, तो असंशोधित अनुच्छेद 31 सी पर्याप्त होगा।

राष्ट्रीयकरण अधिनियम को हमले से बचाने के लिए

अनुच्छेद 14,19 और 31 का उल्लंघन और यह अनावश्यक होगा

संशोधित अनुच्छेद 31 सी का आह्वान करें और यदि यह बाद वाला था, तो न तो गैर-संशोधित और न ही संशोधित अनुच्छेद 31 सी में कोई प्रावधान होगा।

आवेदन। इस प्रकार, किसी भी स्थिति में, संशोधित अनुच्छेद 31 सी

संवैधानिक पर निर्णय लेने में कोई प्रासंगिकता नहीं है

राष्ट्रीयकरण अधिनियम की वैधता। यह देखना मुश्किल है कि इनमें कैसे

परिस्थितियों में, न्यायालय को जांच करने के लिए बुलाया जा सकता है

अनुच्छेद 31 सी में किए गए संशोधन की संवैधानिकता: यह सवाल

बस विचार के लिए उत्पन्न नहीं हुआ और यह पूरी तरह से अनावश्यक था

इसे तय करें। श्री पालखीवाला चुनौती के लिए युद्ध के मोर्चे तक पहुँच सकते थे

राष्ट्रीयकरण अधिनियम की संवैधानिक वैधता जैसे ही वह

अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी द्वारा बनाई गई बाधाओं को दूर किया और

संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975

राष्ट्रीयकरण अधिनियम अनुच्छेद 31 बी के सुरक्षात्मक विंग के भीतर और

उनके लिए अनुच्छेद 31 सी में संशोधन करना आवश्यक नहीं था। रास्ते से बाहर क्योंकि इसने वैधता के खिलाफ उनकी चुनौती को अवरुद्ध नहीं किया

राष्ट्रीयकरण अधिनियम। इसलिए मेरा मानना है कि

संविधान का सवाल उठाने वाले श्री पालखीवाला का पूरा तर्क

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन अकादमिक था और न्यायालय

इसमें शामिल होने से बहुत अच्छी तरह से इनकार किया जा सकता था, लेकिन चूंकि, न्यायालय

श्री पालखीवाला के निमंत्रण पर, इस अकादमिक कार्य को शुरू किया।

अभ्यास करें और इस पर काफी समय बिताया, और उठाए गए मुद्दे हैं

राष्ट्र के भविष्य के लिए भी सबसे गंभीर महत्व का, मुझे लगता है, मैं

अगर मैं इस प्रश्न की जांच करने के लिए आगे नहीं बढ़ता हूं तो मैं अपने कर्तव्य में विफल रहूंगा।

गुणों पर।

मैं इस स्तर पर इंगित कर सकता हूं कि इस प्रश्न पर तर्क

लगभग तीन सप्ताह की अवधि में फैले हुए थे और काफी:

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

270

इस सवाल पर दोनों तरफ से ज्ञान और विद्वता लाई गई। दलीलों की सुनवाई 22 अक्टूबर 1979 को शुरू हुई और 16 नवंबर 1979 को समाप्त हुई। मुझे उम्मीद थी कि इस तरह के महत्वपूर्ण महत्व के प्रश्नों पर बहस पूरी होने के बाद, मसौदा निर्णय से पहले या बाद में न्यायिक सम्मेलन में 'विचारों का स्वतंत्र और स्पष्ट आदान-प्रदान' होगा।

मेरे प्रभु मुख्य न्यायाधीश द्वारा प्रसारित और मैं या तो अपने सहयोगियों के विचारों को साझा करने में सक्षम होऊंगा या यदि यह संभव नहीं था, तो कम से कम उन्हें मेरे दृष्टिकोण से सहमत होने के लिए मनाने की कोशिश करें। लेकिन, मैं खुद को उसी संकट में पाता हूं जिसमें विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने खुद को केशवानंद भारती बनाम में पाया था। केरल राज्य (1)। विद्वान।

मुख्य न्यायाधीश ने उस मामले में अपना फैसला यह कहते हुए शुरू किया कि "मैं चाहता था।

मेरा अपना लेकिन इस तरह का एक अलग निर्णय लिखने से बचने के लिए

अब खुला नहीं दिखता है। हम मामले की सुनवाई के लिए 13 लोगों की पूरी संख्या में बैठे।

और मुझे उम्मीद थी कि विचारों के एक स्वतंत्र और स्पष्ट आदान-प्रदान के बाद, मैं ऐसा करूंगा।

मेरे किसी सम्मानित व्यक्ति के विचारों को साझा करने में सक्षम होना।

भाइयों, लेकिन हम पर हावी हो गए थे-साहसी परिस्थितियों द्वारा लिया गया था।

अर्थात्, वकील ने उन्हें समझाने के लिए इतना समय लिया संबंधित दृष्टिकोण कि न्यायाधीशों के लिए बहुत कम समय छोड़ा गया था:

" तर्कों के समापन के बाद, मसौदे के आदान-प्रदान के लिए।

निर्णय "। यहाँ भी, मैं ऐसी ही परिस्थितियों से मजबूर हूँ, हालांकि साहसिक नहीं, बिना एक अलग राय देने के लिए

अपने सहयोगियों के साथ कारणों पर चर्चा करने का अवसर मिला।

जो विवादित संविधान को निरस्त करने में उनके साथ भारी था संशोधन। कुछ कैसे या अन्य, शायद असाधारण के कारण

काम का दबाव जिसके साथ यह न्यायालय बोझिल है, कोई न्यायिक नहीं

सम्मेलन या चर्चा आयोजित की गई और न ही कोई मसौदा निर्णय लिया गया। प्रसारित जो चर्चा का आधार बन सकता है, हालांकि,

जैसा कि ऊपर बताया गया है, तर्कों की सुनवाई समाप्त हुई

16 नवंबर, 1979 तक। यह केवल 8 मई को था,

1980 , गर्मियों के लिए अदालत के बंद होने से सिर्फ दो दिन पहले

छुट्टी, कि मुझे विद्वान मुख्य न्यायाधीश द्वारा सूचित किया गया था

कि वह और अन्य तीन विद्वान न्यायाधीश, जिन्होंने इस मामले की सुनवाई की थी

मेरे साथ, फैसला किया था, एक आदेश पारित करने के लिए विवादित घोषित करने के लिए संवैधानिक संशोधन अधिकार से बाहर हैं और इस आधार पर अमान्य हैं कि वे

संविधान की बुनियादी विशेषताओं का उल्लंघन किया और इसके कारणों

यह आदेश उनके द्वारा बाद में दिया जाएगा। मुझे मुश्किल लगी

इस प्रक्रिया को अपनाने के लिए खुद को राजी करें, क्योंकि ऐसा नहीं था

न्यायाधीशों के बीच न्यायिक सम्मेलन या चर्चा जहां हो सकती है

विचारों का स्वतंत्र और स्पष्ट आदान-प्रदान हो और न ही कोई मसौदा निर्णय हो

प्रसारित किया और इसलिए मुझे कारणों को जानने का लाभ नहीं मिला।

क्यों विद्वान मुख्य न्यायाधीश और अन्य तीन विद्वान न्यायाधीश थे

(1) [1973] सप. एस. सी. आर. 1

वाई.

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

संवैधानिक संशोधनों को निरस्त करने के लिए इच्छुक। यदि कोई न्यायिक सम्मेलन या चर्चा हुई होती या विवादित संवैधानिक संशोधनों को अधिकार से बाहर रखने के कारणों को निर्धारित करने वाले मसौदा निर्णय को प्रसारित किया गया होता, तो मेरे लिए पूर्ण और स्पष्ट चर्चा के परिणामस्वरूप या मसौदा निर्णय में दिए गए कारणों पर विचार करने के बाद, या तो मेरे प्रभु मुख्य न्यायाधीश और अन्य तीन विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लिए गए विचार से सहमत होना या यदि मैं सहमत होने के लिए इच्छुक नहीं था, तो उन्हें अपना विचार बदलने और मेरी राय से सहमत होने के लिए राजी करना संभव होता। यही न्यायिक सामूहिकता का सार है। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि न्यायालय का निर्णय न्यायालय की रचना करने वाले न्यायाधीशों के सामूहिक विचार-विमर्श का परिणाम होना चाहिए और यह, मेरी विनम्र राय में, सामूहिक निर्णय लेने के परिणाम में नहीं होगा, यदि एक या एक से अधिक न्यायाधीश हों।

व्यक्तिगत राय, अपने सहयोगियों की अनदेखी करते हुए और चर्चा किए बिना उनके साथ कारण और उनके मसौदा निर्णय को प्रसारित किए बिना भी

ताकि सहकर्मियों को इसमें भाग लेने का अवसर न मिले

सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया। यह एक अराजकता की शुरुआत करेगा

न्यायिक प्रक्रिया में स्थिति और यह एक अस्वास्थ्यकर मिसाल होगी

जिसे यह न्यायालय देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में-एक आधुनिक न्यायिक के रूप में

देश को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। इसके अलावा, मुझे लगा कि यह नहीं था संवैधानिक संशोधन को निरस्त करने वाले आदेश का उच्चारण करने का अधिकार

बिना कोई तर्कपूर्ण निर्णय दिए। आम तौर पर एक मामला हो सकता है

केवल एक तर्कपूर्ण निर्णय द्वारा निपटाया जाता है और आदेश का पालन किया जाना चाहिए

फैसले पर। यह सच है कि कभी-कभी जहां मामला शामिल होता है

नागरिक की स्वतंत्रता या मृत्युदंड का निष्पादन या जहाँ एक तर्कसंगत निर्णय तैयार करने में लगने वाला समय पूर्व-न्यायिक रूप से हो सकता है

विजेता पक्ष को प्रभावित करता है, यह न्यायालय, के व्यापक हित में करता है

न्याय, एक आदेश का उच्चारण करें और बाद में कारण दें, लेकिन ये हैं

असाधारण मामले जहाँ न्याय की आवश्यकताएँ न्यायालय को प्रेरित करती हैं

कानूनी रूप से स्वीकृत पाठ्यक्रम से प्रस्थान करना। लेकिन, वहाँ अदालत ने

वास्तव में तर्कों के समापन के बाद लगभग 5 महीने तक इंतजार किया

हालांकि कारण तैयार नहीं थे; लगभग 21 महीने की देरी आदेश देने से किसी के हितों को नुकसान नहीं होने वाला था।

पक्षकार, क्योंकि आदेश रिट याचिका का निपटारा करने वाला नहीं था और कई मुद्दों पर अभी भी निर्णय लिया जाना बाकी है जो हो सकता है

गर्मी की छुट्टियों के बाद ही सौदा किया। इस तरह हुआ होगा न्याय के हितों के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है यदि आदेश इस पर किया गया था,

ग्रीष्मकालीन अवकाश के बाद न्यायालय का पुनः उद्घाटन

एक तर्कपूर्ण निर्णय। ये वे कारण थे जिन्होंने मुझे मजबूर किया

9 मई, 1980 के अपने आदेश को अनुचित तरीके से पारित करने से इनकार करने के लिए

विवादित संवैधानिक तारीख की वैधता पर आदेश

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[1981] 1 एस सी आर।

272

संशोधन और यह कहते हुए कि मैं "एक अंतिम आदेश पारित करना पसंद करूंगा

यह मामला जब मैं अपना तर्कपूर्ण निर्णय देता हूं "। दुर्भाग्य से इस आदेश ने मेरी स्थिति के बारे में काफी गलतफहमी पैदा कर दी और

यही कारण है कि मैंने संक्षेप में समझाना आवश्यक समझा है। मैंने जिस तरह से काम किया मैंने वैसा क्यों किया। ¸

एक और मुसीबत भी है जिससे मैं पीड़ित हूँ

इस राय की तैयारी। यह स्पष्ट है कि निर्णय

वामनराव के मामले में उत्पन्न होने वाले प्रश्न निकटता से और अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

मिनर्वा मिल के मामले में प्रश्नों के निर्णय के साथ और इसलिए, तार्किक रूप से और सौंदर्यशास्त्र और व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी

व्यावहारिक रूप से, प्रश्नों से निपटने के लिए एक राय होनी चाहिए।

दोनों मामलों में। लेकिन, दुर्भाग्य से मिनर्वा मिल के मामले की सुनवाई

वामनराव की याचिका पर सुनवाई करने वाली पीठ से अलग पांच न्यायाधीशों की पीठ

मामला। वामनराव के मामले की सुनवाई विद्वानों की एक पीठ ने की थी।

मुख्य न्यायाधीश, मैं, कृष्ण अय्यर, जे., तुलजापुरकर, जे. और ए. पी. सेन, जे.

}

जबकि कृष्ण अय्यर, जे. तुलजापुरकर, जे. और ए. पी. सेन, जे. नहीं थे। मिनर्वा मिल के मामले की सुनवाई करने वाली पीठ के सदस्य। तब से

दो अलग-अलग पीठों ने इन मामलों की सुनवाई की, आमतौर पर

दो राय होनी चाहिए, प्रत्येक मामले में एक। I. हालांकि, एक लिखने का प्रस्ताव है

दोनों मामलों में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों से निपटने के लिए एकल राय, क्योंकि यही एकमात्र तरीका है जिसमें मुझे लगता है कि मैं एक एकीकृत प्रस्तुत कर सकता हूं

मेरे दृष्टिकोण के समर्थन में तर्क, अनुचित बने बिना और अनावश्यक रूप से दोहराव।

इन दोनों मामलों में विचार के लिए जो प्रमुख प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या अनुच्छेद 31 ए, अनुच्छेद 31 बी को 9 वें के साथ पढ़ा जाता है।

समय-समय पर और विशेष रूप से संविधान (सत्रहवाँ संशोधन) अधिनियम, 1964 और संविधान (चालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित अनुसूची, अनुच्छेद 31 सी जो संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा इसके संशोधन से पहले था और संशोधित अनुच्छेद 31 सी संवैधानिक रूप से मान्य हैं; क्या वे अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संशोधन शक्ति के दायरे में आते हैं। इस प्रश्न का निर्धारण इस बड़े प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि क्या अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संशोधन शक्ति पर कोई सीमाएँ हैं और यदि हैं, तो सीमाएँ क्या हैं। यह प्रश्न इस न्यायालय के 13 न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए आया-अब तक की सबसे बड़ी पीठ-और 68 दिनों तक चली सुनवाई के बाद-अब तक की सबसे लंबी सुनवाई-ग्यारह निर्णय दिए गए जो केशवानंद भारती बनाम में बताए गए हैं। केरल राज्य (ऊपर)। 1 में इस न्यायालय का पूर्व निर्णय। सी. गोलकनाथ और अन्य। वी. पंजाब राज्य (1) जहाँ, पाँच के विरुद्ध छह के बहुमत से, मौलिक

(1) [1967] 2 एससीआर 762।

संसद द्वारा अनुच्छेद 368 के तहत अधिकारों को अपरिवर्तनीय माना गया था, केशवानंद भारती के मामले में निर्णय के परिणामस्वरूप शासन किया गया था। लेकिन, तेरह विद्वान न्यायाधीशों में से छह (सीकरी, सी. जे. शेलट, ग्रोवर, हेगड़े, रेड्डी और मुखर्जी, जे. जे.) याचिकाकर्ताओं के इस तर्क को स्वीकार किया कि हालांकि अनुच्छेद 368 ने संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की थी, लेकिन संशोधन की शक्ति पर अंतर्निहित या निहित सीमाएं थीं और इसलिए अनुच्छेद 368 ने शक्ति प्रदान नहीं की।

संसद संविधान में संशोधन करेगी ताकि संविधान को नष्ट किया जा सके या

पर

संविधान के आवश्यक या बुनियादी तत्वों या विशेषताओं को समाप्त करें। मौलिक अधिकार, इन छह विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के अनुसार, बुनियादी या आवश्यक विशेषताओं का गठन करते हैं। इसलिए, अनुच्छेद 368 द्वारा प्रदत्त संशोधन शक्ति का प्रयोग करते हुए उन्हें निरस्त या निरस्त नहीं किया जा सकता था, हालांकि उन अधिकारों का एक उचित संक्षिप्तकरण जनहित में किया जा सकता था। न्यायमूर्ति खन्ना को अनुच्छेद 368 के स्पष्ट शब्दों के बावजूद मौलिक अधिकारों से संबंधित अनुच्छेदों को उनके संचालन से बाहर करना मुश्किल लगा और उन्होंने कहा कि अनुच्छेद 368 में 'संशोधन' शब्द का वही अर्थ होना चाहिए चाहे वह संशोधन हटाने या संक्षिप्त करने से संबंधित हो।

संविधान के भाग II में मौलिक अधिकार या क्या यह संविधान के भाग III के बाहर किसी अन्य प्रावधान से संबंधित है। लेकिन 'संशोधन' शब्द के अर्थ पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हुए, विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि संशोधन करने की शक्ति में शामिल नहीं है संविधान को निरस्त करने की शक्ति, कि 'संशोधन' शब्द यह अभिनिर्धारित करता है कि मौजूदा संविधान को पहचान खोए बिना जीवित रहना चाहिए, कि इसे संशोधित रूप में बनाए रखा जाना चाहिए, और इसलिए, संशोधन की शक्ति में संविधान की मूल संरचना या ढांचे को नष्ट करने या निरस्त करने की शक्ति शामिल नहीं है।

संविधान। शेष छह न्यायाधीशों का विचार था कि

संशोधन की शक्ति पर किसी भी प्रकार की कोई सीमा नहीं थी, हालांकि उनमें से तीन इस सीमा को पूर्वानुमेय करने के लिए तैयार थे कि पूरे संविधान को निरस्त नहीं किया जा सकता था, एक राज्य को संविधान के बिना छोड़ दिया। अब कुछ विद्वानों ने यह विचार व्यक्त किया है कि

चल रहे ग्यारह निर्णयों द्वारा उत्पन्न भ्रम के वेल्टर से एक हजार से अधिक पृष्ठों पर, किसी भी अनुपात को निकालना संभव नहीं है

जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून कहा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि छह न्यायाधीशों का नेतृत्व सीकरी कर रहे थे। सी. जे. ने पढ़ा है

अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संशोधन शक्ति पर एक सीमा

विशेषताएँ और "आवश्यक तत्व" जबकि खन्ना, जे. ने नियोजित किया है। क्या इंगित करने के लिए "बुनियादी संरचना और ढांचा" सूत्र

प्रत्येक दृष्टिकोण में संशोधन प्रक्रिया से मुक्त है और यह है

तर्क दिया कि "बुनियादी विशेषताएँ" और "आवश्यक तत्व" नहीं हो सकते हैं

इसे "बुनियादी संरचना और ढांचे" का पर्याय माना जाता है।

ए. एच.

इन विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण के लिए समर्थन प्राप्त करने की मांग की है

रिपोर्ट के पृष्ठ 706 पर न्यायमूर्ति खन्ना का निम्नलिखित अवलोकन है:

" तब याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया जाता है कि

संविधान की विशेषताओं को इसके परिणामस्वरूप बदला नहीं जा सकता है -

संशोधन। जहाँ तक अभिव्यक्ति "आवश्यक विशेषताओं" का अर्थ है संविधान की मूल संरचना या ढांचा, मेरे पास है

पहले से ही इस सवाल से निपटा गया है कि क्या शक्ति

संविधान में संशोधन अपने भीतर शक्ति को शामिल करेगा।

संविधान की मूल संरचना या ढांचे को बदलना।

इसके अलावा, संविधान के सभी प्रावधान विषय हैं।

संशोधन प्रक्रिया के लिए और उससे छूट का दावा नहीं कर सकते

आवश्यक विशेषताओं का वर्णन करके प्रक्रिया "।

गुण-दोष के आधार पर इस दृष्टिकोण के लिए जो भी औचित्य हो, मुझे नहीं लगता कि इस अवलोकन को इस अर्थ के रूप में पढ़ा जा सकता है कि खन्ना की राय में, जे. "बुनियादी संरचना या रूपरेखा कार्य" जैसा कि उन्होंने विचार किया था, अन्य छह विद्वान न्यायाधीशों द्वारा बोली गई "बुनियादी विशेषताओं" या "आवश्यक तत्वों" से अलग था। यह याचिकाकर्ताओं की ओर से आग्रह किए गए एक तर्क के संदर्भ में था कि संविधान की "आवश्यक विशेषताओं" को बदला नहीं जा सकता है कि यह टिप्पणी खन्ना, जे. द्वारा की गई थी, यह स्पष्ट करते हुए कि यदि "आवश्यक विशेषताओं" का अर्थ संविधान की "बुनियादी संरचना या ढांचा" है, तो याचिकाकर्ताओं का तर्क स्वीकार्य होगा, लेकिन यदि "आवश्यक विशेषताएं" "बुनियादी संरचना या ढांचे" का हिस्सा नहीं हैं और इससे परे हैं, तो वे संशोधन प्रक्रिया से मुक्त नहीं होंगे। लेकिन इस अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि एक ओर सीकरी सी. जे. और दूसरी ओर खन्ना जे. के नेतृत्व में छह न्यायाधीश संसद की संशोधनकारी शक्ति पर सीमा के सटीक दायरे के संबंध में पूरी तरह से स्पष्ट नहीं थे। यह एक गंभीर तर्क उठा सकता है कि जहाँ तक संसद की संशोधनकारी शक्ति के दायरे और दायरे का संबंध है, क्या इस मामले में निर्णयों से किसी भी अनुपात निर्णय को निकाला जा सकता है। एक विवादास्पद प्रश्न उत्पन्न हुआ होगा कि क्या "बुनियादी और आवश्यक विशेषताओं" को संविधान की "बुनियादी संरचना या ढांचे" के साथ जोड़ा जा सकता है और यदि वे नहीं हो सकते हैं, तो क्या इन दोनों सूत्रीकरणों को सामान्य अनुपात का प्रतिनिधित्व करने के लिए लिया जा सकता है। लेकिन इस कठिन और परेशान करने वाले प्रश्न की जांच करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे लगता है कि श्रीमती. इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण (1) इस न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के इस विचार को स्वीकार किया कि अनुच्छेद 368 के तहत प्रदत्त संशोधन शक्ति, हालांकि व्यापक रूप से संविधान के हर प्रावधान तक पहुँचती है, संसद को मूल संरचना या ढांचे में बदलाव करने में सक्षम नहीं बनाती है।

(1) [1976] 2 एससीआर 347।

संविधान से। चूंकि केशवानंद भारती के मामले के निर्णयों को इस तरह पढ़ा गया है और इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा एक सामान्य अनुपात निकाला गया है, इसलिए यह मुझ पर बाध्यकारी है

और इसलिए मुझे बहुमत के निर्णय से उत्पन्न सिद्धांत के आलोक में इन मामलों में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।

अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की मूल संरचना या ढांचे को बदलने की शक्ति प्रदान नहीं करता है। मैं पारितिकरण में उल्लेख कर सकता हूं कि निर्णय देने के बाद तेरह में से नौ न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णयों के सारांश में यह भी कहा गया है कि "अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की मूल संरचना या ढांचे में बदलाव करने में सक्षम नहीं बनाता है।" बेशक, में

मेरा विचार है कि नौ न्यायाधीशों द्वारा हस्ताक्षरित इस सारांश का कोई कानूनी प्रभाव नहीं है और इसे अनुच्छेद 141 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून नहीं माना जा सकता है। यह समझना मुश्किल है कि इन नौ न्यायाधीशों को मामले में दिए गए ग्यारह फैसलों के कानूनी प्रभाव को निर्धारित करते हुए सारांश देना था। एक बार निर्णय दिए जाने के बाद, ये नौ न्यायाधीश और शेष चार भी कार्यात्मक अधिकारी बन गए और उसके बाद उन्हें निर्णयों के अनुपात को निर्धारित करने या यह बताने का कोई अधिकार नहीं था कि निर्णयों के उचित विश्लेषण पर बहुमत का क्या विचार था। निर्णयों में क्या कानून निर्धारित किया गया था और वह कार्य उस न्यायालय द्वारा किया जाना था जिसके समक्ष यह सवाल उठेगा कि केशवानंद भारती के मामले में क्या कानून निर्धारित है। अदालत तब दलीलों को सुनेगी और उनका विश्लेषण करेगी

निर्णय जैसा कि श्रीमती में किया गया था। इंदिरा गांधी का मामला (ऊपर) और फिर यह तय करें कि उन निर्णयों से निकलने वाला सही अनुपात क्या है जो अनुच्छेद के तहत निर्धारित कानून के रूप में न्यायालय पर बाध्यकारी है। 141 . लेकिन यहाँ ऐसा लगता है कि नौ न्यायाधीशों ने सारांश में बिना किसी तर्क को सुने, जो उनके अनुसार बहुमत का विचार था, निर्धारित किया। यह एक असामान्य अभ्यास था, हालांकि इसका उद्देश्य अच्छा था। लेकिन नौ न्यायाधीशों द्वारा शुरू की गई इस कवायद की वैधता के अलावा, यह समझना थोड़ा मुश्किल है कि इन न्यायाधीशों द्वारा एक उचित और सटीक सारांश कैसे तैयार किया जा सकता है, जब तर्कों के समापन के बाद, न्यायाधीशों के बीच मसौदा निर्णयों के आदान-प्रदान के लिए पर्याप्त समय नहीं था और उनमें से कई को लाभ भी नहीं हुआ था।

दूसरों के विचारों को पूरी तरह से जानने का। इसलिए मैं ऐसा कर सकता हूँ।

स्पष्ट करें कि मैं निर्णयों के अंत में दिए गए सारांश में निहित बहुमत के दृष्टिकोण के बयान पर भरोसा नहीं कर रहा हूं।

केशवानंद भारती का मामला, लेकिन मैं श्रीमती में लिए गए दृष्टिकोण के आधार पर आगे बढ़ रहा हूं। केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के फैसले के अनुपात के संबंध में इंदिरा गांधी का मामला।

मैं इस स्तर पर पहले दिए गए एक तर्क का भी उल्लेख कर सकता हूं।

खन्ना, जे. के निर्णय में कुछ टिप्पणियों के आधार पर।

#

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[1981] 1

एस. सी. आर

276

कि वे मौलिक अधिकारों को संविधान की मूल संरचना का हिस्सा नहीं मानते थे और इसलिए, उनके अनुसार, उन्हें अनुच्छेद 368 के तहत किए गए संशोधन द्वारा संसद द्वारा निरस्त या छीन लिया जा सकता था। यदि यह तर्क सही होता तो केशवानंद भारती के मामले में बहुमत को स्वीकार करना पड़ता। चाहे संशोधन की शक्ति का प्रयोग करते हुए मौलिक अधिकारों को निरस्त या नष्ट किया जा सके, क्योंकि राय, जे., पालेकर, जे., मैथ्यू, जे., बेग, जे., द्विवेदी, जे. और चंद्रचूड़, जे. ने यह विचार रखा कि संशोधन की शक्ति असीमित होने के कारण, यह संसद के लिए इस शक्ति का प्रयोग करते हुए मौलिक अधिकारों को निरस्त करने या समाप्त करने के लिए सक्षम है और खन्ना, जे. के दृष्टिकोण को जोड़ते हुए, '

यह अभिनिर्धारित करने में कि संसद द्वारा मौलिक अधिकारों को निरस्त या छीन लिया जा सकता है, 6 के विरुद्ध 7 न्यायाधीश होंगे।

कि खन्ना, जे. के निर्णय में कुछ टिप्पणियां हैं। रिपोर्ट के पृष्ठ 688 के निचले भाग में ऐसा प्रतीत होता है कि

विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, मौलिक अधिकार हो सकते हैं अनुच्छेद 368 के तहत एक संशोधन द्वारा संक्षिप्त या हटा दिया गया। के लिए

उदाहरण के लिए वे कहते हैं: निरस्त करने के लिए कोई गंभीर आपत्ति नहीं ली जाती है, जोड़

या संविधान के प्रावधानों के अलावा अन्य प्रावधानों में परिवर्तन

अनुच्छेद 368 द्वारा प्रदत्त संशोधन की शक्ति के तहत भाग III।

मेरी राय में वही दृष्टिकोण अच्छा होना चाहिए जब हम प्रिय हों।

भाग III में निहित मौलिक अधिकारों से संबंधित संशोधन के साथ

भेद

करें

मौलिक अधिकारों और उनके दायरे और विस्तार से संबंधित है। शक्ति जब यह मौलिक से संबंधित प्रावधानों से संबंधित नहीं है

अधिकार "। फिर रिपोर्ट के पृष्ठ 707 पर विद्वान न्यायाधीश ने कहा,

इस तर्क को अस्वीकार करता है कि एक मौलिक का मूल और सार

अधिकार संशोधन प्रक्रिया से मुक्त है। ये टिप्पणियां

शायद पहली बार में ब्लश इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि, के अनुसार

खन्ना, जे., अनुच्छेद 368 के तहत संशोधनकारी शक्ति पर्याप्त थी

न केवल जोड़ या परिवर्तन को समझने के लिए, बल्कि निरस्त करने के लिए भी

एक मौलिक अधिकार जिसका परिणामस्वरूप इसका पूर्ण निरसन होता है। लेकिन अगर हम

खन्ना, जे. के फैसले को समग्र रूप से देखें, हमें नहीं लगता

इस दृष्टिकोण को कायम रखा जा सकता है। यह स्पष्ट है कि ये अवलोकन

विद्वान न्यायाधीश द्वारा दायरे को समझाने की दृष्टि से बनाया गया था

और अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन की शक्ति का विस्तार। द. विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि संसद की संशोधनकारी शक्ति थी

संविधान के प्रत्येक प्रावधान तक पहुँचने के लिए पर्याप्त व्यापक

संविधान के भाग III में मौलिक अधिकार, लेकिन जबकि

इसलिए पकड़े हुए, वह यह स्पष्ट करने के लिए आगे बढ़े कि इतनी चौड़ाई के बावजूद।

संशोधनकारी शक्ति एक प्रबल सीमा के अधीन थी।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

277

अर्थात्, इसका प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता था कि संविधान की मूल संरचना या ढांचे को बदला जा सके। विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकार कहा

रिपोर्ट के पृष्ठ 688 पर कई शब्द हैं कि हालांकि "संशोधन की शक्ति पूर्ण है और इसमें मौलिक अधिकारों से संबंधित विभिन्न अनुच्छेदों को जोड़ने, बदलने या निरस्त करने की शक्ति शामिल होगी", यह "संविधान की मूल संरचना या ढांचे के प्रतिधारण के अधीन है"। इसी आरक्षण को विद्वान न्यायाधीश ने सी. एल. में दोहराया था। ((vii) उसके निर्णय के अंत में दिए गए उसके निष्कर्षों का सारांश। इसलिए, यह देखा जाएगा कि खन्ना, जे. के अनुसार संशोधन की शक्ति का उपयोग संसद द्वारा किया जा सकता है

ताकि किसी मौलिक अधिकार को निरस्त या छीन लिया जा सके, जब तक कि यह संविधान की मूल संरचना या ढांचे में बदलाव नहीं करता है। लेकिन अगर इस तरह के मौलिक अधिकार को निरस्त करने या छीनने का प्रभाव संविधान के मूल ढांचे या ढांचे को बदलना या प्रभावित करना है, तो संशोधन संसद की संशोधन शक्ति के बाहर होने के कारण अमान्य होगा। ठीक इसी कारण से विद्वान न्यायाधीश इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़े कि क्या संपत्ति के अधिकार को संविधान की मूल संरचना या ढांचे से संबंधित कहा जा सकता है। यदि न्यायमूर्ति खन्ना का विचार है कि कोई भी मौलिक अधिकार संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए इसे अनुच्छेद 368 के तहत संशोधनकारी शक्ति का प्रयोग करते हुए निरस्त या छीन लिया जा सकता है, तो विद्वान न्यायाधीश के लिए इस पर विचार करना पूरी तरह से अनावश्यक था कि क्या

संपत्ति के अधिकार को संविधान की मूल संरचना या ढांचे से संबंधित कहा जा सकता है। यह तथ्य कि खन्ना, जे. ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए आगे बढ़े, संदेह से परे दर्शाता है कि उनका मानना था कि मौलिक अधिकार मूल का हिस्सा नहीं थे।

संरचना। उनके द्वारा पहुँचा गया एकमात्र सीमित निष्कर्ष यह था कि

संपत्ति का अधिकार मूल संरचना का हिस्सा नहीं था, लेकिन इसलिए

जहाँ तक अन्य मौलिक अधिकारों का सवाल है, उन्होंने इस सवाल को खुला छोड़ दिया। इसलिए, उन्होंने अपने फैसले में स्पष्टीकरण देने के लिए बहुत मेहनत की

श्रीमती में। इंदिरा गांधी का मामला (ऊपर दिया गया) कि केशवानंद भारती के मामले में उन्होंने जो कहा वह यह था कि संविधान का कोई अनुच्छेद नहीं है।

इस तथ्य के कारण कि यह संशोधन प्रक्रिया से मुक्त है

मौलिक अधिकार से संबंधित है और इसके भाग III में निहित है

संविधान ", और यह कि उन्होंने उस मामले में यह नहीं माना कि" मौलिक अधिकार संविधान की मूल संरचना का हिस्सा नहीं हैं। अब

संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1972 बिना शर्त वैध है। अपने दृष्टिकोण के अनुरूप, उसे यह मानना चाहिए था कि

संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1972 वैध होगा।

केवल तभी जब उसके द्वारा केरल अधिनियमों को दिया गया संरक्षण शामिल हो। 9वीं अनुसूची में मूल संरचना का उल्लंघन नहीं था या 1

एस सी आर।

संविधान की रूपरेखा। लेकिन सिर्फ इसलिए कि विद्वान न्यायाधीश ने गलत तरीके से संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम को अभिनिर्धारित किया,

1972 बिना शर्त वैध होना और इसकी वैधता को बनाए नहीं रखना

ऐसा नहीं हो सकता कि उन्होंने मौलिक अधिकारों को ऐसा नहीं माना संविधान की मूल संरचना का हिस्सा। अगर कानून

गलत तरीके से लागू किया गया। से उद्धृत करने की प्रथा नहीं है एक जीवित लेखक का लेखन, लेकिन उस अभ्यास से हटकर जो, मैं

विश्वास करें, अब सख्ती से पालन या पालन नहीं किया जाता है, मैं इंगित कर सकता हूं

कि मैंने ऊपर जो कहा है वह की गई टिप्पणी से समर्थन पाता है

श्री सीरवई द्वारा संविधान पर अपनी पुस्तक के तीसरे खंड में

कानून, जहाँ विद्वान लेखक कहता है: " खन्ना के बीच संघर्ष,

संशोधन शक्ति और बिना शर्त वैधता पर जे. के विचार

उनतीसवें संशोधन का यह कहकर समाधान किया जाता है कि उन्होंने

संशोधन शक्ति के दायरे को सही ढंग से कम करना, लेकिन गलत तरीके से लागू करना

वह कानून अनुच्छेद 31 बी और अनुसूची 9 को बिना शर्त वैध ठहराता है।

1 विद्वान लेखक की इस बोधगम्य टिप्पणी से पूरी तरह सहमत हैं।

केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के फैसले से उभरने वाला वास्तविक अनुपात यह है कि संसद इसमें शामिल नहीं हो सकती है।

यदि अनुच्छेद 368 के तहत अपनी संशोधनकारी शक्ति का प्रयोग संविधान की मूल संरचना या ढांचे को बदल देता है, तो मुझे इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या अनुच्छेद 31 ए, 9 वीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 31 बी, अनुच्छेद 31 सी जो इसके संशोधन से पहले था और संशोधित अनुच्छेद 31 सी संविधान की मूल संरचना या ढांचे का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि यदि वे हैं, तो वे असंवैधानिक और अमान्य होंगे। अब ऐसी कौन सी विशेषताएँ या तत्व हैं जो संविधान के ढांचे की मूल संरचना का गठन करते हैं या जो क्षतिग्रस्त या नष्ट हो जाने पर संविधान से उसकी पहचान छीन लेंगे ताकि वह मौजूदा

संविधान नहीं रह जाए, लेकिन एक अलग संविधान बन जाए। केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय ने निस्संदेह बुनियादी संरचना या ढांचे के सिद्धांत को विकसित किया, लेकिन यह निर्धारित नहीं किया कि संविधान की कोई विशेष नामित विशेषताएं इसकी मूल संरचना या ढांचे का हिस्सा थीं। सी. जे. सीकरी ने संविधान की सर्वोच्चता, सरकार के लोकतांत्रिक रूप, संविधान के धर्मनिरपेक्ष चरित्र, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण, संघवाद और व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को संविधान की आवश्यक विशेषताओं के रूप में उल्लेख किया। शेलत और ग्रोवर, जे. जे. इस सूची में दो अन्य विशेषताएँ जोड़ी गईं; न्याय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक और राष्ट्र की एकता और अखंडता। हेगड़े और मुखर्जी, जेजे। संविधान की मूल विशेषता के रूप में भारत की संप्रभुता को जोड़ा गया। जे. रेड्डी ने सोचा कि संप्रभु मिनर्वा मिल्स लिमिटेड।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

279

लोकतांत्रिक गणराज्य, लोकतंत्र का संसदीय रूप और राज्य के तीन अंगों ने संविधान की मूल संरचना का गठन किया, खन्ना, जे. का मानना था कि मूल संरचना संविधान की व्यापक रूपरेखा और रूपरेखा को इंगित करती है और चूंकि संपत्ति का अधिकार था विस्तार की बात है, यह उस संरचना का हिस्सा नहीं था। लेकिन उनका मानना था कि सरकार का लोकतांत्रिक रूप, राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र और न्यायिक समीक्षा मूल संरचना का हिस्सा है। यह स्पष्ट है कि ये केवल वे उदाहरण थे जिन्हें सीकरी, सी. जे. के नेतृत्व में छह विद्वान न्यायाधीशों में से प्रत्येक ने संविधान की आवश्यक विशेषताओं के रूप में माना था और वे नहीं थे

पूर्ण होने का इरादा। शेलत और ग्रोवर, जे. जे. हेगड़े और मुखर्जी जे. जे. और रेड्डी। जे. ने वास्तव में अपने निर्णयों में कहा कि उनकी आवश्यक विशेषताओं की सूची जो संविधान की मूल संरचना का निर्माण करती है, सचित्र या अधूरी थी। छह विद्वान न्यायाधीशों द्वारा आवश्यक विशेषताओं की इस गणना का स्पष्ट रूप से कोई बाध्यकारी अधिकार नहीं था; पहला, क्योंकि न्यायाधीशों को यह तय करने की आवश्यकता नहीं थी कि संविधान की मूल संरचना या ढांचे में कौन सी विशेषताएं या तत्व शामिल हैं और इस संबंध में उनमें से प्रत्येक ने जो कहा वह आज्ञाकारी प्रकृति का था और इसका केवल प्रेरक मूल्य हो सकता है; दूसरा, क्योंकि गणना केवल उदाहरण के रूप में थी और तीसरा, क्योंकि छह न्यायाधीशों की राय कि कुछ निर्दिष्ट विशेषताएं संविधान की मूल संरचना का हिस्सा हैं, बहुमत की राय का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और इसलिए इसे अनुच्छेद 141 के तहत इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून के रूप में नहीं माना जा सकता था। इसलिए, हर मामले में जहां सवाल उठता है कि क्या कोई विशेष विशेषता है

संविधान इसकी मूल संरचना का एक हिस्सा है, इसे विभिन्न कारकों जैसे स्थान पर विचार करके निर्धारित करना होगा।

संविधान की योजना में विशेष विशेषता, इसका उद्देश्य

और उद्देश्य और अखंडता पर इसके इनकार का परिणाम

देश के शासन के एक मौलिक साधन के रूप में संविधान।

चंद्रचूड़, जे. (जैसा कि वे उस समय थे) की टिप्पणियों के माध्यम से श्रीमती. रिपोर्ट के पृष्ठ 658 पर इंदिरा गांधी का मामला।

यह निर्धारित करने का अभ्यास कि क्या कुछ विशेष विशेषताएं हैं

संविधान की मूल संरचना का हिस्सा बनना था

इस न्यायालय द्वारा श्रीमती. इंदिरा गांधी का मामला (ऊपर) जो चार साल की छोटी अवधि के भीतर विचार के लिए आया

केशवानंद भारती के मामले में निर्णयों का वितरण। द.

संवैधानिक संशोधन जिसे उस मामले में चुनौती दी गई थी

अनुच्छेद 329 ए और तर्क यह था कि इस नए अधिनियम का खंड (4) जोड़ा गया अनुच्छेद इस आधार पर संवैधानिक रूप से अमान्य था कि यह उल्लंघन करता है।

संविधान की मूल संरचना या ढांचा। यह चुनौती:

एक संविधान पीठ द्वारा सर्वसम्मति से बरकरार रखा गया था जिसमें * * शामिल थे

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

280

}

इस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और चार सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश। इस मामले में पाँच न्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णयों का विश्लेषण करना हमारे उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं है क्योंकि वे विभिन्न मामलों से निपटते हैं जो हमारे सामने आने वाले प्रश्नों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। लेकिन यह बताया जा सकता है कि दो विद्वान न्यायाधीश, अर्थात् खन्ना और मैथ्यू, जे. जे.। यह अभिनिर्धारित किया कि लोकतंत्र मूल संरचना का हिस्सा बनने वाली एक आवश्यक विशेषता थी और अनुच्छेद 329 ए के खंड (4) को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि यह संविधान के लोकतांत्रिक ढांचे को नुकसान पहुंचाता है।

चंद्रचूड़, जे. (जैसा कि वे तब थे) जोर देकर कहा कि उनकी राय में, चार अपरिवर्तनीय विशेषताएं थीं जो मूल संरचना का हिस्सा थीं, अर्थात्, "(i) भारत एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य है; (ii) अपने सभी नागरिकों के लिए स्थिति और अवसर की समानता सुनिश्चित की जाएगी; (iii) राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा और सभी व्यक्तियों को विवेक की स्वतंत्रता और स्वतंत्र रूप से धर्म को संसाधित करने, पालन करने और प्रचार करने का अधिकार होगा और (iv) राष्ट्र कानूनों की सरकार द्वारा शासित होगा, न कि पुरुषों की। उनके अनुसार, ये हमारे संवैधानिक दर्शन के स्तंभ थे, इसलिए संविधान की मूल संरचना के स्तंभ थे। इसके बाद उन्होंने कहा कि अनुच्छेद 329ए का खंड (4) "अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकार का पूरी तरह से निषेध है, एक ऐसा अधिकार जो किसी भी अन्य से अधिक हमारे संविधान का एक बुनियादी अभिधारणा है" और उस कारण से इसे असंवैधानिक और अमान्य घोषित कर दिया, तथापि, न्यायमूर्ति मैथ्यू ने अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकार के संबंध में न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अपनी असहमति व्यक्त की।

संविधान की अनिवार्य विशेषता और अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कहा गया है:

कारण:

" भारती के मामले में बहुमत ने यह नहीं माना कि अनुच्छेद 14

यह संविधान की मूल संरचना से संबंधित है। बहुमत

अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को बरकरार रखा; यह होगा

दिखाएँ कि एक संवैधानिक संशोधन जो हटा देता है या

एक साधारण कानून की वैधता को चुनौती देने के अधिकार को समाप्त करता है

उस अनुच्छेद के तहत मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने के लिए

मूल संरचना को नष्ट या क्षतिग्रस्त करें। एकमात्र तार्किक आधार

अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और प्रथम भाग की वैधता का समर्थन करने के लिए

31 सी वह कला है। 14 यह एक बुनियादी संरचना नहीं है।

मुझे बाद में संविधान के तहत समानता की अवधारणा पर चर्चा करने का अवसर मिलेगा और क्या यह मूल संरचना का हिस्सा है। लेकिन, एक बुनियादी और मौलिक प्रकृति की स्थिति मैं बना सकता हूं। इस स्तर पर स्पष्ट करें, और वहां मैं मैथ्यू, जे. से सहमत हूं कि क्या कोई विशेष विशेषता मूल संरचना का हिस्सा है, यह अनिवार्य रूप से संविधान के विशिष्ट प्रावधानों के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। मैथ्यू, जे. के शब्दों को श्रीमती में उद्धृत करने के लिए। इंदिरा गांधी का मामला (ऊपर दिया गया है) "एक बुनियादी संरचना होने के लिए यह एक स्थलीय अवधारणा होनी चाहिए।

संविधान के चार कोनों के भीतर निवास "। जो बुनियादी संरचना का गठन करता है वह "संविधान के ऊपर एक चमकता सितारा" की तरह नहीं है। " इसमें इसके बाहर पाए जाने वाले कोई अमूर्त आदर्श शामिल नहीं हैं।

संविधान के प्रावधान। प्रस्तावना में कोई संदेह नहीं है

महान अवधारणाएँ जो लोगों की वैचारिक आकांक्षाओं को मूर्त रूप देती हैं, लेकिन ये अवधारणाएँ विशिष्ट हैं और उनकी आवश्यक विशेषताएं हैं

-संविधान के विभिन्न प्रावधानों में वर्णित है। यह संविधान के मुख्य भाग में ये विशिष्ट प्रावधान हैं जो निर्धारित करते हैं

प्रकार या लोकतंत्र जो उस साधन के संस्थापक हैं

स्थापित; न्याय की गुणवत्ता और प्रकृति, राजनीतिक, सामाजिक और

आर्थिक जिसे उन्होंने महसूस करने का लक्षय रखा था, विचार की स्वतंत्रता की सामग्री

और अभिव्यक्ति जो उन्होंने उस दस्तावेज़ और दायरे में निहित की

स्थिति और अवसर की समानता जो उन्होंने उसमें निहित की।

संविधान में अधिनियमित ये विशिष्ट प्रावधान अकेले कर सकते हैं

संविधान की मूल संरचना का निर्धारण करना। ये विशेष

प्रावधान, या तो अलग से या संयोजन में, सामग्री निर्धारित करते हैं

प्रस्तावना में निर्धारित महान अवधारणाओं में से। यह असंभव है कि

बुनियादी संरचना की किसी भी ठोस अवधारणा को गोसमर से बाहर निकालें।

प्रस्तावना में निर्धारित अवधारणाएँ। के विशिष्ट प्रावधान

संविधान वे चीजें हैं जिनसे मूल संरचना का निर्माण होना चाहिए।

बुना हुआ। (1) "

अब, वामनराव के मामले में श्री फड़के का व्यापक तर्क

मूल संरचना के सिद्धांत पर स्थापित याचिकाकर्ताओं की ओर से

था, और इस तर्क का समर्थन बड़ी संख्या में अन्य लोगों ने किया था

संबद्ध याचिकाओं में उपस्थित वकील ने कहा कि मौलिक अधिकार

अनुच्छेद 14 और 19 में निहित मूल संरचना का हिस्सा हैं संविधान और इसलिए अनुच्छेद 31 ए, अनुच्छेद 31 बी 9 वें के साथ पढ़ा गया

अनुसूची और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी जहाँ तक वे अपवर्जित करते हैं

कुछ प्रकार के विधानों के लिए अनुच्छेद 14 और 19 की प्रयोज्यता

उन मौलिक अधिकारों को समाप्त करें और इस तरह बुनियादी अधिकारों को नुकसान पहुंचाएं।

संविधान की संरचना और उन्हें तदनुसार माना जाना चाहिए

संसद की संशोधन शक्ति के बाहर और इसलिए असंवैधानिक

और शून्य। मैंने यहाँ अनुच्छेद 31 का कोई संदर्भ नहीं दिया है और

1 श्री फड़के के तर्क को केवल अनुच्छेद 14 तक ही सीमित माना गया

और 19, क्योंकि, हालांकि अनुच्छेद 31 संविधान में बहुत अधिक था

जब वामनराव के मामले में दलीलें सुनी गईं, तो उसने

बाद में संविधान द्वारा हटा दिया गया (चालीस-चौथा टी संशोधन) अधिनियम, 1978 और इसके संदर्भ को भी इसमें हटा दिया गया है।

अनुच्छेद 31 ए, 31 बी और 31 सी और इसलिए हम इन अनुच्छेदों की संवैधानिक वैधता केवल तब तक है जब तक वे प्रदान करते हैं।

´अनुच्छेदों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती के खिलाफ प्रतिरक्षा

14 और 19. याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री फड़के ने भी चुनौती दी

(1) मैथ्यू, जे. श्रीमती में। इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण, [1976] 2 एससीआर 526।

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

282

संविधान की संवैधानिक वैधता (चालीसवां संशोधन)

अधिनियम, 1976 जिसमें 1975 के संशोधित अधिनियम 21 और 1975 के 41 शामिल थे।

और 9 वीं अनुसूची में 1976 का 2, इस आधार पर कि लोकसभा

यह उस तारीख को अस्तित्व में नहीं था जब इसे लागू किया गया था। लेकिन जाहिर है, धारा 55 द्वारा अनुच्छेद 368 में प्रस्तुत खंड (4) और (5) को ध्यान में रखते हुए

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 का, यह नहीं था

याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री फड़के के लिए हमला करना संभव है

9 वें अनुच्छेद के साथ पठित अनुच्छेद 31 ए, अनुच्छेद 31 बी की संवैधानिक वैधता संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम द्वारा संशोधित अनुसूची।

1976 और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी, क्योंकि के ये दो खंड

अनुच्छेद 368 किसी संविधान की वैधता को चुनौती देने से रोकता है।

किसी भी आधार पर संशोधन और घोषित किया कि वहाँ होगा

संसद की संवैधानिक शक्ति पर कोई सीमा नहीं होगी

जोड़, परिवर्तन या निरसन के माध्यम से संशोधन, के किसी भी प्रावधान

संविधान। इसलिए वह अपने तर्क में एक प्रारंभिक कदम के रूप में

अनुच्छेद के खंड (4) और (5) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई 368 इस आधार पर कि इन खंडों ने मूल संरचना को नुकसान पहुंचाया

संविधान और संसद की संशोधन शक्ति से बाहर थे।

याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री पालखीवाला का तर्क

मिनर्वा मिल्स का मामला थोड़ा अलग था। उन्होंने भी अधिकारियों पर हमला किया।

अनुच्छेद 368 के खंड (4) और (5) क्योंकि वे सीमा पर वर्जित हैं

अनुच्छेद 31 सी में बनाया गया है, लेकिन जहां तक अनुच्छेद 31 ए, अनुच्छेद 31 बी और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का संबंध था, उन्होंने उन पर विवाद नहीं किया

वैधता और, जैसा कि मैंने पहले बताया, उन्होंने स्वीकार किया और वास्तव में

उन्होंने यह दर्शाते हुए ठोस कारण दिए कि वे संवैधानिक रूप से वैध थे। इतिहास

केवल हमला अनुच्छेद में किए गए संशोधन की वैधता के खिलाफ था

31 ग संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम की धारा 4 द्वारा,

1976 और उन्होंने तर्क दिया कि यह संशोधन, निर्देश बनाकर:

मौलिक अधिकारों पर सर्वोच्च सिद्धांत, क्षतिग्रस्त या नष्ट किए गए संविधान की मूल संरचना। उन्होंने आग्रह किया कि बुनियादी

संविधान की संरचना इस आधार पर आधारित है कि जबकि

निर्देशक सिद्धांत सरकार के अनिवार्य उद्देश्य हैं, वे उद्देश्य हैं

केवल निर्धारित अनुमेय साधनों के माध्यम से प्राप्त किया जाना है

मौलिक अधिकारों और इस संतुलन और सद्भाव पर अध्याय

मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों के बीच था

मौलिक बनाकर अनुच्छेद 31 सी में संशोधन द्वारा नष्ट किया गया

निदेशक सिद्धांतों के अधीन अधिकार और परिणामस्वरूप,

संविधान की मूल संरचना को ध्वस्त कर दिया गया था। एक भावुक

श्री पालखीवाला ने गहरी भावना और भावना के साथ याचिका दायर की थी कि यदि संशोधित अनुच्छेद 31 सी को कायम रहने दिया जाता है, तो यह एक

केंद्र में विधायिका और कार्यपालिका दोनों के लिए खुला लाइसेंस और राज्यों में, लोकतंत्र को नष्ट करने और एक सत्तावादी स्थापित करने के लिए

या अधिनायकवादी शासन, क्योंकि लगभग हर कानून संबंधित हो सकता है, मिनर्वा मिल्स लिमिटेड।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, कुछ निदेशक सिद्धांत के लिए और इस प्रकार अनुच्छेद 14 और 19 की चुनौती से प्रतिरक्षा अर्जित करने में सक्षम होगा और इन दो अनुच्छेदों में निहित मौलिक अधिकार होंगे - अर्थहीन और व्यर्थ हो जाता है और केवल रेत की रस्सी बन जाती है। श्री पालखीवाला ने दृढ़ता से आग्रह किया कि न्याय, स्वतंत्रता और समानता संविधान के तीन स्तंभ हैं और वे अनुच्छेद 14 और 19 में सन्निहित हैं और इसलिए यदि इन अनुच्छेदों में निहित मौलिक अधिकारों की सर्वोच्चता को नष्ट कर दिया जाता है और उन्हें निदेशक सिद्धांतों के अधीन कर दिया जाता है, तो इसका परिणाम होगा -

संविधान के व्यक्तित्व को मान्यता से परे बदलना और व्यक्तित्व में ऐसा परिवर्तन संसद की संशोधन शक्ति के बाहर होगा। श्री पालखीवाला ने स्थिति की तुलना आपातकाल की स्थायी स्थिति से की और इसके विपरीत बताया कि आपातकाल के तहत लोगों को आपातकाल की अवधि के लिए अनुच्छेद 14 और 19 के तहत अपने मौलिक अधिकारों को लागू करने से रोका जा सकता है, यहां लोगों को बिना किसी आपातकाल के आने वाले सभी समय के लिए इन मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए अदालत का रुख करने से रोका गया था, जहां किसी भी निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए एक कानून पारित किया गया था। श्री पालखीवाला के अनुसार, इस प्रकार अनुच्छेद 31 सी में संशोधन संसद की संशोधन शक्ति से बाहर था और इसे निरस्त किया जा सकता था।

असंवैधानिक और अमान्य।

तार्किक रूप से मुझे पहले इसके खिलाफ चुनौती पर विचार करना चाहिए

कला के खंड (4) और (5) की संवैधानिक वैधता। 368 , क्योंकि यह केवल तभी है जब उन्हें रास्ते से हटाया जा सकता है कि श्री फड़के और

श्री पालखीवाला उनके द्वारा आरोपित अन्य संवैधानिक प्रावधानों की वैधता के खिलाफ अपनी-अपनी चुनौतियों के साथ आगे बढ़ सकते हैं। इन दोनों खंडों को संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 55 द्वारा अनुच्छेद 368 में शामिल किया गया था ताकि संविधान में बहुमत के निर्णय के प्रभाव पर काबू पाया जा सके।

केशवानंद भारती का मामला। खंड (4) ने अधिनियमित किया कि इस अनुच्छेद के तहत [धारा 55 के प्रारंभ से पहले या बाद में] संविधान का कोई संशोधन नहीं किया गया या नहीं किया गया है।

संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976] के किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न में बुलाया जाएगा, जबकि खंड (5), जो

"शंकाओं को दूर करने के लिए" शब्दों के साथ शुरू होता है, घोषणा की कि

" की घटक शक्ति पर कोई सीमा नहीं होगी

संसद इस अनुच्छेद के तहत इस संविधान के प्रावधानों को जोड़कर, परिवर्तित करके या निरस्त करके संशोधन करेगी। सवाल यह है कि क्या ये दोनों खंड संसद की संशोधन शक्ति की सीमाओं का उल्लंघन करते हैं और इसलिए शून्य हैं। मैं पहले उठाऊंगा

विचार खंड (4) जो संरक्षण का एक लबादा फेंकना चाहता है

में किए गए या किए जाने का तात्पर्य रखने वाले संशोधन पर

19-646 एस. सी. इंडिया/80!

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

284

संविधान और इसे किसी भी आधार पर अप्रतिरोध्य बनाता है। यह अपने शब्दों में उत्सुक है और मसौदा तैयार करने में उचित देखभाल और ध्यान की कमी को दर्शाता है। यह धारा 5 के प्रारंभ से पहले या बाद में किए गए या किए जाने का तात्पर्य रखने वाले प्रत्येक संशोधन की रक्षा करता है।

संविधान (बयालीसवां संशोधन अधिनियम, 1976)। लेकिन संविधान के किसी अन्य खंड द्वारा किया गया संशोधन होगा (चालीस दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1976 जैसे कि धारा (4), जो धारा 55 के प्रारंभ से पहले या बाद में नहीं होगी, लेकिन

उसी के साथ। इस सुरक्षात्मक प्रावधान द्वारा कवर किया जाएगा? यह

और मुझे इस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि और भी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। जो खंड की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने से उत्पन्न होता है

(4) और उन पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। मैं इस आधार पर आगे बढ़ूंगा

कि खंड (4) द्वारा दिया जाने वाला संरक्षण प्रत्येक

संविधान की धारा 55 के प्रारंभ से पहले या बाद में (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 "केवल द्वारा प्रस्तुत किया गया था

इस सुरक्षा का संकेत देने के लिए प्रचुर सावधानी का तरीका

किए गए या प्रस्तावित संशोधनों को भी शामिल करने का इरादा था संविधान के अधिनियमन से पहले किया गया था (बयालीस)

संशोधन) अधिनियम, 1976। अब भाषा पर भी एक सरसरी नज़र डालें

खंड (4) का यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है कि यह उत्साह का मामला है।

विवेक से चल रहा है। खंड (4) में प्रावधान है कि कोई संशोधन नहीं

अनुच्छेद के तहत बनाया गया या बनाया गया संविधान

368 किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न में बुलाया जाएगा। द.

किसी भी आधार पर शब्द 'सबसे व्यापक आयाम के होते हैं और वे

स्पष्ट रूप से इस आधार को भी शामिल करता है कि खंड में निर्धारित प्रक्रिया

(2) और इसके प्रावधान का पालन नहीं किया गया है। परिणाम यह है कि भले ही

एक संशोधन का पालन किए बिना किया गया है

उपखंड (2) में उसके परन्तुक सहित विहित प्रक्रिया, और

इसलिए असंवैधानिक है, यह अभी भी चुनौती से मुक्त होगा।

यह बार और बेंच दोनों में निर्विवाद सामान्य आधार था, केशवानंद भारती के मामले में कि संविधान का कोई भी संशोधन

जो उपखंड द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप नहीं था

(2) और इसका परंतुक कोई संशोधन नहीं था और एक अदालत घोषणा करेगी

यह अमान्य है। इस प्रकार यदि कोई संशोधन साधारण बहुमत से पारित किया जाता है

लोक सभा और राज्य सभा और राष्ट्रपति में संशोधन के लिए सहमति दी, यह कानून में कोई संशोधन नहीं होगा

क्योंकि खंड (2) की अपेक्षा यह है कि इसे पारित किया जाना चाहिए

दोनों सदनों में से प्रत्येक का बहुमत अलग-अलग और कम से कम नहीं दो-तिहाई सदस्य उपस्थित होते हैं और मतदान करते हैं। लेकिन अगर खंड (4) थे

वैध, इस तरह की वैधता को चुनौती देना मुश्किल हो जाएगा

संशोधन और यह प्रबल होगा, हालांकि एक मिनर्वा मिल्स लिमिटेड की अवज्ञा में किया गया था।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

285

अनिवार्य संवैधानिक-आवश्यकता। खंड (2) इसके परंतुक सहित पूरी तरह से अनावश्यक और अर्थहीन हो जाएगा और इसका

प्रिस्क्रिप्शन केवल एक कागजी आवश्यकता बन जाएगी। इसके अलावा,

खंड (2) की अपेक्षा और उसके परंतुक को निरस्त करने के अलावा, खंड (4) का किसी संशोधन को इससे मुक्त करने का भी प्रभाव है -

चुनौती भले ही यह मूल संरचना को नुकसान पहुँचाता है या नष्ट कर देता है संविधान और इसलिए इसकी संशोधन शक्ति से बाहर है

संसद। जब तक खंड (4) बना रहता है, तब तक

संविधान हालांकि असंवैधानिक है और उल्लंघन के रूप में अमान्य है संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा, जैसा कि इसमें निर्धारित किया गया है

केशवानंद भारती का मामला, अदालत में अप्रतिरोध्य होगा

कानून से। न्यायिक शक्ति के इस बहिष्करण का परिणाम समीक्षा यह होगी कि, प्रभाव और सार में, पर सीमा

व्यावहारिक दृष्टिकोण से संसद की शक्ति में संशोधन करना, गैर-मौजूद हो जाता है और यह कहना गलत नहीं होगा कि, गुप्त रूप से

और अप्रत्यक्ष रूप से, न्यायिक समीक्षा के बहिष्करण द्वारा, संशोधन संसद की शक्ति इसके विपरीत बढ़ेगी

केशवानंद भारती के मामले में इस न्यायालय का निर्णय। यह होगा

निस्संदेह संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाता है, क्योंकि

!

मूल संरचना की दो आवश्यक विशेषताएं हैं जो होंगी -

संसद की सीमित संशोधन शक्ति का उल्लंघन किया गया और

जाँच करबाक दृष्टिसँ न्यायिक समीक्षाक शक्ति कि कोनो

संविधान के तहत प्राधिकरण ने अपनी शक्तियों की सीमाओं को पार कर लिया है।

मैं तुरंत उन कारणों को बताने के लिए आगे बढ़ूंगा जिनके बारे में मुझे लगता है कि ये

दो विशेषताएँ संविधान की मूल संरचना का हिस्सा हैं।

केशवानंद भारती के बहुमत के फैसले से यह स्पष्ट है

मामला है कि हमारा संविधान एक नियंत्रित संविधान है जो प्रदान करता है

इसके द्वारा सृजित और मान्यता प्राप्त विभिन्न प्राधिकरणों पर शक्तियाँ और

उन शक्तियों की सीमाओं को परिभाषित करता है। संविधान सर्वोपरि है,

देश का सर्वोच्च कानून और कोई प्राधिकरण नहीं है, कोई विभाग नहीं है

या राज्य की शाखा, जो संविधान से ऊपर या परे है

या संविधान द्वारा अप्रतिबंधित और अप्रतिबंधित शक्तियाँ हैं। द.

संविधान ने चेक के साथ शक्ति संबंध की एक संरचना तैयार की है।

या संविधान के तहत साधन। राज्य का प्रत्येक अंग, चाहे वह कार्यपालिका हो या विधायिका या न्यायपालिका, इसका निष्कर्ष निकालती है

संविधान से अधिकार और इसे सीमाओं के भीतर कार्य करना होगा

इस तरह के अधिकार। संसद भी संविधान की एक रचना है

और इसके पास केवल ऐसी शक्तियाँ हो सकती हैं जो इसके तहत दी गई हैं

संविधान। इसके पास संशोधन की कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं है

संविधान और संविधान द्वारा निर्मित एक प्राधिकरण होने के नाते, यह

ऐसी अंतर्निहित शक्ति नहीं हो सकती है, लेकिन संशोधन की शक्ति है

इसे संविधान द्वारा प्रदत्त किया गया है और यह एक सीमित शक्ति है जो

इस तरह से सम्मानित किया जाता है। संसद नहीं आ सकती! इस शक्ति का प्रयोग तो 1

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

संविधान की मूल संरचना में परिवर्तन करने या उसकी पहचान में परिवर्तन करने के लिए संविधान में संशोधन करना। अब, यदि संवैधानिक संशोधन द्वारा संसद को संशोधन की असीमित शक्ति दी जाती है, तो यह संविधान के तहत एक प्राधिकरण नहीं रहेगा, लेकिन इसके ऊपर सर्वोच्च हो जाएगा, क्योंकि इसके पास अपनी मूल संरचना सहित पूरे संविधान को बदलने और यहां तक कि अपनी पहचान को पूरी तरह से बदलकर इसे समाप्त करने की शक्ति होगी। इसलिए यह देखा जाएगा कि संसद की सीमित संशोधन शक्ति अपने आप में संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है, जो इसकी मूल संरचना का एक हिस्सा है, क्योंकि यदि संशोधन की सीमित शक्ति को असीमित शक्ति में विस्तारित किया जाता है, तो संविधान का पूरा चरित्र बदल जाएगा। यह एक आवश्यक परिणाम के रूप में होना चाहिए कि संविधान का कोई भी संशोधन, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, संसद की संशोधन शक्ति को बुनियादी संरचना की अपरिवर्तनीयता की सीमा से मुक्त करके बढ़ाने का प्रयास करता है, मूल संरचना का उल्लंघन होगा और इसलिए संसद की संशोधनकारी शक्ति के बाहर होगा।

यह हमारी संवैधानिक योजना का एक मौलिक सिद्धांत है, और

मैंने पिछले पैराग्राफ में यह बताया है कि राज्य का प्रत्येक अंग, संविधान के तहत प्रत्येक प्राधिकरण, अपनी शक्ति संविधान से प्राप्त करता है और उसे ऐसी शक्ति की सीमाओं के भीतर काम करना पड़ता है।

लेकिन फिर सवाल यह उठता है कि किस प्राधिकरण को यह तय करना चाहिए कि प्रत्येक निकाय को प्रदान की गई शक्ति की सीमाएँ क्या हैं।

या राज्य की साधनता और क्या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है या पार किया गया है। अब राज्य के तीन मुख्य विभाग हैं जिनमें सरकार की शक्तियाँ विभाजित हैं-कार्यपालिका, विधानमंडल और न्यायपालिका। हमारे संविधान के तहत हमारे पास संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह शक्तियों का कोई कठोर पृथक्करण नहीं है, लेकिन एक व्यापक सीमांकन है, हालांकि, सरकारी कार्यों की जटिल प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, कुछ हद तक अतिव्यापी है अपरिहार्य है। शक्तियों के इस व्यापक विभाजन का कारण यह है कि "किसी भी एक अंग में शक्तियों का केंद्रीकरण" चंद्रचूड़, जे. (जैसा कि वे तब थे) के शब्दों को श्रीमती में उद्धृत कर सकते हैं। इंदिरा गांधी का मामला (ऊपर) "तीन अंगों के बीच उस ठीक संतुलन को बिगाड़कर, एक लोकतांत्रिक सरकार के मौलिक परिसर को नष्ट कर देता है।

जिसका हम वादा करते हैं। " उदाहरण के लिए, एक ऐसा मामला लें जहां प्रशासन का प्रभारी कार्यपालिका किसी व्यक्ति के पूर्वाग्रह के लिए कार्य करती है।

नागरिक और एक सवाल उठता है कि कार्यपालिका की शक्तियाँ क्या हैं और क्या कार्यपालिका ने अपनी शक्तियों के दायरे में काम किया है। इस तरह के सवाल को स्पष्ट रूप से दो बहुत अच्छे कारणों से निर्णय लेने के लिए कार्यपालिका पर नहीं छोड़ा जा सकता है। सबसे पहले, प्रश्न का निर्णय संविधान और कानूनों की व्याख्या पर निर्भर करेगा और यह पहले से ही न्यायपालिका द्वारा तय किया जाने वाला एक उपयुक्त मामला होगा, क्योंकि यह केवल न्यायपालिका ही करेगी।

इस क्षेत्र में विशेषज्ञता होनी चाहिए और दूसरा, संवैधानिक मिनर्वा मिल्स लिमिटेड।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

287

और नागरिक को दी जाने वाली कानूनी सुरक्षा भ्रामक हो जाएगी,

यदि यह कार्यपालिका पर छोड़ दिया गया था कि वह अपनी वैधता निर्धारित करे

कार्रवाई। तो भी अगर विधायिका एक कानून बनाती है और एक विवाद उत्पन्न होता है

क्या कानून बनाने में विधायिका ने क्षेत्र के बाहर काम किया है

इसकी विधायी क्षमता या कानून मौलिक का उल्लंघन करता है

अधिकार या संविधान के किसी अन्य प्रावधान, इसका संकल्प

समान कारणों से, बी के निर्धारण पर नहीं छोड़ा जा सकता है

विधायिका। इसलिए संविधान ने एक स्वतंत्र संविधान बनाया है।

इन विवादों को हल करने के लिए तंत्र और यह स्वतंत्र तंत्र

न्यायपालिका है जो न्यायिक समीक्षा की शक्ति के साथ निहित है।

कार्यकारी कार्रवाई की वैधता और वैधता निर्धारित करने के लिए

विधायिका द्वारा पारित कानून। यह पवित्र कर्तव्य है

संविधान के तहत न्यायपालिका के विभिन्न अंगों को रखने के लिए

राज्य जैसे कि कार्यपालिका और विधायिका की सीमाओं के भीतर

संविधान द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्ति। यह शक्ति न्यायपालिका को अनुच्छेद 32 और 226 द्वारा न्यायिक समीक्षा प्रदान की जाती है।

संविधान से। अनुच्छेद 25 के मसौदे के बारे में बोलते हुए,

संविधान के अनुच्छेद 32 को प्रस्तुत करने के लिए, डॉ. अम्बेडकर, प्राचार्य

हमारे संविधान के निर्माता, संविधान सभा में कहा गया है कि

9 दिसंबर, 1948:

" अगर मुझसे इसमें किसी विशेष लेख का नाम बताने के लिए कहा जाए

संविधान सबसे महत्वपूर्ण के रूप में-एक अनुच्छेद जिसके बिना

यह संविधान एक शून्य होगा-मैं किसी का उल्लेख नहीं कर सका

इस लेख को छोड़कर अन्य लेख। यही आत्मा है

संविधान और इसका दिल और मुझे खुशी है कि

सदन ने अपने महत्व को महसूस कर लिया है। (सी. ए. डी. बहस, खंड।

VII, पी। 953) .

यह हमारे संविधान का एक प्रमुख सिद्धांत है कि कोई भी चाहे जो भी हो

उच्च स्थान पर और नहीं। यद्यपि उच्च प्राधिकारी होने का दावा कर सकते हैं

संविधान के तहत अपनी शक्ति का एकमात्र न्यायाधीश या क्या इसकी कार्रवाई

यह संविधान द्वारा निर्धारित ऐसी शक्ति की सीमा के भीतर है।

न्यायपालिका संविधान और न्यायपालिका की व्याख्या करने वाली है।

यह निर्धारित करने के लिए नाजुक कार्य सौंपा गया है कि क्या शक्ति प्रदान की गई है

सरकार की प्रत्येक शाखा पर, क्या यह सीमित है, और यदि है, तो क्या

क्या सीमाएँ हैं और क्या उस शाखा की कोई कार्रवाई उल्लंघन करती है

ऐसी सीमाएँ। संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखना न्यायपालिका का काम है और संवैधानिक सीमाओं को लागू करना। यही सार है कि

कानून का शासन, जिसके लिए अन्य बातों के साथ-साथ यह आवश्यक है कि "शक्तियों का प्रयोग" सरकार द्वारा चाहे वह विधायिका हो या कार्यपालिका या

. संविधान और कानून द्वारा सशर्त कोई अन्य प्राधिकरण "।

न्यायिक समीक्षा की शक्ति हमारे संविधान का एक अभिन्न अंग है व्यवस्था और इसके बिना, कानूनों की कोई सरकार नहीं होगी और

कानून का शासन एक चिढ़ाने वाला भ्रम और एक वादा बन जाएगा अवास्तविक। मेरा विचार है कि अगर हमारी एक विशेषता है

1 [1981] 1 एस सी आर।

सुप्रीम कोर्ट की रिपोर्ट

288

ए.

संविधान जो किसी भी अन्य संविधान से अधिक बुनियादी और मौलिक है।

न्यायिक समीक्षा और यह निर्विवाद रूप से मेरे विचार से है। इसका हिस्सा संविधान की मूल संरचना। बेशक, जब मैं यह कहता हूँ

मुझे यह सुझाव देने के लिए नहीं लिया जाना चाहिए कि प्रभावी वैकल्पिक संस्थान

न्यायिक समीक्षा के लिए न्यायिक तंत्र या व्यवस्था नहीं की जा सकती है। संसद द्वारा। लेकिन मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि न्यायिक समीक्षा

बी.

यह हमारे संविधान का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है और इसे निरस्त नहीं किया जा सकता है

संविधान की मूल संरचना को प्रभावित किए बिना। यदि ए.

और यह प्रावधान किया गया है कि विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी भी कानून की वैधता किसी भी आधार पर प्रश्न किए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, भले ही।

यह विधायिका की विधायी क्षमता से बाहर है या उल्लंघनकारी है।

सी.

किसी भी मौलिक अधिकार के लिए, यह उप-संस्करण से कम नहीं होगा।

संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का गठन और मौलिक अधिकार अर्थहीन और व्यर्थ हैं। ✔ और अगर ए

संवैधानिक संशोधन किया जाता है जिसका प्रभाव होता है

डी.

न्यायिक समीक्षा की शक्ति को दूर करना और यह प्रावधान करना कि कोई संशोधन नहीं

आधार, भले ही ऐसा संशोधन मूल संरचना का उल्लंघन हो और, इसलिए, संसद की संशोधनकारी शक्ति के बाहर, यह

संसद को संवैधानिक वैधता का एकमात्र न्यायाधीश बनाना

इसने क्या किया है और वह, प्रभाव और सार में, रद्द कर देगा

' ई.

संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा और मूल को प्रभावित करना

संविधान की संरचना। इसलिए निष्कर्ष निकालना चाहिए।

अनिवार्य रूप से इसका पालन करें कि अनुच्छेद 368 का खंड (4) असंवैधानिक है

और संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाने के रूप में शून्य।

यह हमें अनुच्छेद 368 के खंड (5) पर ले जाता है। यह खंड "शंकाओं को दूर करने के लिए" शब्दों के साथ शुरू होता है और यह घोषणा करने के लिए आगे बढ़ता है कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संशोधन शक्ति पर कोई सीमा नहीं होगी। "शंकाओं को दूर करने के लिए" प्रारंभिक शब्दों के अर्थ को समझना मुश्किल है क्योंकि केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया और इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ा कि संविधान की मूल संरचना संसद की अनिवार्य शक्ति की क्षमता से बाहर थी। इंदिरा गांधी के मामले में सभी न्यायाधीशों ने सर्वसम्मति से मूल संरचना के सिद्धांत को एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया, जिसके द्वारा उनके समक्ष आक्षेपित संशोधन की वैधता, अर्थात् अनुच्छेद 329 ए (4) का न्याय किया जाना था। इसलिए, केशवानंद भारती के फैसलों के बाद

एफ.

जी.

एच.

केस और श्रीमती। इंदिरा गांधी के मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं था कि संसद की संशोधन शक्ति सीमित थी और यह संसद के लिए संविधान मिनर्वा मिल्स लिमिटेड की मूल संरचना को बदलने के लिए सक्षम नहीं थी।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

289

और खंड (5) उस संदेह को दूर नहीं कर सका जो मौजूद नहीं था। खंड (5) वास्तव में संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा को हटाने और इसे सीमित शक्ति से असीमित शक्ति में परिवर्तित करने का प्रयास कर रहा था। यह स्पष्ट रूप से और निर्विवाद रूप से संसद की ओर से एक व्यर्थ की कवायद थी। मुझे यह समझ में नहीं आता कि संसद, जिसके पास संशोधन की केवल सीमित शक्ति है और जो संविधान के मूल ढांचे को बदल नहीं सकती है, कैसे अपनी संशोधन की शक्ति का विस्तार कर सकती है ताकि वह खुद को संविधान को निरस्त करने या निरस्त करने या इसके मूल ढांचे को नुकसान पहुंचाने या नष्ट करने की शक्ति प्रदान कर सके। यह स्पष्ट रूप से संसद के पास सीमित संशोधन शक्ति से अधिक होगा। संविधान ने केवल एक सीमा प्रदान की है

संसद की शक्ति में संशोधन करना ताकि वह संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट न कर सके और संसद उस सीमित संशोधन शक्ति का प्रयोग करके उसी शक्ति को परिवर्तित न कर सके।

एक पूर्ण और असीमित शक्ति में। यदि संसद को संशोधन की पूर्ण शक्ति में प्रदत्त सीमित संशोधन शक्ति का विस्तार करने की अनुमति थी, तो संशोधन की मूल शक्ति पर कोई सीमा रखना अर्थहीन था। यह समझना मुश्किल है कि कैसे संसद के पास सीमित शक्ति है संशोधन उसी शक्ति का प्रयोग करके सीमा से छुटकारा पा सकता है और इसे एक पूर्ण शक्ति में बदल सकता है। अनुच्छेद 368 का खंड (5), जो संसद की संशोधन करने की शक्ति को निरपेक्ष बनाकर उस पर लगी सीमा को हटाने का प्रयास करता है, इसलिए इसे संसद की संशोधन करने की शक्ति से बाहर माना जाना चाहिए। एक अन्य आधार भी है जिसके आधार पर इस खंड की वैधता पर सफलतापूर्वक हमला किया जा सकता है: यह खंड संसद की संशोधन शक्ति पर सीमा को हटाकर एक नियंत्रित संविधान को अनियंत्रित संविधान में बदलने का प्रयास करता है, जो, जैसा कि ऊपर बताया गया है, अपने आप में संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है और इसलिए यह मूल संरचना का उल्लंघन है। इन परिस्थितियों में मैं अनुच्छेद 368 के खंड (5) को असंवैधानिक और अमान्य मानता हूँ।

अनुच्छेद 368 के खंड (4) और (5) के रास्ते से बाहर होने के साथ, मुझे चाहिए

अब अनुच्छेद 31 ए, 9 वीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 31 बी और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी की संवैधानिक वैधता के खिलाफ चुनौती की जांच करने के लिए आगे बढ़ें। जहाँ तक अनुच्छेद 31 ए का संबंध है, याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश श्री फड़के ने तर्क दिया कि मूल संरचना के सिद्धांत, कला द्वारा परीक्षित है। 31 ए असंवैधानिक और अमान्य था, क्योंकि इसका उस अनुच्छेद के विभिन्न खंडों में निर्दिष्ट श्रेणियों के भीतर आने वाले कानून के संदर्भ में अनुच्छेद 14 और 19 को निरस्त करने का प्रभाव था। उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद 14 और 19 में निहित मौलिक अधिकार संविधान की मूल संरचना का

हिस्सा थे और कोई भी संवैधानिक संशोधन जिसका इन मौलिक अधिकारों को निरस्त करने या नुकसान पहुंचाने का प्रभाव था, संसद की संशोधनकारी शक्ति से बाहर था। इस पर विचार करते हुए 290

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[1981] 1

एस सी आर।

तर्क, मैं यह स्पष्ट कर सकता हूँ कि मैं यहाँ केवल के साथ चिंतित हूँ

संरक्षण के बाद से अनुच्छेद 31 ए के खंड (ए) की संवैधानिक वैधता

महाराष्ट्र की भूमि के संबंध में अनुच्छेद 31 ए का दावा किया गया है। अधिकतम सीमा अधिनियम केवल उस अनुच्छेद के खंड (ए) के तहत हैं और मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है

खंड (ख) की संवैधानिक वैधता पर चर्चा करना।

अनुच्छेद 31 ए के (ई) के लिए। मुझे नहीं लगता कि श्री का तर्क।

फड़के ने अनुच्छेद 31 ए के खंड (ए) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी है। मुझे बाद में इंगित करने का अवसर मिलेगा इस निर्णय का हिस्सा कि जहां कोई कानून संवैधानिक को आगे बढ़ाने की दृष्टि से एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है

सामाजिक और आर्थिक न्याय के लक्षय के लिए, मूल संरचना का कोई उल्लंघन नहीं होगा, भले ही यह अनुच्छेद के तहत कानून के समक्ष औपचारिक समानता का उल्लंघन करता हो। 14 या अनुच्छेद 19 के तहत कोई मौलिक अधिकार। यहां अनुच्छेद 31 ए का खंड (ए) कृषि सुधार के कानून की रक्षा करता है जो स्पष्ट रूप से भारत में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक न्याय की एक बुनियादी आवश्यकता है और अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों द्वारा कवर किया गया है और यह देखना मुश्किल है कि इसे संभवतः संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन कैसे माना जा सकता है। इसके विपरीत, ग्रामीण आबादी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की ओर ले जाने वाला कृषि सुधार एक ऐसा उद्देश्य है जो संविधान की मूल संरचना को मजबूत करता है। इसलिए अनुच्छेद 31 ए के खंड (ए) को मूल संरचना परीक्षण के अनुप्रयोग पर भी संवैधानिक रूप से मान्य माना जाना चाहिए।

लेकिन, सिद्धांत पर इस तर्क के अलावा जो हमारी राय में है

स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 31 ए के खंड (ए) की संवैधानिक वैधता को बनाए रखता है, हम सोचते हैं कि देखने के निर्णय के सिद्धांत के आधार पर भी, पूरे अनुच्छेद 31 ए को संवैधानिक रूप से वैध माना जाना

चाहिए। अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता के बारे में सवाल सबसे पहले इस न्यायालय के समक्ष शंकरी प्रसाद बनाम में विचार के लिए आया था। भारत संघ (1)। इस मामले में विभिन्न आधारों पर अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक राष्ट्रीयता के खिलाफ एक सीधी चुनौती दी गई थी और इस चुनौती को इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने खारिज कर दिया था। जिस प्रमुख आधार पर चुनौती दी गई थी, वह यह था कि यदि कोई संवैधानिक संशोधन संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी मौलिक अधिकार को छीन लेता है या कम कर देता है, तो यह अनुच्छेद 13 (2) के निषेध के दायरे में आएगा और इसलिए यह अमान्य होगा। न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए इस तर्क को स्वीकार नहीं किया और यह विचार रखते हुए कि अनुच्छेद 13 के संदर्भ में 'कानून' का अर्थ सामान्य विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए नियमों या विनियमों के रूप में लिया जाना चाहिए न कि संविधान में घटक शक्ति का प्रयोग करते हुए किए गए संशोधनों के रूप में, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि

(1) [1952] एससीआर 89.

अनुच्छेद 13 (2) संवैधानिक संशोधनों को प्रभावित नहीं करता है। यह दृश्य

अब इस न्यायालय द्वारा 13 न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायालय के रूप में पुष्टि की गई है केशवानंद भारती के मामले में अब बहस करना संभव नहीं है।

विपरीत प्रस्ताव। यह सच है कि इस मामले में, संवैधानिक

अनुच्छेद 31 ए की वैधता पर उल्लंघन के आधार पर हमला नहीं किया गया था।

मूल विशेषता के बाद से वह एक सिद्धांत था जो बन गया केवल केशवानंद भारती के मामले में विकसित हुआ, लेकिन रणनीति बनी हुई है

कि जो भी तर्क दिए गए हों या छोड़े गए हों, उन्हें आगे बढ़ाया जाए। इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 31 ए को संवैधानिक रूप से वैध माना गया था।

यह निर्णय लगभग 13 साल बाद शंकर प्रसाद की पुस्तक में दिया गया था।

मामले में, इस न्यायालय के समक्ष 'सज्जन सिंह बनाम' में एक मजबूत याचिका दायर की गई थी। राजस्थान राज्य (1) कि शंकरी प्रसाद का मामला होना चाहिए

पुनर्विचार किया गया, लेकिन विभिन्न तर्कों की विस्तृत चर्चा के बाद

मामले में शामिल, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने व्यक्त किया शंकर प्रसाद के मामले में व्यक्त विचार के साथ सहमति और

परिणामस्वरूप, अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा, हालांकि

विचार के लिए जो प्रश्न उठा वह थोड़ा अलग था और इसमें अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता सीधे शामिल नहीं थी। इसके बाद, गोलक नाथ के मामले में इस न्यायालय का प्रसिद्ध निर्णय आया।

मामला (2) जहां 11 न्यायाधीशों का एक पूर्ण न्यायालय, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम संसद की घटक शक्ति से अधिक है, तब भी संभावित सिद्धांत के आधार पर स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि उक्त संशोधन और बाद में किए गए कुछ अन्य संशोधनों को बाधित नहीं किया जाना चाहिए और इसे वैध माना जाना चाहिए। परिणाम यह हुआ कि गोलक नाथ के मामले में भी निर्णय ने अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता को स्वीकार कर लिया। संशोधन शक्ति के संबंध में गोलक नाथ के मामले में लिया गया दृष्टिकोण

केशवानंद भारती के मामले में संविधान में संशोधन करने के लिए संसद की घटक शक्ति की प्रकृति और विस्तार के बारे में पूरे प्रश्न पर चर्चा की गई थी। किसी भी पिछले निर्णय से अप्रभावित आयाम और पहलू, लेकिन केवल उन संवैधानिक संशोधनों को जिन्हें उस मामले में सीधे चुनौती दी गई थी, वे थे चौबीस और। पँचिश और उनतीस संशोधन। कला की संवैधानिक वैधता। 31 ए नहीं रखा गया था

केशवानंद भारती के मामले में और उस मामले का फैसला करने वाले विद्वान न्यायाधीशों को इस पर फैसला सुनाने के लिए नहीं बुलाया गया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि यह न्यायालय इन अधिकारों को बरकरार रखता है -

उस मामले में अनुच्छेद 31 ए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि खन्ना, जे।

अनुच्छेद 31 ए देखने के निर्णय के सिद्धांत पर मान्य होगा, लेकिन यह केवल अनुच्छेद 31 सी की वैधता को बनाए रखने के उद्देश्य से था।

पी. यू. एम

(1) [1965] 1 एससीआर 933। (2) [1967] 2 एससीआर 762।

क्योंकि उनका विचार था कि अनुच्छेद 31 सी केवल अनुच्छेद 31 ए में स्वीकार किए गए सिद्धांत का विस्तार था और "जो आधार अनुच्छेद 31 ए के खंड (1) की वैधता को बनाए रखता है, वह अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को समान रूप से बनाए रखेगा"। जहाँ तक अन्य विद्वान न्यायाधीशों का संबंध है, उन्होंने अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता पर विशेष रूप से कोई विचार व्यक्त नहीं किया, क्योंकि वह मुद्दे में नहीं था।

उनके सामने। रे, जे., पालेकर, जे., मैथ्यू, जे., बेग, जे., द्विवेदी, जे. और चंद्रचूड़, जे. ने अनुच्छेद 31 सी को वैध ठहराया और यदि वह दृष्टिकोण मान्य है सही है, अनुच्छेद 31 ए को वैध माना जाना चाहिए। लेकिन यह कहा जाना चाहिए कि केशवानंद भारती के मामले में अदालत का कोई निर्णय नहीं है। 31 ए संवैधानिक रूप से मान्य है। और

इसलिए, तार्किक रूप से, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के लिए यह तर्क देना खुला होना चाहिए कि मूल संरचना सिद्धांत द्वारा परीक्षित, अनुच्छेद 31 ए संवैधानिक है। हम पहले ही बता चुके हैं कि गुण-दोष के आधार पर

तर्क का कोई सार नहीं है और यहां तक कि मूल संरचना सिद्धांत के अनुप्रयोग पर भी। अनुच्छेद 31 ए को अमान्य नहीं माना जा सकता है। लेकिन किसी भी स्थिति में, मुझे नहीं लगता कि अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता के सवाल को फिर से खोलना उचित होगा, जिसे पहले ही शंकर प्रसाद के मामले, सज्जन सिंह के मामले और गोलक नाथ के मामले में इस अदालत के फैसलों द्वारा तय और चुप करा दिया गया है। अब 28 वर्षों से अधिक समय से, जब से शंकर प्रसाद के मामले में निर्णय अनुच्छेद 31 ए को वैध माना गया है और इस दृष्टिकोण पर, कृषि सुधार से संबंधित कई राज्यों के कानूनों को वैध माना गया है और

खन्ना, जे. ने केशवानंद भारती के मामले में बताया कि "लाखों एकड़ भूमि हाथ बदल गई है और कृषि भूमि में लाखों नए खिताब बनाए गए हैं"। यदि वैधता का प्रश्न

अनुच्छेद 31 ए को फिर से खोल दिया गया और इसकी वैधता को बनाए रखने वाले पहले के फैसलों पर बुनियादी संरचना सिद्धांत के आलोक में पुनर्विचार किया गया, ये विभिन्न कृषि सुधार कानून जो कृषि क्षेत्र में लगभग सामाजिक-आर्थिक क्रांति लाए हैं, वे उजागर हो सकते हैं।

खतरे में डालने के लिए और जो शून्य पर सेट करके घड़ी को पीछे कर सकता है कृषि संबंधों में लाए गए सभी परिवर्तन

इन वर्षों के दौरान और लाखों लोगों के जीवन में अराजकता पैदा करें

जिन्हें इन कानूनों से लाभ हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह

न्यायालय के पास अपने पहले के फैसलों की समीक्षा करने या उनसे अलग होने की भी शक्ति है।

उन्हें और टकटकी निर्णय के सिद्धांत की अनुमति नहीं दी जा सकती है के नुकसान के लिए इस न्यायालय के गलत निर्णयों को कायम रखना

जनता का सामान्य कल्याण। वास्तव में एक विचारधारा है

जो कार्डोजो के साथ विश्वास करता है कि "पूर्ववर्ती बदल गए हैं

हम और वे घेर रहे हैं और हमें नष्ट कर रहे हैं, घेर रहे हैं और अपने मंदिर में पूजा करने वाले भक्तों का विनाश करना "और

कि न्यायालय को अनावश्यक रूप से परेशान नहीं किया जाना चाहिए यदि उसे तोड़ना पड़े

पुराने नियमों को संशोधित करने के लिए और यदि आवश्यक हो तो पूर्ववर्ती से दूर रहें

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड पर डाली गई चुनौतियों और समस्याओं का सामना करने के लिए नए लोगों को तैयार करना।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

293 .

एक गतिशील समाज द्वारा। लेकिन एक ही समय में, यह वहन किया जाना चाहिए

ध्यान रखें कि निश्चितता और निरंतरता शासन के आवश्यक तत्व हैं।

नष्ट हो जाता है और एक गंभीर झटका लगता है-अगर देश का सर्वोच्च न्यायालय पहले के निर्णयों में इसके द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण को आसानी से खारिज कर दिया गया था।

भले ही यह दृष्टिकोण कई वर्षों से इस क्षेत्र में बना हुआ है। यह स्पष्ट है कि जब संवैधानिक समस्याओं को सामने लाया जाता है

इस न्यायालय के निर्णय के कारण जटिल और कठिन प्रश्न बाध्य हैं।

उत्पन्न होना और चूंकि ऐसे कई प्रश्नों पर निर्णय निर्भर कर सकता है

प्रतिस्पर्धी मूल्यों के बीच चयन पर, मूल्य निर्णय या किए गए मूल्यों के चयन के आधार पर दो विचार संभव हो सकते हैं।

व्यक्तिगत न्यायाधीश द्वारा। इसलिए, यदि एक दृष्टिकोण द्वारा लिया गया है

न्यायालय ने परिपक्व विचार-विमर्श के बाद, यह तथ्य कि एक अन्य पीठ है

एक अन्य दृष्टिकोण लेने के लिए इच्छुक न्यायालय में उचित नहीं होगा

पहले के निर्णय पर पुनर्विचार करना और उसे रद्द करना। कानून बनाया गया

इस न्यायालय द्वारा देश के सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी है और देश भर में कई मामलों का निर्णय इसके अनुसार किया जाता है -

इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण। बहुत से लोग अपने मामलों की व्यवस्था करते हैं और

बड़ी संख्या में लेन-देन भी विश्वास पर होते हैं

इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की शुद्धता। यह अशांति पैदा करेगा।

अस्थिर, अस्थिरता और भ्रम यदि इस न्यायालय द्वारा प्रस्तावित कानून जिस विश्वास के कई मामलों का फैसला किया गया है और कई बार

कई वर्षों के बाद किए गए प्रतिबंधों को सही कानून नहीं माना जाता है। टकटकी निर्णय का सिद्धांत सिद्धांत से विकसित हुआ है

" स्टेयर डिसिसिस एट नॉन क्विटा मूवर "जिसका अर्थ है" निर्णय का पालन करें "

और उन चीजों को परेशान न करें जो स्थापित हैं ", और यह एक उपयोगी बात है

सिद्धांत का उद्देश्य कानून में निश्चितता और एकरूपता लाना है।

लेकिन जब मैं यह कहता हूं, तो मैं यह स्पष्ट कर दूं कि मैं टकटकी के निर्णय के सिद्धांत को एक कठोर और अपरिहार्य सिद्धांत के रूप में नहीं मानता, जो आवश्यक है।

न्याय की कीमत पर लागू किया जाए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ इसकी भयावह कठोरता के सिद्धांत से छुटकारा पाने के लिए आवश्यक हो सकता है। टकटकी लगाएँ।

"जैसा कि ब्रांडेस द्वारा इंगित किया गया है" निर्णय हमेशा एक इच्छा होती है, यहाँ तक कि

इन संवैधानिक मामलों में, लेकिन उनमें, यह कभी भी एक आदेश नहीं है। न्यायालय एक उपयुक्त मामले में पिछले निर्णय को रद्द कर सकता है।

इसके द्वारा लिया गया है, लेकिन यह केवल महत्वपूर्ण और सम्मोहक कारणों के लिए किया जाना चाहिए। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग उचित समय पर किया जाना चाहिए।

देखभाल और सावधानी और केवल जनता की भलाई के लिए, न कि [1981] 1 एस. सी. आर.

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

294 केवल इसलिए कि यह प्रतीत हो सकता है कि पिछला निर्णय कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था। यह केवल तभी होगा जब पहले के निर्णय को कायम रखना शरारत या असुविधा का परिणाम होगा या संविधान निर्माताओं द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम से राष्ट्र को भटकाने या शब्दों का उपयोग करने का प्रभाव होगा।

अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम में कृष्ण अय्यर, जे। यू. पी. और अन्य का राज्य। (1) "जहां इस देश और उसके लाखों लोगों के जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए महान क्षण का राष्ट्रीय संकट दांव पर है या राष्ट्र की मूल दिशा ही एक झटके के खतरे में है", तो न्यायालय अपने पहले के निर्णय पर पुनर्विचार करने और उससे अलग होने के लिए उचित होगा। यह बुनियादी बात है कि देश के संविधान को समय-समय पर न्यायिक समीक्षा द्वारा निरंतर अनिश्चितता में नहीं रखा जाना चाहिए, क्योंकि अन्यथा यह सभी को बारहमासी सस्पेंस से पंगु बना देगा।

महत्वपूर्ण मुद्दों पर विधायी और प्रशासनिक कार्रवाई। न्यायालय को राज्य की कार्रवाई के न्यायिक स्थिरीकरण में शामिल नहीं होना चाहिए और एक ऐसा दृष्टिकोण जिसे निर्णयों की एक श्रृंखला में लंबे समय से स्वीकार किया गया है और जिसके विश्वास पर लाखों लोगों ने कार्य किया है और बड़ी संख्या में लेनदेन किए गए हैं, को नहीं माना जाना चाहिए।

परेशान करती है। आइए हम संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति रॉबर्ट्स के शब्दों को न भूलें-वे शब्द जो समान रूप से लागू होते हैं

इस न्यायालय में निर्णय लेने की प्रक्रिया:

" मेरी चिंता का कारण यह है कि तत्काल निर्णय,

लगभग नौ साल पहले घोषित ओवररुलिंग, लाने की प्रवृत्ति रखता है

इस न्यायाधिकरण का उसी वर्ग में निर्णय जो प्रतिबंधित है

रेल रोड टिकट इस दिन के लिए अच्छा है और केवल ट्रेन करें। यह है।

मुझे खेद है कि संदेह और भ्रम से भरे युग में, एक युग

जिसकी सबसे बड़ी आवश्यकता विचार और उद्देश्य की दृढ़ता है, यह

न्यायालय जिसे निरंतरता प्रदर्शित करने के रूप में देखा गया है

न्यायनिर्णयन, और एक स्थिरता जो संतुलन बनाए रखेगी यहां तक कि अस्थायी गिरावट और राय के प्रवाह के बावजूद, चाहिए

अब स्वयं नए संदेह और भ्रम का संवर्धक बन जाता है बाहर के संस्थानों की स्थिरता के बारे में जनता का मन।

यहाँ यह विचार कि अनुच्छेद 31 ए संवैधानिक रूप से मान्य है, इस न्यायालय के कम से कम तीन निर्णयों में लिया गया है, अर्थात्, शंकरी प्रसाद का निर्णय।

मामला, सज्जन सिंह का मामला और गोलक नाथ का मामला और यह 28 वर्षों से अधिक समय से मैदान में है और इसकी शुद्धता के विश्वास पर, लाखों एकड़ कृषि भूमि हाथ बदल गई है और नए कृषि संबंध अस्तित्व में आए हैं, जिससे पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था बदल गई है। भले ही इन निर्णयों में मूल संरचना सिद्धांत के संदर्भ में अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता का परीक्षण नहीं किया गया था, लेकिन मुझे नहीं लगता कि न्यायालय पहले के निर्णयों को लागू करने की अनुमति देने में उचित होगा।

(1) [1980] 3 एस. सी. आर 1159

पुनर्विचार किया गया और अनुच्छेद 31 ए की संवैधानिक वैधता का सवाल फिर से खोला गया। इन फैसलों ने अनुच्छेद 31 ए की वैधता के खिलाफ संवैधानिक चुनौती को शांत कर दिया है और इस शांति को अब बाधित नहीं होने दिया जाना चाहिए। मैं यह इंगित कर सकता हूं कि यह दृष्टिकोण जो मैं ले रहा हूं वह अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम में इस न्यायालय के निर्णय से समर्थित है। यू. पी. और अन्य राज्य। (ऊपर)।

अब मैं इसके खिलाफ संवैधानिक चुनौती पर विचार कर सकता हूं।

9 वीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 31 बी की वैधता। इस अनुच्छेद को संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा अनुच्छेद 31 ए के साथ संविधान में पेश किया गया था। मूल रूप से प्रस्तुत अनुच्छेद 31 ए केवल किसी संपत्ति के अधिग्रहण या किसी संपत्ति में किसी भी अधिकार के उन्मूलन या संशोधन के लिए कानून तक ही सीमित था और इसने ऐसे कानून को अनुच्छेद 14,19 और 31 के तहत हमले से बचाया। अब एक बार इस श्रेणी में आने वाले कानून को कला द्वारा संरक्षित किया गया था। 31 ए, इसी तरह के विधान के संबंध में एक और बचत प्रावधान लागू करना आवश्यक नहीं था। लेकिन, संभवतः, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संवैधानिक कानून अभी भी विकास के चरण में था और यह स्पष्ट नहीं था कि क्या एक कानून, जो लागू होने पर अमान्य था, को फिर से लागू किए बिना पुनर्जीवित किया जा सकता है। संसद ने सोचा कि अनुच्छेद 31 ए, भले ही पूर्वव्यापी रूप से अधिनियमित किया गया हो। एक ऐसे विधान की वैधता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है जिसे पहले से ही न्यायालयों द्वारा अमान्य घोषित किया गया था जैसा कि कामेश्वर सिंह के मामले (1) में किया गया था, और इसलिए इस तरह के विधान को निरस्त करने वाले निर्णयों को विशेष रूप से पारित करने के लिए अनुच्छेद 31 बी में एक और प्रावधान रखना उचित समझा जाता है। ऐसा लगता है कि यही कारण है

अनुच्छेद 31 बी अधिनियमित किया गया था और अनुच्छेद 31 ए के अंतर्गत आने वाले कानूनों को 9 वीं अनुसूची में शामिल किया गया था। अनुच्छेद 31 बी की कल्पना अनुच्छेद 31 ए के साथ उसी डिजाइन के हिस्से के रूप में की गई थी जिसे किसी संपत्ति के अधिग्रहण या किसी संपत्ति में किसी भी अधिकार को समाप्त करने या संशोधित करने के प्रावधान वाले कानून को सुरक्षा देने के लिए अपनाया गया था। अनुच्छेद 31 बी की 9 वीं अनुसूची का उद्देश्य अनुच्छेद 31 ए के दायरे में आने वाले कानूनों के अलावा अन्य कानूनों को शामिल करना नहीं था। इस पर चर्चा के दौरान कानून मंत्री और प्रधानमंत्री के भाषणों से यह स्पष्ट हो जाता है

संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951। डॉ. अम्बेडकर ने 9 वीं अनुसूची में स्वीकार किया कि प्रथम दृष्टया "यह एक असामान्य प्रक्रिया है" लेकिन उन्होंने आगे कहा कि "सभी कानून जो इससे बच गए हैं।

अनुसूचियाँ वे कानून हैं जो अनुच्छेद 31 के अंतर्गत आते हैं। जवाहरलाल नेहरू

संसद को यह भी बताया: " यह किसी भी बड़ी संतुष्टि के साथ नहीं है या

खुशी है कि हमने यह लंबी अनुसूची तैयार की है। हम नहीं चाहते हैं।

इसे दो कारणों से जोड़ें। एक यह है कि अनुसूची में एक विशेष प्रकार का विधान, आम तौर पर, और एक अन्य प्रकार

अंदर नहीं आना चाहिए। (जोर दिया गया)। अनुच्छेद 31 क आ

(1) [1952] एससीआर 889।

है।

[1981] 1 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

296 31 इस प्रकार बी का उद्देश्य एक निश्चित श्रेणी के भीतर आने वाले कानून की रक्षा करने के समान उद्देश्य को पूरा करना था। यह एक दोहरी सुरक्षा थी जिसका उद्देश्य इस श्रेणी के कानून को प्रदान करना था, क्योंकि इसे कृषि सुधार करने के लिए बनाया गया था जो देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में क्रांति लाने के लिए बहुत आवश्यक था। इसके बाद संविधान बनाया गया

(चौथा संशोधन) अधिनियम, 1956 जिसके द्वारा अनुच्छेद 31 ए द्वारा कवर किए गए विधान की श्रेणियों को खंड (ए) के बाद कुछ नए खंड जोड़कर विस्तारित करने की मांग की गई थी। मूल रूप से, इन

खंडों के अलावा मसौदा विधेयक में एक और खंड था, जिसका नाम खंड (डी) था, जिसमें अधिग्रहण या अधिग्रहण के लिए प्रावधान करने वाले कानून को संरक्षण देने की मांग की गई थी।

विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए किसी भी अचल संपत्ति का अधिग्रहण और प्रस्तावित अनुच्छेद संशोधन के परिणामस्वरूप। 31 ए, विधेयक के खंड (5) में 9 वीं अनुसूची में दो और राज्य अधिनियमों और चार केंद्रीय अधिनियमों को जोड़ने का प्रस्ताव किया गया था जो संशोधित अनुच्छेद 31 ए के खंड (डी) और (एफ) के दायरे में आते थे। वीडियो सी. एल. (4) उद्देश्यों और कारणों के विवरण-जिन दो राज्य अधिनियमों को 9 वीं अनुसूची में शामिल करने का प्रस्ताव किया गया था, वे थे बिहार विस्थापित व्यक्ति पुनर्वास (भूमि अधिग्रहण) अधिनियम, 1950 और संयुक्त प्रांत भूमि अधिग्रहण (शरणार्थियों का पुनर्वास) अधिनियम, 1948। पश्चिम बंगाल भूमि विकास और योजना अधिनियम, 1948, जिसे इस न्यायालय ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम में निरस्त कर दिया था। बेला बनर्जी (1), और जिसकी अयोग्यता ने वास्तव में संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम की पूरी कवायद शुरू कर दी। 1955 , हालाँकि, मसौदा विधेयक में 9 वीं अनुसूची से बाहर रखा गया था क्योंकि इसमें अधिग्रहण के कुछ उद्देश्य शामिल थे जो बाहर थे।

अनुच्छेद 31 क प्रस्तावित खंड (घ)। लेकिन, जब संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम, 1955 पर बहस चल रही थी, तब पश्चिम बंगाल के राज्यपाल ने पूर्वव्यापी के साथ एक अध्यादेश जारी किया था।

पश्चिम बंगाल राज्य में प्रवास करने वाले विस्थापित व्यक्तियों के निपटारे को छोड़कर "सार्वजनिक उद्देश्य" की परिभाषा में सभी मदों को प्रभावी बनाता है, जिसके परिणामस्वरूप अध्यादेश द्वारा संशोधित पश्चिम बंगाल अधिनियम प्रस्तावित खंड (डी) में निर्दिष्ट विधान की श्रेणी के भीतर आता है। 31 ए. इस संशोधन को ध्यान में रखते हुए, पश्चिम बंगाल अधिनियम को 9 वीं अनुसूची में शामिल किया गया था

मसौदा विधेयक का संशोधन। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि समान उड़ीसा संविधि जिसमें अनुच्छेद 31 ए के प्रस्तावित खंड (डी) से परे जाने के उद्देश्यों के लिए भूमि अधिग्रहण का प्रावधान किया गया था और जो था

पश्चिम बंगाल अधिनियम की तरह संशोधित नहीं किया गया था, 9 वीं अनुसूची में शामिल नहीं किया गया था। एक केंद्रीय अधिनियम, अर्थात् विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्वास (भूमि अधिग्रहण) अधिनियम, 1948 के अंतर्गत आता है - कला का प्रस्तावित खंड (घ)। 31 ए और इसलिए इसे शामिल किया गया था

(1) [1954] एस. सी. आर 550

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

9 विधेयक के प्रारूप में छठी अनुसूची। इस प्रकार मसौदा विधेयक में अनुच्छेद 31 ए और 31 बी के बीच संबंध बनाए रखा गया था, लेकिन जब मसौदा विधेयक संयुक्त समिति के समक्ष गया, तो अनुच्छेद 31 ए के प्रस्तावित खंड (डी) को हटा दिया गया और बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल अधिनियमों के साथ-साथ उपर्युक्त केंद्रीय अधिनियम जो मूल रूप से अनुच्छेद 31 ए के दायरे और दायरे में होने का इरादा रखते थे, उस अनुच्छेद से असंबंधित हो गए। फिर भी, इन चार अधिनियमों को छोड़कर, 9 वीं अनुसूची में शामिल अन्य सभी क़ानून संशोधित कला के एक या दूसरे खंड के भीतर आते हैं। 31 ए. इस संशोधन के बाद, कृषि सुधार से संबंधित कई अन्य कानूनों को संविधान (सत्रहवीं) द्वारा 9 वीं अनुसूची में शामिल किया गया था।

उसी संशोधनकारी अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित "संपदा" की विस्तारित परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 31 ए। संविधान की वैधता (सत्रहवाँ संशोधन) अधिनियम, 1964 को गोलक नाथ के मामले (ऊपर) में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और हालांकि पांच के खिलाफ छह के बहुमत से न्यायालय ने यह विचार रखा कि संसद को किसी भी मौलिक अधिकार में संशोधन करने की कोई शक्ति नहीं है, लेकिन न्यायाधीश ने कहा कि यह निर्णय संविधान (सत्रहवाँ संशोधन) अधिनियम, 1964 और संविधान में पहले किए गए अन्य संशोधनों की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा और इस प्रकार

उस तारीख को। इसके बाद संविधान (उनतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1972 आया जिसके द्वारा केरल के दो कृषि सुधार कानूनों को शामिल किया गया। 9 वीं अनुसूची में। केशवानंद भारती के मामले में उनतीसवें संशोधन अधिनियम की वैधता को चुनौती दी गई थी, लेकिन बहुमत से

खन्ना, जे. और रे, सी. जे. के नेतृत्व में छह विद्वान न्यायाधीशों से मिलकर, इसे वैध माना गया था। चूंकि पहले के सभी संवैधानिक संशोधन

की असीमित संशोधन शक्ति के आधार पर वैध ठहराया गया था

शंकर प्रसाद और सज्जन सिंह के मामले में संसद ने मान्यता दी मामला और गोलक नाथ के मामले में वैध के रूप में स्वीकार किया गया और बीस

नौवें संशोधन अधिनियम को केशवानंद भारती के अधिनियम में भी वैध माना गया था।

मामला, हालांकि बुनियादी संरचना परीक्षण के अनुप्रयोग पर नहीं, और ये

संवैधानिक संशोधनों को कई मामलों में वैध माना गया है।

वर्षों और इसके अलावा, उनके द्वारा संरक्षित किए जाने का इरादा रखने वाले क़ानून

केवल संभावित अपवाद के साथ सभी अनुच्छेद 31 ए के अंतर्गत आते हैं

ऊपर उल्लिखित चार अधिनियम, मुझे नहीं लगता कि हम न्यायसंगत होंगे

इन संवैधानिक संशोधनों की वैधता के सवाल को फिर से खोलना।

और इसलिए हम उन्हें वैध मानते हैं। लेकिन, सभी संवैधानिक संशोधन

केशवानंद भारती के मामले में निर्णय के बाद किया गया होगा

संसद के लिए मूल संरचना सिद्धांत के संदर्भ में परीक्षण किया जाना

तब यह कहने का कोई बहाना नहीं होगा कि वह सीमा [1981] 1 एस. सी. आर. को नहीं जानता था।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

298

अपनी संशोधन शक्ति पर। यह इंगित किया जा सकता है कि 9वीं अनुसूची में काफी बड़ी संख्या में कानूनों को शामिल किया गया है:

बाद के संवैधानिक संशोधन और आश्चर्यजनक रूप से, हम पाते हैं

पहली बार उन कानूनों को शामिल किया गया है जिनमें कोई नहीं है:

अनुच्छेद 31ए या 31सी और अनुच्छेद 31बी के इस उपकरण के साथ बिल्कुल भी संबंध जिसे मूल रूप से केवल अधिक निश्चित देने के साधन के रूप में अपनाया गया था

और अनुच्छेद 31ए के तहत पहले से ही संरक्षित कानून के लिए सुनिश्चित सुरक्षा का उपयोग पूरी तरह से अलग उद्देश्य के लिए किया गया है

उन सभी प्रकार के कानूनों के लिए मौलिक अधिकारों की प्रयोज्यता को छोड़कर जिनका कृषि सुधार या निदेशक सिद्धांतों से कोई लेना-देना नहीं है। बल्कि यह एक परेशान करने वाली घटना है। अब उन कानूनों में से जो बाद के संवैधानिक संशोधनों द्वारा 9वीं अनुसूची में शामिल किए गए हैं या भविष्य में शामिल किए जा सकते हैं। यदि कोई ऐसा है जो अनुच्छेद 31ए या 31सी द्वारा कवर की गई श्रेणी में आता है, तो उन्हें अनुच्छेद 14 और 19 के तहत चुनौती से संरक्षित किया जाएगा और यह विचार करना आवश्यक नहीं होगा कि क्या 9वीं अनुसूची में उनका समावेश संवैधानिक रूप से मान्य है, सिवाय उन दुर्लभ मामलों के जहां किसी अन्य मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ उनके लिए संरक्षण का दावा किया जा सकता है। यह प्रश्न मुख्य रूप से केवल उन कानूनों के संबंध में उत्पन्न होगा जो अनुच्छेद 31ए या 31सी के दायरे में नहीं आते हैं और ऐसे कानूनों के मामले में, न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या 9वीं अनुसूची में ऐसे कानूनों सहित संवैधानिक संशोधन उन्हें मौलिक अधिकारों की चुनौती से प्रतिरक्षा देने में संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन करते हैं। यह संभव है कि किसी दिए गए मामले में, मौलिक अधिकार के संक्षिप्तकरण में भी उल्लंघन शामिल हो सकता है

बुनियादी संरचना। यह सब मौलिक अधिकार की प्रकृति, उल्लंघन की सीमा और गहराई, जिस उद्देश्य के लिए उल्लंघन किया जाता है और संविधान के मूल मूल्यों पर इसके प्रभाव पर निर्भर करेगा। उदाहरण

के लिए, अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को लें। यह अन्य मौलिक अधिकारों से बिल्कुल अलग है। मैं कोई निश्चित राय व्यक्त नहीं करना चाहता, लेकिन मैं यह बता सकता हूं कि यदि किसी भी कानून द्वारा इस मौलिक अधिकार का उल्लंघन किया जाता है। एक संवैधानिक संशोधन को बनाए रखना मुश्किल हो सकता है जो इस तरह के कानून को अनुच्छेद के तहत चुनौती से बचाने का प्रयास करता है। 21. अतः यह भी कि जहां कोई विधान जिसका कृषि सुधार या किसी निदेशक सिद्धांत से कोई लेना-देना नहीं है, अनुच्छेद 14 में निहित समानता खंड का उल्लंघन करता है और ऐसे विधान को 9वीं अनुसूची में शामिल करके संवैधानिक संशोधन द्वारा संरक्षित करने की मांग की जाती है, तो यह तर्क देना संभव हो सकता है कि ऐसा संवैधानिक संशोधन समतावादी सिद्धांत का उल्लंघन है जो मूल संरचना का हिस्सा है। लेकिन ये केवल उदाहरण हैं जो मैं चित्रण के माध्यम से दे रहा हूं, अन्य स्थितियों के लिए जहां उल्लंघन माइनरवा मिल्स लिमिटेड उत्पन्न हो सकता है।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

299

एक कानून द्वारा एक मौलिक अधिकार का, यदि संवैधानिक रूप से होने की मांग की जाती है

संरक्षित, संविधान की मूल संरचना को प्रभावित कर सकता है। हर एक में इसलिए, जहां एक संवैधानिक संशोधन में एक क़ानून शामिल है या

9वीं अनुसूची की विधियों, इसकी संवैधानिक वैधता पर मूल संरचना सिद्धांत के संदर्भ में विचार करना होगा और इस तरह के

संवैधानिक संशोधन को उस हद तक अमान्य घोषित किया जा सकता है जिस हद तक यह किसी विशेष मौलिक अधिकार के उल्लंघन के खिलाफ संरक्षण के अनुसार संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुंचाता है या नष्ट करता है।

अब मैं संविधान के खिलाफ चुनौती पर विचार करने के लिए मुड़ूंगा।

अपरिवर्तित कला की राष्ट्रीय वैधता। 31 सी. यह अनुच्छेद संविधान में संविधान (पच्चीसवां संशोधन) द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

इसलिए यह संविधान की मूल संरचना के लिए विनाशकारी था। मैं वर्तमान में गुण-दोष के आधार पर इस तर्क की जांच करूँगा और यह दर्शाता हूँ कि यह अस्थिर है, लेकिन ऐसा करने से पहले, मैं शुरू में ही यह इंगित कर सकता हूँ कि इस तर्क के गुण-दोषों पर चर्चा शुरू करना पूरी तरह से अनावश्यक है, क्योंकि असंशोधित अनुच्छेद, 31 सी के पहले भाग को केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय द्वारा संवैधानिक रूप से मान्य माना गया था और यह निर्णय बाध्यकारी होने के कारण, श्री फड़के के लिए इस प्रश्न को फिर से पूछना खुला नहीं है। केशव में पीठ पर बैठने वाले तेरह न्यायाधीशों में से

नंद भारती के मामले में, राय, जे., जैसा कि वे तब थे, पालेकर, जे., द्विवेदी, जे., खन्ना, जे., मैथ्यू, जे., बेग, जे., और चंद्रचूड़, जे., (जैसा कि वे तब थे) ने यह विचार रखा कि असंशोधित कला का पहला भाग है। 31 सी कोन था

संवैधानिक रूप से वैध है, क्योंकि संसद की संशोधन करने की शक्ति पूर्ण और असीमित थी। खन्ना, जे. ने इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया कि संसद को संविधान में संशोधन करने का पूर्ण और असीमित अधिकार है और उनका विचार था कि संसद को प्रदान की गई संशोधन की शक्ति एक सीमित शक्ति थी जो संसद को संविधान को समाप्त करने से रोकती थी ताकि संविधान की मूल संरचना को बदला जा सके, लेकिन इस सीमित शक्ति के आधार पर भी उन्होंने असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा। इस प्रकार सात थे

20-646 एस. सी. इंडिया/80

} [1981]

1 एस सी आर।

300

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

तेरह न्यायाधीशों में से जिन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रथम भाग में संशोधन नहीं किया गया है। कला. 31 सी संवैधानिक रूप से वैध था, हालांकि कारण जो प्रबल हैं

खन्ना, जे. के साथ इस दृष्टिकोण को लेने के लिए उन लोगों से अलग थे जो

अन्य छह विद्वान न्यायाधीशों के साथ विजय प्राप्त की। इस संबंध में मुद्दा

असंशोधित कला के पहले भाग की संवैधानिक वैधता। 31 सी.

जो सीधे न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उत्पन्न हुआ था

ली ने सरकार और उसके द्वारा निर्धारित कानून के पक्ष में जवाब दिया

बहुमत का निर्णय यह था कि असंशोधित कला का पहला भाग।

31 सी संवैधानिक और वैध था और कानून की यह घोषणा अनिवार्य है।

वर्तमान रिट याचिकाओं में न्यायालय पर बाध्यकारी माना जाएगा। श्री.

हालांकि, फड़के ने इस प्रस्ताव की शुद्धता पर विवाद किया और

तर्क दिया कि अदालत पर जो बाध्यकारी था वह केवल अनुपात था

केशवानंद भारती के मामले का निर्णय, न कि निष्कर्ष का

कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग वैध था। श्री फड़के के अनुसार, केशयानंद भारती के मामले का अनुपात निर्णय, यह था कि संसद की संशोधनकारी शक्ति सीमित है और यह कर सकती है

संविधान की मूल संरचना को बदलने के लिए प्रयोग नहीं किया जाएगा

और यह अनुपात निर्णय था जो हम पर बाध्यकारी था और जिसे हमें यह निर्धारित करने के उद्देश्य से लागू करना चाहिए कि क्या असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग संवैधानिक रूप से मान्य था। श्री फड़के ने स्वीकार किया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायमूर्ति रे (जैसा कि वे उस समय थे) की अध्यक्षता वाले छह विद्वान न्यायाधीशों ने असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग को संवैधानिक रूप से वैध माना, लेकिन यह इस आधार पर था कि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की पूर्ण और अप्रतिबंधित शक्ति थी, जो बहुमत के निर्णय के अनुसार गलत था। श्री फडके ने तर्क दिया कि यह कहना असंभव था कि राय, जे. (जैसा कि वे तब थे) की अध्यक्षता में छह विद्वान न्यायाधीशों का निर्णय क्या होता यदि उन्होंने सही परीक्षण को लागू किया होता और संशोधन की सीमित शक्ति के मानदंड के संदर्भ में अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की संवैधानिक वैधता की जांच की होती, और गलत परीक्षण को लागू करके अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को बनाए रखने वाले उनके निष्कर्ष को वर्तमान रिट याचिकाओं में न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता था। श्री का यह तर्क।

मेरी राय में फड़के अच्छी तरह से स्थापित नहीं है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मैं श्री फड़के से सहमत हूं कि केशवानंद भारती के मामले का अनुपात निर्णय यह था कि संसद की संशोधन करने की शक्ति सीमित है और संसद संशोधन की शक्ति का प्रयोग करके संविधान के मूल ढांचे में बदलाव नहीं कर सकती है और इसलिए प्रत्येक संविधानात्मक राष्ट्रीय संशोधन की वैधता का निर्णय इस परीक्षण को लागू करके किया जाना चाहिए जहां यह संविधान के मूल ढांचे को बदलता है या नहीं और यह परीक्षण राय, जे. (उनके रूप में) की अध्यक्षता वाले छह विद्वान न्यायाधीशों द्वारा लागू नहीं किया गया था।

तब था), लेकिन वहाँ मेरा समझौता समाप्त हो जाता है और। मैं श्री फड़के के आगे के तर्क को स्वीकार नहीं कर सकता कि इस कारण से, छह विद्वान न्यायाधीशों और न्यायमूर्ति खन्ना द्वारा संविधान के संबंध में जो निष्कर्ष निकाला गया है-संशोधन न किए गए अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता की कोई वैधता नहीं है।

केशवानंद भारती के मामले में अदालत के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या

असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग संवैधानिक रूप से वैध था और इस मुद्दे का जवाब सरकार के पक्ष में छह के खिलाफ सात के बहुमत से दिया गया था। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि जिन न्यायाधीशों ने असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग की वैधता को बरकरार रखा, उनमें से प्रत्येक के लिए क्या कारण थे। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के कारणों का निश्चित रूप से निर्णय पर असर पड़ेगा।

मामले के अनुपात निर्णय और अनुपात निर्णय का खनन निश्चित रूप से भविष्य के मामलों के निर्णय के लिए महत्वपूर्ण होगा जहां कुछ अन्य संवैधानिक संशोधन की वैधता को चुनौती दी जा सकती है, लेकिन जहां तक मामले के पहले भाग की वैधता का सवाल है।

अपरिवर्तित अनुच्छेद 31 सी का संबंध है, यह कई शब्दों में केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय से निर्धारित किया गया था और यह निर्णय हम पर बाध्यकारी होना चाहिए। इसलिए श्री फड़के को इस प्रश्न को फिर से खोलने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और मुझे असंशोधित कला की संवैधानिक वैधता के खिलाफ चुनौती को स्वीकार करने से इनकार करना चाहिए। 31 सी श्री फड़के द्वारा पसंद किया गया।

लेकिन भले ही यह श्री फड़के के लिए निर्णय पर विवाद करने के लिए खुला था

यह मत सोचिए कि चुनौती सफल हो सकती है। असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग केवल अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों को कम करने के लिए है, जिसमें निर्दिष्ट सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में नीति को प्रभावी बनाने वाले विधान के लिए उनकी प्रयोज्यता को हटा दिया गया है। अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में। असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग मूल रूप से अनुच्छेद 31 ए के समान ही है, केवल इस अंतर के साथ कि जहां अनुच्छेद 31 ए कुछ विषयों से संबंधित कानूनों की रक्षा करता है, वहीं असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग इस प्रकार है -

कुछ उद्देश्यों वाले कानून। जहाँ तक अनुच्छेद 14 और 19 के अपवर्जन का संबंध है, अनुच्छेद 31 ए और असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग में कोई गुणात्मक अंतर नहीं है। यह तथ्य कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग के प्रावधान अधिक व्यापक हैं और अनुच्छेद 31 ए की तुलना में अधिक व्यापक हैं, सैद्धांतिक रूप से कोई अंतर नहीं लाता है। यदि अनुच्छेद 31 ए संवैधानिक रूप से वैध है, तो यह देखना वास्तव में मुश्किल है कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी के पहले भाग को कैसे असंवैधानिक माना जा सकता है। यह इंगित किया जा सकता है कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग वास्तव में अधिक सुरक्षित आधार पर खड़ा है क्योंकि यह अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित विधान के अनुच्छेद 14 और 19 के उल्लंघन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

302

[1981] 1

एस सी आर।

इस तरह के कानून को लागू करने में विधायिका संवैधानिक पर कार्य करती है

अनुच्छेद 37 में निहित अधिदेश जिसके अनुसार निर्देश

देश के शासन में सिद्धांत मौलिक हैं और यह कर्तव्य है

उन सिद्धांतों को कानून बनाने में लागू करने के लिए राज्य। यह इसके लिए है

स्पष्ट रूप से निर्धारित निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने का उद्देश्य

((ख) और (ग) कला। 39 निर्धारित संवैधानिक दायित्व के निर्वहन में अनुच्छेद 37 के तहत राज्य पर कि अनुच्छेदों में मौलिक अधिकार

14 और 19 को संक्षिप्त करने की अनुमति है और मैं यह देखने में विफल हूँ कि कैसे एक स्थिरांक

इस तरह के प्रावधान करने वाले न्यायिक संशोधन की निंदा की जा सकती है संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन। इसलिए भी

पहला सिद्धांत, मैं यह मानने के लिए इच्छुक रहूंगा कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी का पहला भाग संवैधानिक रूप से मान्य है।

यह हमें कॉन के खिलाफ चुनौती के अगले आधार पर ले जाता है।

संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1956 की संवैधानिक वैधता जहां तक इसमें 9 वीं अनुसूची और संविधान (42 वीं अनुसूची) में 1975 के 21,1975 के 47 और 1976 के 2 संशोधन अधिनियम शामिल हैं।

संशोधन) अधिनियम, 1976 जहाँ तक यह सी. एल. एस. लागू करता है। (4) और (5) में

कला. 368. याचिकाकर्ताओं ने चुनौती के इस शीर्ष के तहत तर्क दिया कि संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा पारित किया गया था

2 अप्रैल, 1976 को लोकसभा और संविधान (42)

संशोधन) अधिनियम, 1976 नवंबर, 1976 में किसी समय, लेकिन इन पर

तारीखें लोकसभा वैध रूप से अस्तित्व में नहीं थी क्योंकि यह स्वचालित थी

कैली का विघटन 18 मार्च, 1976 को 5 मार्च के कार्यकाल की समाप्ति पर किया गया था।

वर्षों से। इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोक सभा (का विस्तार)

अवधि) अधिनियम, 1976 संसद द्वारा प्रावधान के तहत अधिनियमित किया गया था

कला. 83 (2) लोकसभा की अवधि का विस्तार

एक वर्ष, लेकिन याचिकाकर्ताओं का तर्क था कि यह अधिनियम था

अति अधिकार और शून्य, क्योंकि लोकसभा की अवधि हो सकती है

कला के प्रावधान के तहत विस्तारित। 83 (2) केवल संचालन के दौरान आपातकाल की घोषणा और, पेटी प्रस्तुत करने में

टियोनर्स, वहाँ ऑपरेशन में आपातकाल की कोई घोषणा नहीं थी

वह समय जब लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976

पारित किया गया। यह तुरंत स्वीकार किया जा सकता है कि, कड़ाई से बोलते हुए,

इस तर्क पर विचार करना अनावश्यक और अनावश्यक है क्योंकि,

भले ही संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 असंवैधानिक हो

न्यायिक और शून्य और 1975 के संशोधन अधिनियम 21,1975 के 47 और

2 1976 को 9वीं अनुसूची में वैध रूप से शामिल नहीं किया गया है ताकि -

कला का संरक्षण अर्जित करें। 318 , वे अभी भी हैं जैसा कि पहले बताया गया है,

कला द्वारा अमान्य होने से बचाया गया। 31 ए और जहाँ तक संविधान का संबंध है

(बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 का संबंध है, मैं पहले ही कर चुका हूँ।

अभिनिर्धारित किया कि यह अब तक संसद की घटक शक्ति से बाहर है क्योंकि यह अनुच्छेद में खंड (4) और (5) को शामिल करना चाहता है। 368. लेकिन एल. ए. के बाद से

303

चुनौती के इस आधार को गंभीरता से उठाते हुए लंबे तर्क को संबोधित किया गया था, मुझे नहीं लगता कि मैं संक्षिप्त रूप से व्यवहार करने में अन्यायपूर्ण होगा

इसके साथ।

इसकी भाषा के एक सादे प्राकृतिक निर्माण पर यह स्पष्ट है कि

कला के प्रावधान के तहत। 83 (2) , लोकसभा की अवधि हो सकती है

केवल आपात घोषणा के संचालन के दौरान विस्तारित किया जाए

तत्काल प्रभाव और यदि, इसलिए, प्रासंगिक समय पर आपातकाल की कोई घोषणा लागू नहीं थी, तो लोक सभा (दुर का विस्तार)

राष्ट्र) अधिनियम, 1976 के तहत संसद की क्षमता से बाहर होगा

कला के लिए प्रावधान। 83 (2) . वह प्रश्न जो इस प्रकार होना आवश्यक है

यह माना जाता है कि क्या आपातकाल की घोषणा की गई थी

उस तारीख को संचालन जब लोक सभा (अवधि का विस्तार)

अधिनियम, 1976 लागू किया गया था। पर उपस्थित विद्वान सॉलिसिटर जनरल

भारत संघ की ओर से तर्क दिया गया कि एक नहीं बल्कि दो प्रोक्ला

आपात स्थिति के संकेत भौतिक तिथि पर काम कर रहे थे; एक राष्ट्रपति द्वारा 3 दिसंबर, 1971 को जारी की गई घोषणा और

25 जून, 1976 को जारी की गई अन्य घोषणा। प्रथम उद्घोषणा द्वारा

राष्ट्रपति, सी. एल. के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए। (1) में से

कला. 352 घोषणा की कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद था जिसके तहत सुरक्षा

भारत को बाहरी आक्रमण का खतरा था। यह घोषणा

संसद के दोनों सदनों के प्रस्तावों द्वारा अनुमोदित किया गया था 4 दिसंबर, 1971, जैसा कि सी. एल. के तहत विचार किया गया है। 2 ((ग) कला। 352 और

यह 21 मार्च, 1977 तक चालू रहा जब इसे रद्द कर दिया गया।

अनुच्छेद 2 (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा द्वारा।

352. आपातकाल की पहली घोषणा इस प्रकार लागू थी

वह तिथि जब लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976

संसद द्वारा लागू किया गया था। आपातकाल की दूसरी घोषणा

राष्ट्रपति द्वारा कला के तहत जारी किया गया था। 352 सी. एल. (1) और इस प्रोक्ला द्वारा

राष्ट्रपति ने घोषणा की कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिसके तहत

आंतरिक अशांति से भारत की सुरक्षा को खतरा था। यह

घोषणा भी अधिनियम के अधिनियमन की तारीख से लागू थी

लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976 क्योंकि यह नहीं था

21 मार्च, 1977 तक। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं का तर्क था कि, हालांकि आपातकाल की पहली घोषणा वैध रूप से जारी की गई थी

भारत के खिलाफ पाकिस्तान, उसके तुरंत बाद परिस्थितियाँ बदल गईं-और आपातकाल जिसने घोषणा के मुद्दे को उचित ठहराया, समाप्त हो गया

अस्तित्व में है और इसके परिणामस्वरूप घोषणा की निरंतरता दुर्भावनापूर्ण थी

निष्पक्ष और रंगीन और इसलिए घोषणा, हालांकि रद्द नहीं की गई 21 मार्च, 1972 तक, कानून लागू रहने के लिए बंद हो गया और हो सकता है

यह नहीं कहा जाता है कि वह सामग्री की तारीख, अर्थात् 16 तारीख को परिचालन में है।

फरवरी, 1976। जहाँ तक आपातकाल की दूसरी घोषणा है

संबंधित, याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि यह 4 पर अवैध और अमान्य था

तीन आधार, अर्थात्; (1) जब आपातकाल की पहली घोषणा लागू थी, यह अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति के लिए सक्षम नहीं था। 352 :

खंड (1) आपातकाल की एक और घोषणा जारी करने के लिए; (2) आपातकाल की दूसरी घोषणा राष्ट्रपति द्वारा सलाह पर जारी की गई थी

प्रधानमंत्री की और चूंकि यह सलाह प्रधानमंत्री द्वारा दी गई थी

भारत सरकार के अधीन सक्षम (व्यवसाय का लेन-देन) घोषणा जारी करने के प्रश्न से निपटने के लिए नियम, 1961

आपातकाल, आपातकाल की दूसरी घोषणा नहीं कहा जा सका

राष्ट्रपति द्वारा वैध रूप से जारी किया गया था; और (3) कोई नहीं था

आंतरिक अशांति के कारण भारत की सुरक्षा के लिए खतरा, जो

आपातकाल की घोषणा के मुद्दे को उचित ठहरा सकते हैं और दूसरा

घोषणा जारी की गई थी, द्वारा स्वीकृत वैध उद्देश्य के लिए नहीं कला का खंड (1)। 352 लेकिन प्रधान को कायम रखने की दृष्टि से

सत्ता में मंत्री और यह स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण और संपार्श्विक के लिए था

मुद्रा और इसलिए कला के तहत राष्ट्रपति की शक्ति के बाहर। 352 सी. एल.

(1) . याचिकाकर्ताओं को दोनों घोषणाओं की वैधता पर हमला करना पड़ा

आपातकाल, एक का जारी रहना और दूसरे को जारी करना, क्योंकि भले ही आपातकाल की एक घोषणा लागू थी

प्रासंगिक समय, यह संसद के साथ निवेश करने के लिए पर्याप्त होगा

लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976 को अधिनियमित करने की शक्ति।

जाहिर है, इसलिए, अगर आपातकाल की पहली घोषणा पाई गई थी

सदन के अधिनियमन की तारीख से संचालन जारी रखना लोक (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976, यह अनावश्यक होगा।

यह विचार करने के लिए कि क्या आपातकाल की दूसरी घोषणा वैध थी राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया। मैं तदनुसार पहले जाँच करने के लिए आगे बढ़ूँगा

क्या आपातकाल की पहली घोषणा जो वैध रूप से जारी की गई थी

राष्ट्रपति द्वारा कथित परिवर्तन के कारण लागू होना बंद कर दिया गया

परिस्थितियों में और प्रासंगिक समय पर सक्रिय नहीं था। यह केवल यदि इस प्रश्न का उत्तर याचिकाकर्ताओं के पक्ष में दिया जाता है तो यह

दूसरे की वैधता के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक हो जाता है आपातकाल की घोषणा।

मुझे लगता है कि दोहराव की कीमत पर भी जोर देना आवश्यक है:

कि यह याचिकाकर्ताओं का मामला नहीं था कि पहली घोषणा जारी किए जाने पर आपातकाल अमान्य था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है जो

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पाकिस्तान ने भारत के खिलाफ आक्रामकता की

आपातकाल की पहली घोषणा जारी करने में स्पष्ट रूप से उचित सी. एल. (1) कला की। 352. हालाँकि याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि सी. आई. आर.

आकस्मिकताएँ जो पहली आपात घोषणा के मुद्दे को सुनिश्चित करती हैं -

उदारता का अस्तित्व समाप्त हो गया और विभिन्न तथ्यों को सामने रखा जैसे कि शब्द

16 दिसंबर, 1971 को पाकिस्तान के साथ शत्रुता का राष्ट्र, हस्ताक्षर -

2 जून, 1972 को शिमला समझौते को लागू करना, डाक सेवा को फिर से शुरू करना और

4 नवंबर, 1974 को दूरसंचार संपर्क और 24 नवंबर, 1974 को भारत और पाकिस्तान के बीच व्यापार समझौते के समापन के साथ-साथ प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों द्वारा समय-समय पर दिए गए कई बयानों से यह पता चलता है कि बाहरी आक्रमण के कारण भारत की सुरक्षा के लिए खतरा 1975 से बहुत पहले समाप्त हो गया था और घोषणा को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं था और इसलिए घोषणा को जारी रखना दुर्भावनापूर्ण और सत्ता के रंगीन प्रयोग में था और इसे असंवैधानिक और शून्य घोषित किया जाना चाहिए था। मुझे नहीं लगता कि याचिकाकर्ताओं के इस तर्क को कला के पक्ष में दृष्टिकोण की उचित व्याख्या पर कायम रखा जा सकता है। 352. इस अनुच्छेद में मूल रूप से तीन खंड शामिल थे, लेकिन संविधान (अड़तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 की धारा 5 द्वारा, खंड (4) और (5) को इस अनुच्छेद में जोड़ा गया और उसके बाद, खंड द्वारा किए गए एक और संशोधन द्वारा। 48 संविधान का (चालीस)

दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1976, एक और खंड (2ए) सी. एल. के बाद पेश किया गया था। (2) . यह पूरा अनुच्छेद हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं है, लेकिन मैं केवल उसके भौतिक प्रावधानों को निर्धारित करूंगा जिनका पक्षों के बीच विवाद पर असर पड़ता है।

352 (1) : " यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हैं कि एक गंभीर आपातकाल है

इसके द्वारा भारत या क्षेत्र के किसी भी हिस्से की सुरक्षा मौजूद है।

इसका खतरा है, चाहे युद्ध या बाहरी आक्रामकता से या

आंतरिक गड़बड़ी, वह, घोषणा द्वारा, एक घोषणा कर सकता है उस प्रभाव के लिए (पूरे भारत के संबंध में या ऐसे

उसके क्षेत्र का हिस्सा जैसा कि उद्घोषणा में निर्दिष्ट किया जा सकता है

यह)।

(2) सी. एल. के तहत जारी एक घोषणा। (1) –

(ए) बाद के प्रो द्वारा रद्द (या विविध) किया जा सकता है

क्लैमेशन;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा;

(ग) दो महीने की समाप्ति पर काम करना बंद कर देगा।

जब तक कि उस अवधि की समाप्ति से पहले इसे मंजूरी नहीं दी गई हो

संसद के दोनों सदनों के प्रस्तावों द्वारा। (2ए)।

(3) आपातकाल की घोषणा यह घोषणा करते हुए कि भारत या उसके क्षेत्र के किसी भी हिस्से की सुरक्षा को खतरा है युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति द्वारा युद्ध की वास्तविक घटना से पहले या इस तरह के किसी भी हमले या अशांति से किया जा सकता है यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हैं कि 36

[1981] 1

एस सी आर।

इसका आसन्न खतरा।

(4) इस अनुच्छेद द्वारा राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्ति

विभिन्न विषयों पर विभिन्न घोषणाएँ जारी करने की शक्ति शामिल करें

युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति होने के कारण

या युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक का आसन्न खतरा

गड़बड़ी चाहे कोई घोषणा पहले ही जारी की जा चुकी हो या नहीं

सी. एल. के अधीन राष्ट्रपति द्वारा। (1) और ऐसी घोषणा में है

ऑपरेशन।

(5) इस संविधान में कुछ भी होने के बावजूद:

(क) खंडों में उल्लिखित राष्ट्रपति की संतुष्टि

(1) और (3) अंतिम और निर्णायक होगा और नहीं होगा

किसी भी आधार पर किसी भी न्यायालय में पूछताछ;

(ख) सी. एल. के प्रावधानों के अधीन। (2) , न ही सर्वोच्च

न्यायालय और न ही किसी अन्य न्यायालय के पास विचार करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

की वैधता के संबंध में कोई भी प्रश्न, किसी भी आधार पर

(i) राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा द्वारा की गई घोषणा

खंड (1) में बताए गए प्रभाव को कम करता है; या

((ii) इस तरह की घोषणा का निरंतर संचालन।

अब यह भाषा के एक सादे प्राकृतिक निर्माण पर स्पष्ट है

सी. एल. (1) कला की। 352 कि राष्ट्रपति इस खंड के तहत कार्रवाई कर सकते हैं

केवल तभी जब वह संतुष्ट हो कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिसके द्वारा प्रतिभूति

भारत का राज्य या उसके क्षेत्र के किसी भी हिस्से को खतरा है, चाहे

युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति से। संतोषजनक

राष्ट्रपति का यह कहना कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिसके द्वारा सुरक्षा

भारत का राज्य.. चाहे युद्ध से हो या बाहर से, खतरे में है।

आक्रामकता या आंतरिक अशांति "एक पूर्ववर्ती स्थिति है जो

राष्ट्रपति द्वारा घोषणा जारी करने से पहले इसे पूरा किया जाना चाहिए

कला. 352 सी. एल. (1) . जब यह शर्त पूर्ववर्ती संतुष्ट हो जाती है, तो अध्यक्ष

डेंट सी. एल. के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकता है। (1) कला की। 352 और ए जारी करें

ए के संवैधानिक निहितार्थ

अनुच्छेद 83 (2), 250,353,354,358 और 359 में प्रावधान किया गया है। आपातकाल एक राष्ट्रीय संकट से उत्पन्न होने वाली एक असाधारण स्थिति है स्थिति से निपटने के लिए केंद्रीय सरकार और संसद को व्यापक और व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं और

सामान्य स्थितियों को बहाल करें। ऐसी ही एक शक्ति कला द्वारा दी गई है। 83 (2) , जिसमें यह प्रावधान है कि जब आपातकाल की घोषणा अप्रचलित है, संसद कानून द्वारा अपनी अवधि को एक बार में एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए नहीं बढ़ा सकती है। फिर एक और शक्ति प्रदान की जाती है जो कला के तहत होती है। 250 जो कहता है कि जब तक आपातकाल की घोषणा लागू है, संसद के पास 307 के लिए कानून बनाने की शक्ति होगी।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

भारत के किसी भी क्षेत्र के संबंध में भारत के पूरे या किसी भी भाग में

राज्य सूची में सूचीबद्ध मामले। इस प्रावधान का प्रभाव यह है कि शक्तियों के पृथक्करण पर आधारित संघीय संरचना को बाहर रखा गया है।

अभी के लिए कार्रवाई। इसी तरह की एक और शक्ति है

कला द्वारा दिया गया। 353 जो प्रदान करता है कि उस समय के दौरान जब एक प्रो

आपातकाल लागू है, संघ की कार्यकारी शक्तियाँ

किसी भी राज्य को उसकी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग करने के तरीके के बारे में निर्देश देने तक इसका विस्तार होगा। यह प्रावधान संघीय सिद्धांत का भी अपमान करता है जो आधार बनाता है संविधान। फिर हम कला पर आते हैं। 354 जो आपातकाल की घोषणा के दौरान राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करता है,

निर्देश दें कि कला के तहत राजस्व के वितरण से संबंधित प्रावधान। 268 270 का प्रभाव ऐसे संशोधनों या अपवादों के अधीन होगा जो वह उचित समझता है। उद्घोषणा का एक और गंभीर परिणाम

आपातकाल की स्थिति वह है जो अनुच्छेद 358 में प्रदान की गई है जो

कला के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का संचालन। 19 जबकि

आपातकाल की घोषणा चल रही है। कला. 359 सी. एल. (1) ई. एम. राष्ट्रपति को आपात शासन की घोषणा के संचालन के दौरान भाग III और सी. एल. द्वारा प्रदत्त किसी भी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन को निलंबित करने का आदेश देने का अधिकार देता है। (1 ए) प्रस्तुत किया गया

संविधान (अड़तीसवां संशोधन) अधिनियम, 1975 द्वारा उन मौलिक अधिकारों के संचालन को निलंबित कर दिया गया है जिनके प्रवर्तन ने

खंड (1) के तहत बनाए गए आदेश द्वारा राष्ट्रपति द्वारा निलंबित किया गया। ये गंभीर परिणाम हैं जो एक बनाने पर होते हैं

आपातकाल की घोषणा। आपातकाल की घोषणा का मुद्दा संघवाद के सिद्धांत में गंभीर पैठ बनाता है और मौलिक अधिकारों के संचालन और प्रभाव को कम करता है। इसलिए आपातकाल घोषित करने की शक्ति गंभीर परिस्थितियों से भरी एक शक्ति है और इसका प्रभाव पूरी शक्ति संरचना को परेशान करने का है।

संविधान के तहत। लेकिन यह सेन को दी गई एक आवश्यक शक्ति है

युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति या ऐसी किसी आपदा के आसन्न खतरे के कारण देश की सुरक्षा के लिए उत्पन्न होने वाली आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए इसे पर्याप्त रूप से सशस्त्र करने की दृष्टि से त्राल सरकार। इसलिए यह एक ऐसी शक्ति है जिसका उपयोग सबसे अधिक सावधानी और सावधानी और अत्यधिक जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए।

इस स्तर पर इस प्रश्न पर विचार करना सुविधाजनक होगा कि

क्या और यदि हां, तो न्यायालय अनुच्छेद 352 के तहत जारी आपातकाल की घोषणा की संवैधानिक राष्ट्रीयता की समीक्षा कर सकता है।

सी. एल. (1) . आपातकाल की घोषणा की वैधता के सवाल की जांच करने के लिए न्यायालय की क्षमता के खिलाफ विचारकों की ओर से दो आपत्तियां सामने रखी गईं। एक आपत्ति यह थी कि क्या एक गंभीर आपातकाल मौजूद है जिससे भारत या उसके किसी भी हिस्से की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रमण से खतरा है।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

या आंतरिक अशांति अनिवार्य रूप से संविधान द्वारा संघ कार्यपालिका को सौंपा गया एक राजनीतिक प्रश्न है और इस कारण से, यह अदालत के समक्ष न्यायसंगत नहीं है। यह आग्रह किया गया कि समस्या की राजनीतिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायिक निर्णय के लिए उत्तरदायी नहीं है और इसलिए अदालत को इसकी जांच करने से बचना चाहिए। दूसरी आपत्ति यह थी कि किसी भी स्थिति में खंड (4 और 5) के कारण

अनुच्छेद 352 के अनुसार, न्यायालय को आपात स्थिति की घोषणा के मुद्दे पर राष्ट्रपति की संतुष्टि पर सवाल उठाने या आपातकाल के समर्थन या इसके निरंतर संचालन की वैधता के बारे में किसी भी प्रश्न पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था। मेरे विचार में ये दोनों आक्षेप निराधार हैं और वे राष्ट्रपति द्वारा जारी आपातकाल की घोषणा की वैधता की न्यायिक समीक्षा पर रोक नहीं लगाते हैं: अनुच्छेद 352 सीएल के तहत। (1) . मेरे ऐसा कहने के कारण इस प्रकार हैं:

यह स्वयंसिद्ध है कि यदि न्यायालय के समक्ष लाया गया कोई प्रश्न विशुद्ध रूप से है

एक राजनीतिक प्रश्न जिसमें किसी भी कानूनी या कानूनी प्रावधान का निर्धारण शामिल नहीं है

संवैधानिक अधिकार या दायित्व, न्यायालय इसे स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि

न्यायालय केवल कानूनी अधिकारों और दायित्वों के निर्णय से संबंधित है।

लाइट्स। लेकिन सिर्फ इसलिए कि एक सवाल का राजनीतिक रंग होता है, कि

अपने आप में कोई आधार नहीं है कि अदालत को प्रदर्शन करने से क्यों सिकुड़ना चाहिए

संविधान के तहत इसका कर्तव्य, यदि यह संवैधानिक मुद्दा उठाता है

दृढ़ संकल्प। संयुक्त राज्य में बड़ी संख्या में निर्णय होते हैं

वे राज्य जहाँ उच्चतम न्यायालय ने एक पोली के साथ कार्रवाई की है टिकल रंग क्योंकि उन्होंने संवैधानिक मुद्दा उठाया। वीडियो

गोमेलियन वी. लाइटफुट (1) और बेकर बनाम। कैर (2)। , विवाद

न्यायालय के समक्ष चरित्र में राजनीतिक हो सकता है, लेकिन जब तक यह

एक संवैधानिक प्रश्न का निर्धारण करता है, अदालत नहीं कर सकती है

डेक्ली

इसका मनोरंजन करने के लिए। यही दृष्टिकोण गुप्ता, जे. और द्वारा भी लिया गया है।

राजस्थान राज्य बनाम। भारत संघ (3)। मैंने इशारा किया

उस मामले में मेरा निर्णय और मैं अभी भी इसके साथ खड़ा हूं, केवल इसलिए कि

निराश हो जाओ और "न्यायिक हाथों को बंद करने" की घोषणा करो। जब तक सवाल है: क्या संविधान के तहत किसी प्राधिकरण ने सीमाओं के भीतर काम किया है

इसकी शक्ति या उससे अधिक, यह निश्चित रूप से अदालत द्वारा तय किया जा सकता है।

वास्तव में ऐसा करना उसका संवैधानिक दायित्व होगा। मैंने कहा है।

इससे पहले कि मैं फिर से दोहराऊं कि संविधान सर्वोच्च है, पैरा

देश का कानून, और कोई विभाग या शासन की शाखा नहीं है

इसके ऊपर या उससे आगे। सरकार का हर अंग, चाहे वह पूर्व हो

क्यूटिव या विधायिका या न्यायपालिका, अपने अधिकार से प्राप्त करती है

संविधान और उसे अपने अधिकार की सीमाओं के भीतर कार्य करना होगा और

उसने ऐसा किया है या नहीं, यह अदालत को तय करना है। न्यायालय है

(1) [1960] 364 यू. एस. 339

(2) [1962] 369 यू. एस. 186

(3) [1977] 3 एससीसी 592।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

309

संविधान का अंतिम दुभाषिया और जब संविधान के तहत शक्ति का अत्यधिक अनधिकृत प्रयोग होता है, तो हस्तक्षेप करना न्यायालय का कर्तव्य है। यह न भूलें कि सरकार की अन्य शाखाओं की तरह इस

न्यायालय भी संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण और उन्हें आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। अदालत का काम संवैधानिक योजना में उन मूल्यों की पहचान करना और अदालत तक पहुंचने वाले मामलों में उन्हें जीवन में लाना है। रणनीति और विवेकपूर्ण संयम को किसी भी शक्ति को शांत करना चाहिए, लेकिन साहस और जिम्मेदारी की स्वीकृति का भी अपना स्थान है। न्यायालय इस जिम्मेदारी से बच नहीं सकता और न ही उसे बचना चाहिए, क्योंकि उसने संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ ली है और वह इसके लोगों के प्रति भी जवाबदेह है।

देश। इसलिए न्यायालय के लिए यह जांच करने से इनकार करना सही नहीं होगा कि क्या किसी मामले में राष्ट्रपति द्वारा सी. एल. के तहत आपातकाल की घोषणा जारी करने में कोई संवैधानिक उल्लंघन शामिल है। (1) अनुच्छेद 352।

लेकिन जब मैं यह कहता हूं, तो मुझे यह स्पष्ट करना होगा कि संवैधानिक

इस न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार यह कहने से आगे नहीं है कि क्या राष्ट्रपति को संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति की सीमाओं का पालन किया गया है या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है। यहाँ अनुच्छेद 352 सी. एल. के तहत राष्ट्रपति की शक्ति की एकमात्र सीमा है। (1) कि राष्ट्रपति को संतुष्ट होना चाहिए कि एक गंभीर आपातकाल मौजूद है

जिसके तहत भारत या उसके किसी भी हिस्से की सुरक्षा को खतरा है, चाहे वह युद्ध हो या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति। राष्ट्रपति की संतुष्टि व्यक्तिपरक होती है और इसका निर्णय किसी भी वस्तुनिष्ठ परीक्षण के संदर्भ में नहीं किया जा सकता है। यह जानबूझकर और सलाह से उप-प्रभावी है क्योंकि जिस मामले के संबंध में उसे संतुष्ट किया जाना है वह है -

ऐसी प्रकृति कि इसका निर्णय अनिवार्य रूप से सरकार की निष्पादन शाखा पर छोड़ दिया जाना चाहिए। स्थितियों की एक विस्तृत श्रृंखला हो सकती है जो उत्पन्न हो सकते हैं और उनके राजनीतिक निहितार्थ और परिणाम

यह तय करने के लिए मूल्यांकन करना पड़ सकता है कि क्या कोई स्थिति है

देश की सुरक्षा के कारण गंभीर आपातकाल की स्थिति युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति से खतरा। यह.

ऐसा निर्णय नहीं है जो उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर आधारित हो।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने "न्यायसंगत रूप से खोज योग्य और प्रबंधित" के रूप में वर्णित किया है।

सक्षम मानक "। यह काफी हद तक एक राजनीतिक निर्णय होगा जिसके आधार पर

विविध और विविध कारकों का मूल्यांकन, तेजी से बदलती परिस्थितियाँ, क्षमता

संभावित परिणाम और कई अन्य अभेद्य। यह वहाँ नहीं हो सकता है

अपने स्वभाव से, निर्णय के लिए एक उपयुक्त विषय होने के लिए

न्यायिक तरीके और सामग्री और इसलिए इसे व्यक्तिपरक पर छोड़ दिया जाता है

केंद्र सरकार की संतुष्टि जो सबसे अच्छी स्थिति में है

इसे तय करें। न्यायालय शुद्धता के प्रश्न में नहीं जा सकता है या

तथ्यों और परिस्थितियों की पर्याप्तता जिस पर संतुष्टि केंद्र सरकार आधारित है। यह एक खतरनाक अभ्यास होगा।

न्यायालय के लिए, दोनों क्योंकि यह निर्धारण के लिए एक उपयुक्त साधन नहीं है

इस तरह का सवाल और इसलिए भी कि अदालत इस तरह [1981] 1 एस. सी. आर. को हड़प लेगी।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

310

यदि कार्यपालिका को लोगों के साथ अपनी वैधता बनाए रखनी है, तो कार्यपालिका का कार्य और ऐसा करने में, "राजनीतिक गुट" में प्रवेश करना चाहिए, जिससे उसे बचना चाहिए। लेकिन एक बात निश्चित है कि यदि संतुष्टि दुर्भावनापूर्ण है या पूरी तरह से बाहरी और अप्रासंगिक आधारों पर आधारित है, तो अदालत को इसकी जांच करने का अधिकार होगा, क्योंकि उस मामले में राष्ट्रपति को उस मामले के संबंध में कोई संतुष्टि नहीं होगी जिस पर उन्हें संतुष्ट करने की आवश्यकता है। राष्ट्रपति की संतुष्टि कला के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक शर्त पूर्ववर्ती है। 352 सी. एल. (1) और यदि यह दिखाया जा सकता है कि राष्ट्रपति को कोई संतुष्टि नहीं है, तो शक्ति का प्रयोग संवैधानिक रूप से अमान्य होगा। यह सच है कि अनुच्छेद 352 के खंड (5) (ए) के कारण, राष्ट्रपति की संतुष्टि को अंतिम और निर्णायक बनाया जाता है, और किसी पर भी हमला नहीं किया जा सकता है।

आधार, लेकिन, जैसा कि मैं वर्तमान में बताऊंगा, न्यायिक समीक्षा की शक्ति

यह संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है और इसलिए न्यायिक समीक्षा पर रोक लगाने वाला यह प्रावधान इस आधार पर हमला करने के लिए खुला होगा कि यह असंवैधानिक है और मूल संरचना को नुकसान पहुंचाने या नष्ट करने के रूप में अमान्य है। हालाँकि, संवैधानिकता के खिलाफ इस हमले को प्रावधान को पढ़ने से रोका जा सकता है और मुझे लगता है कि ऐसा ही है।

यह पढ़ा जाना चाहिए कि इसके द्वारा दी गई चुनौती से प्रतिरक्षा

लागू नहीं होता है जहां चुनौती यह नहीं है कि संतुष्टि अनुचित है

या अनुचित लेकिन यह कि कोई संतुष्टि नहीं है। ऐसे में,

यह राष्ट्रपति द्वारा प्राप्त संतुष्टि नहीं है जो चुनौती है

एड लेकिन स्वयं संतुष्टि का अस्तित्व। अतः कहाँ

संतुष्टि बेतुकी या विकृत या दुर्भावनापूर्ण या पूरी तरह से एक पर आधारित है बाहरी और अप्रासंगिक आधार, यह कोई संतुष्टि नहीं होगी

और यह एक अदालत के समक्ष चुनौती देने के लिए उत्तरदायी होगा, समझ में नहीं आता अनुच्छेद 352 का खंड (5) (ए)। यह निश्चित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए कि

ज्यादातर मामलों में चुनौती देना असंभव नहीं तो मुश्किल होगा

अनुच्छेद 352 खंड (1) के तहत शक्ति का प्रयोग इस सीमा पर भी

आधार, क्योंकि तथ्य और परिस्थितियाँ जिन पर संतुष्टि आधारित है यह ज्ञात नहीं होगा, लेकिन यह कहाँ संभव है, अस्तित्व

संतुष्टि को हमेशा इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह है दुर्भावनापूर्ण या पूरी तरह से बाहरी या अप्रासंगिक आधार पर आधारित।

यह सच है कि अब तक इस अदालत का कोई निर्णय नहीं लिया गया है

विचार है कि आपातकाल की घोषणा की वैधता एक्सा हो सकती है अदालत द्वारा खनन किया गया, हालांकि इन संकीर्ण सीमाओं के भीतर। लेकिन केवल

क्योंकि इस न्यायालय के लिए निर्णय देने का कोई अवसर नहीं आया है

आपातकाल की घोषणा की न्यायसंगतता का सवाल कोई जानकारी नहीं

इस बात का संकेत दिया जा सकता है कि आपातकाल की घोषणा से बचा जा सकता है

न्यायिक जांच से। यह सवाल कि घोषणा की जाए या नहीं

आपातकाल की न्यायिक समीक्षा इस आधार पर की जा सकती है कि यह दुर्भावनापूर्ण है

इस न्यायालय के समक्ष राष्ट्रपति की निष्ठा या शक्ति का दुरुपयोग उत्पन्न हुआ था

गुलाम सरवाई बनाम। भारत संघ (1), लेकिन अदालत ने इनकार कर दिया

(1) [1967] 2 एससीआर 271।

. 311

इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त करें क्योंकि न्यायालय के समक्ष दुर्भावनापूर्ण या शक्ति के दुरुपयोग का मामला बनाने के लिए कोई सामग्री नहीं रखी गई थी। उन. संदेह के साथ, इस न्यायालय के बाद के फैसले में भूतनाथ माटो बनाम। पश्चिम बंगाल राज्य (1) ऐसी एक या दो टिप्पणियां हैं जो पहली नज़र में यह संकेत देती हैं कि आपातकाल की घोषणा एक राजनीतिक मामला होने के नाते "डी हॉर्स आवर केन" है, लेकिन अगर कोई उस मामले में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के फैसले को बारीकी से देखता है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह यह निर्धारित नहीं करता है कि आपातकाल की घोषणा की न्यायपालिका द्वारा सीमित आधार पर भी समीक्षा नहीं की जा सकती है और उस प्रश्न को खुला छोड़ देता है और आपातकाल को जारी रखने को चुनौती देने वाले याचिकाकर्ता के तर्क को केवल इस आधार पर खारिज कर देता है कि "आपातकाल की निरंतरता और किसी भी आधार की अनुपस्थिति को स्थापित करने की जिम्मेदारी क्या है?

कभी भी राष्ट्रपति की व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए, जो कि भारी है, शायद ही कभी निर्वहन किया गया है ", और परिणामस्वरूप यह एक अकादमिक होगा

आपातकाल की घोषणा की समीक्षा। इस प्रकार कोई निर्णय नहीं है इस न्यायालय का कहना है कि आपातकाल की घोषणा की जाए

न्यायिक केन और मैं इस तरह के किसी भी फैसले से बंधे नहीं हैं।

मुझे उस दृष्टिकोण से अलग देखने के लिए मजबूर करना जो मेरे पास है

इस राय के पूर्ववर्ती अनुच्छेद में व्याख्या की गई है। वास्तव में,

राजस्थान राज्य बनाम में गुप्ता, जे. और मेरा निर्णय। संघ

भारत सरकार (ऊपर) मेरे दृष्टिकोण का पूरा समर्थन करती है। आपातकाल की घोषणा निस्संदेह न्यायपालिका के लिए उत्तरदायी है।

समीक्षा हालांकि सीमित आधार पर कि द्वारा आवश्यक रूप से कोई संतुष्टि नहीं

अनुच्छेद 352 राष्ट्रपति द्वारा कानून में या कि सती द्वारा तय किया गया था

गुट बेतुका या विकृत या दुर्भावनापूर्ण या बाहरी पर आधारित था।

या अप्रासंगिक जमीन।

अब सवाल यह उठता है कि क्या उद्घोषणा जारी रहेगी।

अदालत ने इस आधार पर कि परिस्थितियाँ जो आवश्यक थीं या इसके जारी होने का अस्तित्व समाप्त हो गया है। क्या अदालत से पूछा जा सकता है?

यह घोषणा करना कि आपातकाल की घोषणा का अस्तित्व समाप्त हो गया है और

अब लागू नहीं है या क्या घोषणा जारी है

जब तक इसे अनुच्छेद के खंड 2 (ए) के तहत एक और उद्घोषणा द्वारा निरस्त नहीं किया जाता है

352. इस प्रश्न का उत्तर व्याख्या पर निर्भर करता है

अनुच्छेद 352 का खंड (2)। वह खंड उपखंड (क) में कहता है कि

खंड (1) के तहत जारी आपातकाल की घोषणा को निरस्त किया जा सकता है।

बाद की घोषणा द्वारा। उस खंड के उपखंड (बी) के लिए आवश्यक है

कि खंड (1) के तहत जारी की गई घोषणा प्रत्येक के समक्ष रखी जाएगी। संसद के सदन और उपखंड (ग) के तहत ऐसी घोषणा

दो महीने की समाप्ति पर काम करना बंद कर देता है, जब तक कि संसद के दोनों सदनों द्वारा दो की समाप्ति से पहले अनुमोदित

(1) [1974] 1 एस. सी. सी 645

महीनों तक। इस प्रावधान से यह स्पष्ट है कि एमर की घोषणा

खंड (1) के तहत वैध रूप से जारी किया गया कोष जारी रहेगा।

कम से कम दो महीने की अवधि के लिए और यदि उसकी समाप्ति से पहले इस अवधि में, इसे संसद के दोनों सदनों के प्रस्तावों द्वारा अनुमोदित किया गया है।

में, यह की अवधि के बाद भी आगे काम करना जारी रहेगा

दो महीने, और एकमात्र तरीका जिसमें इसे समाप्त किया जा सकता है

खंड 2 (ए) के तहत जारी एक अन्य उद्घोषणा द्वारा इसे निरस्त करना है। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है जिससे यह काम करना बंद कर सके। न ही लेख

352 न ही संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद में कोई प्रावधान है

(1) जैसे ही परिस्थितियाँ इसकी आवश्यकता होती हैं, वे काम करना बंद कर देंगे। जारी करना बंद हो गया है। इसलिए, यह एक सादे प्राकृतिक पर स्पष्ट है।

खंड (2) के उपखंड (ए) से (सी) की भाषा की व्याख्या

कि जब तक आपातकाल की घोषणा को रद्द नहीं किया जाता है

परिस्थितियों के परिवर्तन के बावजूद संचालन में। यह बात हो सकती है यह कि अनुच्छेद के खंड (2) के प्रावधान की यह व्याख्या

352 लखन पाल बनाम में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा समर्थित है। संघ

भारत की ओर से आग्रह किए गए समान विवाद से निपटने के लिए (1)

याचिकाकर्ता ने कहा कि आपातकाल की निरंतरता जो घोषित की गई थी ई. डी. 26 अक्टूबर, 1962 को संविधान के साथ धोखाधड़ी थी, यह न्यायालय

सरकार के माध्यम से बोलते हुए, सी. जे. ने बताया कि "एक पेशेवर होने का एकमात्र तरीका"

में उल्लिखित घटनाओं में से एक से क्लैमेशन का प्रभाव समाप्त हो जाता है

यह खंड "और चूंकि दोनों में से कोई भी नहीं हुआ था, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि घोषणा जारी रही। याचिकाकर्ता ने उस मामले में आग्रह किया कि सशस्त्र आक्रामकता जो आपातकाल की घोषणा के मुद्दे को उचित ठहराती है, समाप्त हो गई है और इसलिए घोषणा को जारी रखना अनुचित है। लेकिन इस तर्क को इस आधार पर नकार दिया गया कि घोषणा को जारी करने के दो महीने की अवधि के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित कर दिया गया था, इसका प्रभाव केवल तभी समाप्त हो सकता है जब किसी अन्य घोषणा द्वारा इसे निरस्त कर दिया जाए और ऐसा नहीं होने पर, घोषणा जारी रही। यह सच है कि आपातकाल की घोषणा को निरस्त करने की शक्ति केवल केंद्र सरकार में निहित है और यह संभव है कि केंद्र सरकार आपातकाल की घोषणा को फिर से लागू करने से इनकार करके इस शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है, भले ही घोषणा के मुद्दे को उचित ठहराने वाली परिस्थितियां समाप्त हो गई हों और इस प्रकार लंबे समय से आधारहीन रूप से आपातकाल की स्थिति मौलिक अधिकारों को समाप्त कर रही हो और यह एक अधिनायकवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर सकती है। लेकिन सत्ता के इस तरह के दुरुपयोग के खिलाफ नागरिक की प्राथमिक और वास्तविक सुरक्षा "लोगों की अच्छी समझ और प्रतिनिधि और जिम्मेदार सरकार की प्रणाली" में निहित है जो संविधान में प्रदान की गई है। इसके अलावा, किसी दिए गए मामले में नागरिक के लिए स्थानांतरित करना संभव हो सकता है।

(1) [1966] सप. एससीआर 209।

यदि वह न्यायालय के समक्ष स्पष्ट और ठोस सामग्री प्रस्तुत करके यह दिखाने में सक्षम है कि आपातकाल की घोषणा को जारी रखने के लिए कोई औचित्य नहीं है, तो आपातकाल की घोषणा को निरस्त करने के लिए अनिवार्य रिट जारी करने के लिए न्यायालय। लेकिन यह एक बहुत भारी जिम्मेदारी होगी क्योंकि यह पूरी तरह से कार्यकारी सरकार के लिए होगी।

यह संतुष्ट करने के लिए कि क्या ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है जहाँ आपातकाल के समर्थन को निरस्त किया जा सकता है। कार्यकारी सरकार को यह संतुष्ट करने से पहले कि अब कोई गंभीर आपातकाल नहीं है जिससे भारत की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रामकता या आंतरिक अशांति से खतरा हो, कई तथ्यों और परिस्थितियों और ऐसे विविध विचारों को ध्यान में रखना होगा। यह ऐसा मामला नहीं है जो न्यायिक निर्धारण के लिए एक उपयुक्त विषय है और अदालत इस संबंध में कार्यकारी सरकार की संतुष्टि में तब तक हस्तक्षेप नहीं करेगी जब तक कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर यह स्पष्ट नहीं हो कि आपातकाल की घोषणा के जारी रहने का कोई औचित्य नहीं है और घोषणा को दुर्भावनापूर्ण या संपार्श्विक उद्देश्य के लिए जारी रखा जा रहा है। अदालत ऐसे मामले में, यदि संदेह से परे संतुष्ट हो जाती है, तो केंद्र सरकार को आपातकाल की घोषणा को रद्द करने का निर्देश देते हुए एक रिट दे सकती है। लेकिन जब तक ऐसा नहीं किया जाता, आपातकाल की घोषणा जारी रहेगी और यह नहीं कहा जा सकता है कि हालांकि एक और घोषणा द्वारा इसे रद्द नहीं किया गया है, फिर भी यह लागू नहीं हुआ है। यहाँ, वर्तमान मामले में यह सामान्य आधार था कि 3 दिसंबर 1971 को जारी आपातकाल की पहली घोषणा को 21 मार्च 1977 तक अनुच्छेद 352 के खंड 2 (ए) के तहत एक और घोषणा द्वारा निरस्त नहीं किया गया था और इसलिए उस समय जब लोक सभा (अवधि का विस्तार) अधिनियम, 1976 पारित किया गया था, आपातकाल की पहली घोषणा लागू थी।

अब अगर आपातकाल की पहली घोषणा लागू थी

प्रासंगिक समय, यह आवश्यकता के साथ पर्याप्त अनुपालन होगा

अनुच्छेद 83 के खंड (2) के परंतुक का प्रावधान और यह एक होगा

यह विचार करने के लिए आवश्यक है कि क्या आपातकाल की दूसरी घोषणा

राष्ट्रपति द्वारा वैध रूप से जारी किया गया था। लेकिन, याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया कि लोक सभा (अवधि का विस्तार) अधिनियम, 1976 ने धारा 2 की उचित व्याख्या पर दोनों के परिचालन अस्तित्व को अभिनिर्धारित किया।

आपातकाल की घोषणाएँ और यदि उनमें से कोई भी नहीं थी

भौतिक तिथि पर अस्तित्व में, अधिनियम निष्क्रिय होगा और होगा

लोकसभा की अवधि बढ़ाने का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह. इसलिए उत्तरदाताओं के लिए यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं था कि

आपातकाल की पहली घोषणा प्रासंगिक तिथि पर लागू थी,

लेकिन यह दिखाने के लिए आगे आवश्यक था कि की दूसरी घोषणा

आपातकाल भी लागू था और इसलिए यह आवश्यक था कि

क्या आपातकाल की दूसरी घोषणा वैध रूप से जारी की गई थी

राष्ट्रपति द्वारा। उत्तरदाताओं ने इस तर्क का जवाब देना चाहा #

याचिकाकर्ताओं का यह कहते हुए कि एक उचित निर्माण पर

धारा 2 की भाषा, यह ऑपरेशन के लिए एक शर्त पूर्ववर्ती नहीं थी लोक सभा (अवधि का विस्तार) अधिनियम, 1976 कि दोनों

आपातकाल की घोषणाएँ उस तारीख को लागू होनी चाहिए जब

अधिनियम लागू किया गया था। हाउस ऑफ पीपल (अवधि का विस्तार) अधिनियम, 1976 निस्संदेह आपातकाल की दोनों घोषणाओं को संदर्भित करता है।

उत्तरदाताओं ने कहा कि संचालन में होना लेकिन वह केवल था

आपातकाल की घोषणा कम से कम लागू थी, आवश्यकता अनुच्छेद 83 खंड (2) के परंतुक का समाधान किया जाएगा और

यह अधिनियम संसद के अधिनियमित करने के अधिकार के भीतर होगा। ये प्रतिद्वंद्वी विवादों ने धारा 2 के निर्माण पर सवाल उठाया

लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976। यह एक सरल

ऐसा प्रश्न जो बहुत अधिक संदेह या बहस को स्वीकार नहीं करता है और एक सादा प्रश्न है।

इसका उत्तर देने के लिए धारा 2 का व्याकरणिक अध्ययन पर्याप्त है। यह होगा।

धारा 2 को पुनः प्रस्तुत करना सुविधाजनक होगा जो संयोग से होता है

अधिनियम की एकमात्र संचारी धारा होगीः

" सेक. 2 : पाँच वर्ष की अवधि (वह अवधि जिसके लिए

लोक सभा, के अनुच्छेद 83 के खंड (2) के तहत

संविधान, अपने पहले के लिए नियुक्त तिथि से जारी है

बैठक) वर्तमान लोक सभा के संबंध में, जबकि

आपातकाल की घोषणा तीसरे दिन जारी की गई

दिसंबर, 1971 और जून, 1975 के 25 वें दिन, दोनों में हैं

संचालन, एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाया जाएः

बशर्ते कि यदि दोनों या उक्त घोषणाओं में से कोई एक

उक्त अवधि की समाप्ति से पहले काम करना बंद या बंद कर देता है।

एक वर्ष के लिए, वर्तमान लोक सभा, जब तक कि पूर्व

संविधान के अनुच्छेद 83 के खंड (2) के तहत जानबूझकर भंग कर दिया गया,

उक्त के संचालन के सेसर के बाद छह महीने तक जारी रखें

घोषणाएँ या उद्घोषणाएँ लेकिन उक्त अवधि से आगे नहीं

एक साल "।

इस खंड की भाषा की व्याख्या करते समय, यह सहन करना आवश्यक है

यह ध्यान में रखते हुए कि लोक सभा (अवधि विस्तार) अधिनियम, 1976

अनुच्छेद 83 के खंड (2) के प्रावधान के तहत अधिनियमित किया गया था

लोकसभा की अवधि बढ़ाने की स्थिति और यह एक शर्त थी

संसद द्वारा इस शक्ति के प्रयोग का उदाहरण कि वहाँ होना चाहिए

उस तारीख को आपातकाल की घोषणा की जाए जब

अधिनियम बनाया गया। अब संसद के अनुसार दो प्रो थे

आपातकाल की मांगें जो भौतिक तिथि पर चल रही थीं,

एक 3 दिसंबर 1971 को और दूसरा 25 जून 1975 को जारी किया गया था।

और के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त सी. एल. के लिए प्रावधान। (2) लोक सभा (एक्सटेंशन मिनर्वा मिल्स लिमिटेड) को अधिनियमित करने के लिए अनुच्छेद 83 का।

वी., यूनियन (भगवती, जे.)

315

अवधि) अधिनियम, 1976 का अनुपालन किया गया। विधायी प्रारूपण के दृष्टिकोण से, इसकी पूर्ति का पाठ करना आवश्यक नहीं था।

पूर्ववर्ती शर्त, लेकिन ऐसा लगता है कि अधिनियम के प्रारूपक ने एक पाठ सम्मिलित करना उचित समझा कि यह शर्त पूर्ववर्ती संतुष्ट थी और इसलिए, उन्होंने "जबकि 3 दिसंबर, 1971 को जारी आपातकाल की घोषणाएं और 25 जून, 1975 को जारी आपातकाल की घोषणाएं दोनों" खंड में सक्रिय भाग से पहले लागू हैं। 2 अधिनियम से। ये शब्द अनुच्छेद 83 के खंड (2) के परंतुक के तहत शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए केवल शर्त की संतुष्टि के पाठ के माध्यम से पेश किए गए थे और उनका उद्देश्य धारा 83 के संचालन के लिए कोई शर्त निर्धारित करना नहीं था। 2 अधिनियम से। धारा 2 ने स्पष्ट रूप से और कई शब्दों में लोकसभा की अवधि को एक वर्ष की अवधि के लिए बढ़ा दिया और यह तनाव अधिनियम के अधिनियमन की तारीख से दोनों घोषणाओं पर निर्भर नहीं था। यह विस्तार एक वर्ष की निश्चित अवधि के लिए किया गया था और यह आपातकाल की दोनों घोषणाओं के संचालन के साथ व्यापक नहीं था। एक वर्ष की अवधि के लिए विस्तार धारा 2 के अधिनियमन द्वारा एक बार और हमेशा के लिए किया गया था और आपातकाल की दोनों घोषणाओं का संदर्भ केवल यह इंगित करने के उद्देश्य से था कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं लागू होने के कारण, संसद को विस्तार करने की क्षमता थी। इसलिए यह विस्तार की प्रभावशीलता के लिए बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं लागू हों। अधिनियम के अधिनियमन की तिथि। भले ही एक एमर की घोषणा हो

जेन्सी भौतिक तिथि पर लागू था, यह अनुच्छेद के परंतुक के तहत संसद की शक्ति को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त होगा। 83 खंड (2) लोकसभा की अवधि बढ़ाने वाले अधिनियम को अधिनियमित करना। निस्सन्देह, यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि संसद इस आधार पर आगे बढ़ी कि आपातकाल की दोनों घोषणाएं प्रासंगिक तिथि पर लागू थीं और उन्होंने संसद को अधिनियम को लागू करने की शक्ति प्रदान की, लेकिन भले ही यह विधायी धारणा निराधार थी, लेकिन इससे 'शक्ति के प्रयोग' की वैधता पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा, जब तक कि आपातकाल की एक घोषणा लागू थी जो संसद को अनुच्छेद 83 के खंड (2) के परंतुक के तहत लोकसभा की अवधि बढ़ाने के लिए अधिकृत करती थी। यह सच है कि सेक का परंतुक। 2 यह अधिनियमित किया गया कि यदि आपात काल की दोनों या दोनों घोषणाएं एक वर्ष की विस्तारित

अवधि की समाप्ति से पहले बंद हो जाती हैं या बंद हो जाती हैं, तो लोकसभा उक्त घोषणाओं या घोषणाओं के संचालन की समाप्ति के बाद छह महीने तक जारी रहेगी, जो एक वर्ष की अवधि से आगे नहीं जाएगी, लेकिन इस परंतुक का प्रारंभिक भाग केवल आपात काल की घोषणा के संबंध में लागू हो सकता है जो अधिनियम के अधिनियमन की तारीख से लागू थी। यदि आपातकाल की ऐसी घोषणा जो लागू थी

सामग्री तिथि, विस्तारित अवधि की समाप्ति से पहले काम करना बंद कर दिया

एक वर्ष की अवधि के बाद लोकसभा का कार्यकाल समाप्त नहीं होगा।

धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है, लेकिन यह आगे की अवधि के लिए जारी रहेगा

छह महीने लेकिन एक वर्ष की विस्तारित अवधि से अधिक नहीं। यह

स्पष्ट रूप से दूसरे के संबंध में प्रावधान का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता है।

आपातकाल की घोषणा यदि जारी किए जाने पर यह अमान्य थी। ऐसे में

मामला, दूसरी घोषणा जारी होने की तारीख पर बिल्कुल भी मान्य नहीं है

यह बिल्कुल भी काम नहीं करेगा और यह काम करना बंद नहीं कर सकता है।

अधिनियम के अधिनियमन की तारीख के बाद। परंतुक इसमें होगा कि

घटना को केवल पहली घोषणा से संबंधित के रूप में पढ़ा जाना चाहिए

आपातकाल, और उसके बाद से आपातकाल की घोषणा तब तक जारी रही

21 मार्च, 1977 को लोकसभा की अवधि के दौरान इसे निरस्त कर दिया गया था।

18 मार्च, 1976 से एक वर्ष की अवधि के लिए वैध रूप से बढ़ाया गया था।

और इसलिए तारीखों पर एक वैध रूप से गठित लोकसभा थी

जब संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 और

विधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 पार्लिया द्वारा पारित किया गया था।

मन में। इस दृष्टिकोण पर यह विचार करना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है कि क्या

आपातकाल की दूसरी घोषणा राष्ट्रपति द्वारा वैध रूप से जारी की गई थी।

यह इस न्यायालय की स्थापित प्रथा है कि वह आवश्यकता से अधिक न कहे।

निर्णय के लिए एक सुरक्षित विश्राम स्थान प्राप्त करने के लिए और मुझे नहीं लगता कि कोई

विभिन्न आधारों की जांच करके उपयोगी उद्देश्य पूरा किया जाएगा

की दूसरी घोषणा की वैधता के खिलाफ चुनौती का आग्रह किया गया

आपातकाल, विशेष रूप से जब से अनुच्छेद (3) को अनुच्छेद में शामिल किया गया है।

352 संविधान (चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा

कि आपातकाल की घोषणा पूर्व द्वारा जारी नहीं की जाएगी

जब तक केंद्रीय मंत्रिमंडल के निर्णय की सिफारिश नहीं की जाती है

इस तरह की घोषणा के बारे में उन्हें लिखित में सूचित कर दिया गया है। और संविधान द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद 352 का खंड (9) (तीस)

आठवाँ संशोधन) अधिनियम, 1975 और संविधान द्वारा पुनः क्रमांकित '

(चालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 राष्ट्रपति को अधिकार देता है -

अलग-अलग आधारों पर अलग-अलग घोषणाएं जारी करें। इसलिए मैं चाहूंगा।

संविधान की वैधता के खिलाफ चुनौती को अस्वीकार करें (चालीसवां)

संशोधन) अधिनियम, 1976 और संविधान (42 वां संशोधन)

) अधिनियम, 1976 इस आधार पर कि उन तिथियों पर जब ये

संविधान संशोधन अधिनियम बनाए गए, लोकसभा नहीं थी

वैध रूप से अस्तित्व में।

यह मुझे संवैधानिक वैधता के खिलाफ चुनौती की ओर ले जाता है

संविधान की धारा 4 द्वारा अनुच्छेद 31 सी में किया गया संशोधन

(42 वां संशोधन) अधिनियम, 1976। यह संशोधन प्रतिस्थापित करता है के लिए "भाग IV में निर्धारित सभी या कोई भी सिद्धांत" शब्द

अनुच्छेद 39 के खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट सिद्धांत

और इसलिए संशोधित; अनुच्छेद 31 सी प्रदान करता है कि "कुछ भी होने के बावजूद

अनुच्छेद 13 में निहित, राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कोई कानून नहीं

भाग IV में निर्धारित सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करने के लिए (

यह इस आधार पर शून्य माना जाएगा कि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के साथ असंगत है या उसे छीनता है या कम करता है। संशोधित अनुच्छेद 31 सी मौलिक अधिकारों के साथ संघर्ष की स्थिति में मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता देता है। यह है कि क्या यह संशोधन किसी भी तरह से संविधान की मूल संरचना के लिए विनाशकारी है। इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने के लिए मौलिक अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों के बीच अंतर-संबंध की सराहना करना आवश्यक है और इस उद्देश्य के लिए संविधान में उनके अधिनियमन के इतिहास का संक्षेप में पता लगाना उपयोगी होगा। मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों की उत्पत्ति उस स्वतंत्रता संग्राम में पाई जाती है जिसे भारत के लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय परिषद के तत्वावधान में ब्रिटिश शासन के खिलाफ चलाया था।

महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और अन्य राष्ट्रीय नेताओं के नेतृत्व में। इन महान नेताओं ने व्यक्ति के राजनीतिक और नागरिक अधिकारों के सर्वोच्च महत्व को महसूस किया, क्योंकि वे ब्रिटिश शासन के तहत दमन के अपने अनुभव से जानते थे।

दो विश्व युद्धों सहित इतिहास की हाल की घटनाएं जो इन अधिकारों से संबंधित हैं

मनुष्य की गरिमा और उसके विकास के लिए बिल्कुल आवश्यक हैं।

पूर्ण व्यक्तित्व। लेकिन, साथ ही, वे दर्दनाक रूप से सचेत थे

कि देश में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में, केवल लोगों का एक छोटा सा हिस्सा ही इसका आनंद ले पाएगा।

देश जो गरीबी और निर्धनता में डूबा हुआ था और उनके लिए, इन नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का कोई अर्थ नहीं था। यह पता चला कि

अधिकांश लोगों के लिए जो लगभग उप-मानव जीवन जी रहे हैं

गरीबी की स्थितियों में अस्तित्व और जिनके लिए जीवन एक लंबा है

अभाव और निर्धनता की अटूट कहानी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की धारणाएँ

मुक्त समाज, केवल खाली शब्दों के रूप में ध्वनि करेगा अमीरों और अच्छी तरह से करने के लिए ड्राइंग रूम और एकमात्र समाधान

इन अधिकारों को उनके लिए सार्थक बनाना सामग्री को फिर से बनाना था।

परिस्थितियाँ और एक नई सामाजिक व्यवस्था की शुरुआत जहाँ सामाजिक-आर्थिक न्याय हो सार्वजनिक जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा ताकि -

सभी के लिए मौलिक स्वतंत्रताएँ सुरक्षित की जा सकती हैं। बनाने की जरूरत थी

सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ जिनमें देश का प्रत्येक नागरिक

नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होंगे और वे नहीं रहेंगे

केवल कुछ भाग्यशाली लोगों का संरक्षण। इसलिए राष्ट्रीय नेताओं,

सामाजिक-आर्थिक स्थिति लाने की आवश्यकता पर सबसे अधिक जोर दिया

पुनर्जनन और सामाजिक और आर्थिक न्याय सुनिश्चित करना। महात्मा

राष्ट्रपिता गांधी ने अपनी अनूठी शैली में शब्दों में कहा,

मर्मस्पर्शी से भरा:

" आर्थिक समानता अहिंसक भारत की प्रमुख कुंजी है।

पेंडेन्स। शासन की अहिंसक व्यवस्था एक अव्यवहारिक कार्य है। जब तक अमीर और भूखे लोगों के बीच की चौड़ी खाई है

} [1981]

1 एस सी आर।

लाखों बने रहते हैं। नई दिल्ली के महलों के बीच का अंतर

और गरीब मजदूर वर्ग की दयनीय झोंपड़ियाँ टिक नहीं सकतीं। एक दिन स्वतंत्र भारत में जिसमें गरीब भी उसी का आनंद उठाएंगे।

देश में अमीरों के रूप में शक्ति। एक हिंसक और खूनी क्रांति है

एक दिन निश्चितता, जब तक कि धन का स्वैच्छिक त्याग न हो और वह शक्ति जो धन देता है और उन्हें आम लोगों के लिए साझा करता है

अच्छा "।

जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान कहा था 1929 के लाहौर कांग्रेस सत्र के बारे में:

" समाजवाद का दर्शन धीरे-धीरे व्याप्त हो गया है

समाज की पूरी संरचना, दुनिया भर में और लगभग एकमात्र

अनुभूति। अगर भारत खत्म करना चाहता है तो उसे भी उस रास्ते से जाना होगा। उसकी गरीबी और असमानता, हालांकि वह अपना खुद का विकास कर सकती है

विधियाँ और आदर्श को उसकी जाति की प्रतिभा के अनुकूल बना सकते हैं।

फिर से, राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के अंतरंग और अविभाज्य संबंध पर जोर देते हुए उन्होंने कहा:

" यदि एक स्वदेशी सरकार ने विदेशी का स्थान लिया

सरकार और सभी निहित स्वार्थों को अक्षुण्ण रखा, यह होगा

स्वतंत्रता की छाया भी न बनें।

भारत का

तत्काल लक्षय को केवल अंत के संदर्भ में माना जा सकता है अपने लोगों का शोषण। राजनीतिक रूप से इसका मतलब स्वतंत्र होना चाहिए।

ब्रिटिश संबंध का संरक्षण और समर्पण; आर्थिक और सामाजिक रूप से, इसका अर्थ सभी विशेष वर्ग विशेषाधिकारों का अंत होना चाहिए और

निहित स्वार्थ "।

1929 के कांग्रेस प्रस्ताव ने भी सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के इसी विषय पर जोर दिया जब उसने घोषणा की:

" भारतीय लोगों की बड़ी गरीबी और दुख है

कारण, केवल नहीं। भारत में विदेशी शोषण, लेकिन पर्यावरण के लिए भी

समाज की नाममात्र संरचना, जिसका विदेशी शासक समर्थन करते हैं ताकि

उनका शोषण जारी रह सकता है। इसलिए हटाने के लिए

इस गरीबी और दुख को दूर करने और लोगों की स्थिति को सुधारने के लिए

भारतीय जनता में क्रांतिकारी परिवर्तन करना आवश्यक है समाज की आर्थिक और सामाजिक संरचना को प्रस्तुत करना और उसे हटाना।

घोर असमानताएँ "।

1931 में कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव आगे बढ़ा

घोषणा करें कि जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए, राजनीतिक स्वतंत्रता में भूखे रहने वाले शेरों की सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता शामिल होनी चाहिए। 1945 के कांग्रेस चुनाव घोषणापत्र में भी इसी सिद्धांत को दोहराया गया था जब उसने कहा था कि "सबसे महत्वपूर्ण और जरूरी"।

समस्या यह है कि गरीबी के अभिशाप को कैसे दूर किया जाए और मानक को कैसे बढ़ाया जाए जनसमूह का और वास्तविक उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है।

भारतीयों के हाथों में धन और शक्ति के केंद्रीकरण को रोकने के लिए

, दृश्य और समूह और समाज के लिए शत्रुतापूर्ण निहित स्वार्थों को रोकने के लिए

"बढ़ते हुए" से। यही सामाजिक-आर्थिक दर्शन था जो

संविधान निर्माताओं को यह विश्वास करने के लिए प्रेरित किया कि गारंटी

इसमें कोई संदेह नहीं है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता को शामिल करना आवश्यक था

संविधान, लेकिन इसके लिए प्रावधान करना भी आवश्यक था

सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की संरचना और सामाजिक और पर्यावरण सुनिश्चित करना।

लोगों को नाममात्र का न्याय। इस पर जवाहरलाल ने जोर दिया था।

नेहरू जब लक्षयों और उद्देश्यों के बारे में प्रस्ताव पर बोल रहे थे संविधान सभा के समक्ष उन्होंने कहा:

" इस सभा का पहला कार्य भारत को स्वतंत्र करना है।

एक नया संविधान, भूखे लोगों को खिलाने और उन्हें कपड़े पहनने के लिए

नग्न जनता और प्रत्येक भारतीय को विकास का पूरा अवसर दें

स्वयं अपनी क्षमता के अनुसार "।

वास्तव में, जैसा कि के. संथानन ने बताया है, एक प्रमुख दक्षिणी सदस्य I 1

संविधान सभा के अनुसार, प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से भारत में तीन क्रांतियाँ समानांतर चल रही थीं। राजनीतिक क्रांति 15 अगस्त, 1947 को समाप्त हो गई जब भारत स्वतंत्र हो गया लेकिन स्पष्ट रूप से राजनीतिक स्वतंत्रता अपने आप में एक अंत नहीं हो सकती है, यह केवल अंत का एक साधन हो सकता है, यह लक्षय "जवाहरलाल नेहरू द्वारा मुखर रूप से" लोगों को ऊपर उठाने के लिए दबाव डाला गया था।

उच्च स्तर तक और इसलिए मानवता की सामान्य प्रगति। 4 इसलिए सामाजिक और आर्थिक क्रांतियों को आगे बढ़ाना और उन्हें पूरा करना आवश्यक था। सामाजिक: क्रांति का उद्देश्य भारत को "जन्म, धर्म, प्रथा और समुदाय पर आधारित मीडिया मूल्यवाद से बाहर निकालना और कानून, व्यक्तिगत योग्यता और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की आधुनिक नींव पर अपने सामाजिक ढांचे का पुनर्निर्माण करना" था, जबकि आर्थिक क्रांति का उद्देश्य "आदिम ग्रामीण अर्थव्यवस्था से वैज्ञानिक और नियोजित कृषि और उद्योग में परिवर्तन" लाना था। . डॉ. आर. राधाकृष्णन, जो संविधान सभा के सदस्य थे और जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत में एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति होनी चाहिए, जो न केवल 'आम आदमी की झोपड़ी की मौलिक जरूरतों की वास्तविक संतुष्टि' के लिए बनाई गई हो, ताकि 'भारतीय समाज की संरचना में एक मौलिक परिवर्तन' लाया जा सके। संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि इस महान सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की उपलब्धि भारत के अस्तित्व पर निर्भर करती है। अगर हम इस समस्या को जल्द ही हल नहीं कर सकते हैं ", जवाहरलाल ने कहा। नेहरू "... संविधान सभा ने चेतावनी दी कि "हमारे सभी कागजी संविधान बेकार और बेकार हो जाएंगे।" उद्देश्य संकल्प जो उद्देश्यों को निर्धारित करता है और

[19

81] 1 एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

320

ए.

संविधान बनाने में संविधान सभा के समक्ष उद्देश्य

और जिसे जनवरी 1947 में संविधान सभा द्वारा पारित किया गया था

संविधान निर्माण के वास्तविक कार्य को शुरू करने से पहले, वहाँ पहले, संविधान सभा का संकल्प व्यक्त किया कि एक

संविधान "जिसकी सभी को गारंटी और सुरक्षा दी जाएगी

भारत के लोग न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, राज्य की समानता

बी.

कानून के सामने यह और अवसर; विचार की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति

सायन, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगठन और कार्य विषय

कानून और सार्वजनिक नैतिकता और जिसमें पर्याप्त सुरक्षा उपाय किए जाएंगे

अल्पसंख्यक, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों और दलितों के लिए प्रावधान और

अन्य पिछड़े वर्ग "। इन उद्देश्यों को शामिल किया गया था

संविधान की प्रस्तावना में संविधान निर्माता और वे थे

ओ.

भाग III में मौलिक अधिकारों को लागू करके सुरक्षित करने की मांग की गई और भाग IV में निर्देशक सिद्धांत।

मौलिक अधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धांतों को दो अलग और सख्ती से परिभाषित श्रेणियों में फिट करना संभव नहीं है, लेकिन यह हो सकता है

डी.

मोटे तौर पर कहा गया है कि मौलिक अधिकार नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि निदेशक सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का प्रतीक हैं। दोनों

स्पष्ट रूप से मानवाधिकारों के व्यापक दायरे का हिस्सा हैं। अगर हम 18 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अपनाए गए मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को देखें, तो हम पाते हैं कि इसमें न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले अधिकार शामिल हैं

ई.

(अनुच्छेद 1 से 21 देखें) लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सामाजिक और आर्थिक अधिकार भी (अनुच्छेद 22 से 29 देखें)। मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए महासभा द्वारा अपनाए गए दो अंतर्राष्ट्रीय करार भी हैं, एक है नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय करार और दूसरा है आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय करार। दोनों अंतरराष्ट्रीय हैं।

एफ.

मानवाधिकारों से संबंधित उपकरण। इसलिए यह कहना सही नहीं है कि केवल मौलिक अधिकार मानवाधिकारों पर आधारित हैं जबकि निदेशक सिद्धांत मानवाधिकारों के अलावा किसी अन्य श्रेणी में आते हैं। निर्देशक सिद्धांतों में सन्निहित सामाजिक-आर्थिक अधिकार मानवाधिकारों का उतना ही हिस्सा हैं जितना कि मौलिक अधिकार। हेगड़े और मुखर्जी, जे. जे. केशवानंद में कहना मेरे लिए सही था।

जी.

रिपोर्ट के पृष्ठ 312 पर भारती का मामला है कि "निदेशक सिद्धांत और मौलिक अधिकार मुख्य रूप से मानवाधिकारों के आधार पर आगे बढ़ते हैं"। इन दोनों का उद्देश्य संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करना और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है और न केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के लिए बल्कि देश के सभी लोगों के लिए व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करना है।

विकलांग, सबसे निचले और खोए हुए,

अब यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि हालांकि मौलिक अधिकार

और निर्देशात्मक सिद्धांत संविधान में अलग-अलग संस्थाओं के रूप में दिखाई देते हैं,

इस अवधि के दौरान उनके बीच ऐसा कोई सीमांकन नहीं किया गया था

संविधान के निर्माण से पहले। अगर हम शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं

ग्रैनविल ऑस्टिन की अपनी पुस्तक में; "दोनों प्रकार के अधिकार विकसित हुए थे।

एक आम मांग के रूप में, राष्ट्रीय और सामाजिक क्रांतियों के उत्पाद,

उनके लगभग अविभाज्य अंतर्संबंध और भारतीय चरित्र के बारे में राजनीति स्वयं "। वे दोनों एक ही आसन पर रखे गए थे और

समान श्रेणी के अंतर्गत आने के रूप में माना जाता है जिसे समग्र रूप से वर्णित किया गया है

मौलिक अधिकारों के रूप में। सप्रू समिति अपने संविधान में

1945 में किए गए प्रस्तावों ने सिफारिश की कि फंडा की घोषणा

अपने व्यापक अर्थों में मानसिक अधिकार बिल्कुल आवश्यक और परिकल्पित थे।

ये अधिकार दो वर्गों में आते हैं; एक न्यायसंगत और दूसरा

गैर-न्यायसंगत-पहला कानून के न्यायालयों में लागू करने योग्य है और बाद वाला, नहीं। हालाँकि, समिति को विभाजित करने में कठिनाई महसूस हुई

इन दो वर्गों में मौलिक अधिकार और, पूरे मुद्दे को छोड़ दिया

संविधान-निर्माण निकाय द्वारा अवलोकन के साथ निपटाया जाना

हालाँकि यह कार्य कठिन था, लेकिन यह किसी भी तरह से असंभव नहीं था। यह

सप्रू समिति के सुझाव से शायद इसकी प्रेरणा मिली

1937 का आयरिश संविधान, जिसने न्याय के बीच अंतर किया

मौलिक अधिकार और बाद वाला सामाजिक न्याय के निदेशक सिद्धांतों के रूप में नीति। डॉ. लॉटर-पैच्ट ने भी इसी तरह का अंतर किया

न्यायसंगत और गैर-न्यायसंगत अधिकार उनके "इंटरनेशनल बिल ऑफ द

पुरुषों के अधिकार "। इस विधेयक के महत्वपूर्ण प्रावधान दो भागों में थे

कानून की अदालतें जबकि भाग II ने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को निर्धारित किया इस तरह के प्रवर्तन के लिए उपयुक्त या अनुपयुक्त। सर बी. एन. राउ, जो थे

इन विचारों से काफी प्रभावित होकर उन्होंने सुझाव दिया कि सबसे अच्छा संकल्प उद्देश्यों में निर्धारित उद्देश्यों को प्रभावी बनाने का तरीका

उद्देश्यों को मौलिक अधिकारों में विभाजित करना था और राज्य नीति के मौलिक सिद्धांत, पहला व्यक्तिगत से संबंधित

और सामाजिक और आर्थिक अधिकारों और अन्य मामलों से संबंधित न्यायालयों में प्रवर्तनीय राजनीतिक अधिकार, जो इतने प्रवर्तनीय नहीं हैं और उन्होंने प्रस्ताव दिया कि मौलिक अधिकारों पर अध्याय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; भाग ए "सामाजिक नीति के मौलिक सिद्धांत" शीर्षक के तहत बाद के प्रकार के अधिकारों से संबंधित है और भाग बी "मौलिक अधिकार" शीर्षक के तहत पहले वाले से संबंधित है। मौलिक अधिकार उप-समिति ने यह भी सिफारिश की कि "मौलिक अधिकारों की सूची दो भागों में तैयार की जानी चाहिए, पहला भाग जिसमें उचित कानूनी प्रक्रिया द्वारा लागू किए जाने वाले अधिकार शामिल हों और दूसरा जिसमें सामाजिक नीति के निदेशक सिद्धांत शामिल हों"। एक सप्ताह बाद, विचार के लिए आगे बढ़ते हुए, मौलिक अधिकारों की अंतरिम रिपोर्ट, सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा:

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

322

" यह एक प्रारंभिक रिपोर्ट या एक अंतरिम रिपोर्ट है क्योंकि

समिति जब फिक्सिंग के सवाल पर विचार करने के लिए बैठती है मौलिक अधिकार और संविधान में इसका समावेश,

इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मौलिक अधिकार होने चाहिए दो भागों में विभाजित-पहला भाग न्यायसंगत और दूसरा

गैर-न्यायसंगत "।

इस स्थिति को सरदार वल्लभभाई पटेल ने दोहराया था जब उन्होंने कहा था

पूरक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए:

" रिपोर्ट के दो भाग थे; एक में फंडा था।

रिपोर्ट में मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया था जो न्यायसंगत नहीं थे लेकिन निर्देश थे।

इसलिए यह देखा जाएगा कि महत्व की दृष्टि से

और महत्व, न्यायसंगत और न्यायसंगत के बीच कोई अंतर नहीं किया गया था गैर-न्यायोचित अधिकार और दोनों को इसका हिस्सा माना जाता था

पूर्व को कानून के न्यायालयों में लागू किया जाना था, बाद वाले थे इतना लागू करने योग्य नहीं होना। मौलिक को विभाजित करने का यह प्रस्ताव

दो भागों में अधिकार, एक भाग न्यायोचित और दूसरा गैर-न्यायोचित,

हालाँकि गोद लेना आसान नहीं था, क्योंकि यह एक कठिन काम था यह तय करें कि किस श्रेणी में एक विशेष मौलिक अधिकार होना चाहिए

शामिल हैं। इस कठिनाई को यह इंगित करके स्पष्ट किया जा सकता है कि एक बार में

प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को मसौदा सूची में शामिल किया गया था मौलिक अधिकार, जबकि समानता खंड मसौदा सूची में शामिल था

सामाजिक नीति के मौलिक सिद्धांत। लेकिन अंत में एक विभाजन

संविधान सभा द्वारा सहमति व्यक्त की गई थी और पूर्व थे "मौलिक अधिकार" के रूप में नामित और बाद वाले को "निर्देशात्मक" के रूप में नामित किया गया

राज्य नीति के सिद्धांत "। कभी-कभी कहा जाता है कि

मौलिक अधिकार राज्य के नकारात्मक दायित्वों से संबंधित हैं

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण करना, जबकि निर्देशक सिद्धांत राज्य पर कुछ प्रकार की कार्रवाई करने के लिए सकारात्मक दायित्व अधिरोपित करना।

लेकिन, मुझे इस प्रस्ताव को स्वीकार करना मुश्किल लगता है क्योंकि, हालांकि

बाद वाला भाग सच हो सकता है कि निर्देशक सिद्धांतों को सकारात्मक की आवश्यकता है राज्य द्वारा की जाने वाली कार्रवाई, यह कहना पूरी तरह से सही नहीं है कि

मौलिक अधिकार राज्य पर केवल नकारात्मक दायित्वों को लागू करते हैं।

कुछ मौलिक अधिकार हैं जिनकी एक सकारात्मक सामग्री भी है।

और यह कुछ हद तक हाल के फैसलों से सामने आया है। एल.

हयावदराव होसकोट बनाम। महाराष्ट्र राज्य (2) और सुनील बत्रा आदि। वी. दिल्ली प्रशासन और अन्य। आदि (3)। नए आयाम हैं

(1) [1979] 3 एससीआर 160।

(2) [1979] 1 एससीआर 192।

(3) [1979] 1 एससीआर 392।

1

डी ए एक्स

3

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

323

इस न्यायालय द्वारा खोले जा रहे मौलिक अधिकार और मौलिक अधिकारों का पूरा न्यायशास्त्र पुनरुत्थान के विकास के चरण में है। इसके अलावा, तीन लेख हैं, अर्थात् कला। 15 (2) , अनुच्छेद 17 और अनुच्छेद 23 मौलिक अधिकारों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जो व्यक्ति को इन कार्यों से बचाने के लिए बनाए गए हैं -

अन्य निजी नागरिक और व्यक्ति को यह सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए राज्य पर सकारात्मक दायित्व लगाते प्रतीत होते हैं। मैं, इससे पहले, इस सिद्धांत को स्वीकार करके मौलिक अधिकारों की क्षमता को सीमित नहीं करूंगा कि वे केवल नकारात्मक दायित्व हैं जिनके लिए राज्य को सकारात्मक कार्रवाई करने से अलग रहने की आवश्यकता है। मेरे विचार से मौलिक अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों के बीच एकमात्र अंतर यह है कि जहां पहले वाले न्यायालय में लागू किए जा सकते हैं, वहीं बाद वाले नहीं हैं। और इसका कारण स्पष्ट है; इसे योजना आयोग द्वारा निम्नलिखित शब्दों में संक्षिप्त रूप से व्यक्त किया गया है:

" गैर-न्याय्यता खंड केवल यह प्रदान करता है कि शिशु

राज्य को तुरंत जवाबदेह नहीं ठहराया जाएगा

उस पर निर्धारित नए दायित्वों को पूरा करना। एक राज्य अभी-अभी जागृत हुआ है

अपने कई पूर्व-व्यवसायों के साथ स्वतंत्रता के लिए कुचल दिया जा सकता है

भार जब तक कि यह आदेश, समय, समय तय करने के लिए स्वतंत्र न हो

स्थान और उन्हें पूरा करने का तरीका।

निर्देशक सिद्धांतों में जिन सामाजिक और आर्थिक अधिकारों और अन्य मामलों से निपटा गया है, वे स्वभाव से न्यायिक प्रवर्तन में असमर्थ हैं और इसके अलावा, उनमें से कई अधिकारों का कार्यान्वयन देश में आर्थिक विकास की स्थिति, आवश्यक वित्त की उपलब्धता और उद्देश्यों और मूल्यों की प्राथमिकता के

बारे में सरकार के मूल्यांकन पर निर्भर करेगा और इसलिए उन्हें गैर-न्यायसंगत बनाया जाता है। लेकिन केवल इसलिए कि निदेशक सिद्धांत न्यायोचित नहीं हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि वे किसी भी तरह से मौलिक अधिकारों के अधीन या हीन हैं। 1

भारतीय संविधान सबसे पहले एक सामाजिक दस्तावेज है।

इसके अधिकांश प्रावधान या तो सीधे सामाजिक-आर्थिक क्रांति के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से हैं या इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक शर्तों को स्थापित करके इस क्रांति को बढ़ावा देने का प्रयास कर रहे हैं। फिर भी उद्देश्य से पूरे संविधान के पारगमन के बावजूद

ग्रैनविल ऑस्टिन कहते हैं, "सामाजिक क्रांति को कम करने का मूल निहितार्थ राष्ट्रीय पुनर्जागरण है।

..... में

मौलिक अधिकार और राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत। (1) ये संविधान की अंतरात्मा हैं और ग्रैन विले ऑस्टिन के अनुसार, "इन्हें लाने में मुख्य साधन के रूप में तैयार किया गया है।

(1) ग्रैनविल ऑस्टिन; "भारतीय संविधान, एक राष्ट्र की आधारशिला,

पी। 50 .

**

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [1981] 1 एस. सी. आर.

324

आई।

सामाजिक-आर्थिक क्रांति के महान सुधारों और उन्हें साकार करने के बारे में

सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के संवैधानिक लक्ष्य। मौलिक अधिकार निस्संदेह राजनीतिक न्याय प्रदान करते हैं।

व्यक्ति को विभिन्न स्वतंत्रताएँ प्रदान करके, और एक

सामाजिक क्रांति को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान

एक ऐसे समाज का लक्ष्य जो बनावट में समतावादी हो और जहाँ

अल्पसंख्यक समूहों के अधिकारों की रक्षा की जाएगी। लेकिन इसमें

निर्देशक सिद्धांत जो हम सामाजिक का सबसे स्पष्ट कथन पाते हैं

आर्थिक क्रांति। निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य यह है कि

भारतीय जनता सकारात्मक अर्थों में स्वतंत्र है, समाज और प्रकृति द्वारा सदियों के जबरदस्ती से उत्पन्न निष्क्रियता से मुक्त है, स्वतंत्र है।

5

उन भौतिक स्थितियों से जो उन्हें रोक रही थीं

अपने सबसे अच्छे उपहारों को पूरा करना। (1. इसमें कोई संदेह नहीं है कि लोकतंत्र में मौलिक अधिकार महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं, लेकिन आम आदमी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय के बिना और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का निर्माण किए बिना कोई वास्तविक लोकतंत्र नहीं हो सकता है जिसमें सामाजिक-आर्थिक स्थिति हो सकती है।

और हर एक के लिए आर्थिक न्याय, निदेशक प्रिंटक विषय है। शिष्यों। ये निर्देशक सिद्धांत हैं जो हमारी जड़ों को पोषित करते हैं।

लोकतंत्र, इसे शक्ति और शक्ति प्रदान करें और बनाने का प्रयास करें

यह एक वास्तविक सहभागी लोकतंत्र है जो केवल एक नहीं रहता है राजनीतिक लोकतंत्र लेकिन सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र भी बन जाता है

उनकी शक्ति, स्थिति या धन की परवाह किए बिना सभी के लिए उपलब्ध मौलिक अधिकारों के साथ। निर्देशक सिद्धांतों के गतिशील प्रावधान

मौलिक अधिकारों के स्थिर प्रावधानों को लागू करना। वस्तु।

मौलिक अधिकारों में से व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है, लेकिन कर सकते हैं

संरचना जिसमें इसे संचालित किया जाना है। के बीच एक वास्तविक संबंध है व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का आकार और रूप

समाज की संरचना। क्या कोई व्यक्तिगत स्वतंत्रता हो सकती है?

और जिन्हें शोषक द्वारा अपने व्यक्तिगत अधिकारों से धोखा दिया जाता है आर्थिक व्यवस्था? क्या उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता संघर्ष में नहीं आएगी?

सामाजिक और आर्थिक रूप से अधिक शक्तिशाली वर्ग की स्वतंत्रता के साथ और इस प्रक्रिया में, विकृत हो जाते हैं या नष्ट हो जाते हैं? यह स्वयंसिद्ध है कि

वर्तमान समाज में वास्तविक विवाद सत्ता के बीच नहीं हैं

और स्वतंत्रता लेकिन स्वतंत्रता के एक रूप और दूसरे के बीच।

के तहत

वर्तमान सामाजिक-आर्थिक प्रणाली, यह कुछ लोगों की स्वतंत्रता है जो

यह कई लोगों की स्वतंत्रता के साथ संघर्ष में है। निर्देशक सिद्धांत इसलिए, राज्य पर सकारात्मक कार्रवाई करने का दायित्व अधिरोपित करें।

(1) ग्रैनविल ऑस्टिन; "भारतीय संविधान, एक राष्ट्र की आधारशिला,

पृष्ठ 51.

जे.

1

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

325

सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का निर्माण करना जिसमें सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था होगी, ताकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता एक पोषित मूल्य और व्यक्ति की गरिमा एक जीवित वास्तविकता बन जाए, न केवल कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के लिए बल्कि देश के पूरे लोगों के लिए। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि निर्देशात्मक सिद्धांतों को संविधान में बहुत उच्च स्थान प्राप्त है।

योजना और यह केवल निर्देशक सिद्धांतों में परिकल्पित सामाजिक-आर्थिक संरचना के ढांचे में है कि मौलिक अधिकार संचालित करने के लिए अभिप्रेत हैं, क्योंकि तभी वे हमारे लाखों गरीब और वंचित लोगों के लिए सार्थक और महत्वपूर्ण बन सकते हैं।

जिनके पास जीवन की आवश्यकताएँ भी नहीं हैं और जो नीचे रह रहे हैं

गरीबी का स्तर।

निर्देशात्मक सिद्धांत संविधान के भाग IV में दिए गए हैं।

और यह भाग अनुच्छेद 37 से शुरू होता है, जो मेरे विचार से एक अनुच्छेद है।

महत्वपूर्ण महत्व का। वह कहता है: " इसमें निहित प्रावधान

भाग किसी भी न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं होगा, लेकिन उसके सिद्धांत फिर भी शासन में निर्धारित बुनियादी हैं

देश और इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा। कानून बनाने में "। पूर्ण प्रभाव की सराहना करने के लिए यह आवश्यक है

इस अनुच्छेद के अनुलेखन, इसकी तुलना संबंधित प्रावधान से करने के लिए

आयरिश संविधान में, जैसा कि ऊपर बताया गया है,

कुछ हद तक में निर्देशक सिद्धांतों को पेश करने के लिए प्रेरणा

संविधान। आयरिश संविधान का अनुच्छेद 45 प्रदान करता है:

" इस अनुच्छेद में सामाजिक नीति के सिद्धांत दिए गए हैं -

निर्देशों के सामान्य मार्गदर्शन के लिए अभिप्रेत है। आवेदन

कानून बनाने में उन सिद्धांतों का ध्यान रखा जाएगा।

निर्देश विशेष रूप से और किसी के लिए संज्ञानात्मक नहीं होगा

इस संविधान के किसी भी प्रावधान के तहत अदालत।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि हमारा अनुच्छेद 37 तीन महत्वपूर्ण बनाता है। अनुच्छेद 45 की भाषा से विचलन; पहला जबकि अनुच्छेद 45

यह प्रावधान करता है कि सामाजिक नीति के सिद्धांतों का अनुप्रयोग

किसी भी अदालत द्वारा संज्ञेय नहीं किया जाएगा, अनुच्छेद 37 कहता है कि निर्देश

सिद्धांत किसी भी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे: दूसरा, जबकि अनुच्छेद 45 में यह प्रावधान है कि सामाजिक नीति के सिद्धांत अभिप्रेत हैं।

निदेशकों के सामान्य मार्गदर्शन के लिए, अनुच्छेद 37 बनाता है

इस देश के शासन में मौलिक निर्देशक सिद्धांत;

और अंत में, जबकि अनुच्छेद 45 घोषणा करता है कि सिद्धांतों का अनुप्रयोग

कानून बनाने में सामाजिक नीति का ध्यान रखा जाएगा

निर्देश विशेष रूप से, अनुच्छेद 37 अधिनियमित करता है कि यह कर्तव्य होगा

कानून बनाने में निदेशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए राज्य। ये हुए बदलाव

संविधान निर्माताओं द्वारा बनाए गए महत्वपूर्ण हैं और उनके पास है

कुल परिवर्तन या कायापलट लाने का प्रभाव

यह प्रावधान, मूल रूप से इसके महत्व और प्रभावकारिता को बदल रहा है:

[1981] 1

एस सी आर।

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

326

यह ध्यान दिया जाएगा कि निदेशक सिद्धांतों को बाहर नहीं रखा गया है

न्यायालय के संज्ञान से, जैसा कि आयरिश संविधान के तहत है: उन्हें केवल पहले से चर्चा किए गए कारणों के लिए अदालत द्वारा गैर-प्रवर्तनीय बनाया जाता है। लेकिन केवल इसलिए कि वे न्यायिक प्रक्रिया द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि वे संविधान के किसी अन्य भाग के अधीन महत्व के हैं। मैं यह पहले भी कह चुका हूं, लेकिन मैं इसे फिर से जोर दे रहा हूं, यहां तक कि प्रतिशोध की कीमत पर भी, क्योंकि एक समय में इस न्यायालय द्वारा मद्रास राज्य बनाम मद्रास में एक विचार लिया गया था। चम्पकन दोराईराजन (1) कि क्योंकि मौलिक अधिकारों को अदालत में लागू करने योग्य बनाया गया है और निदेशक सिद्धांत हैं:

नहीं "। निदेशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों पर अध्याय के सहायक के रूप में पालन करना होगा। यह दृश्य स्पष्ट था

गलत और कुछ वर्षों के भीतर, इस न्यायालय द्वारा केरल शिक्षा विधेयक, 1959 एस. सी. आर. 995 में यह कहते हुए एक योग्यता पेश करने का अवसर पाया गया कि " फिर भी किसी भी व्यक्ति या निकाय द्वारा या उसकी ओर से निर्भर मौलिक अधिकारों के दायरे और दायरे को निर्धारित करने में, न्यायालय संविधान के भाग IV में निर्धारित राज्य नीति के इन निदेशक सिद्धांतों को पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं कर सकता है, लेकिन सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत को अपनाना चाहिए और दोनों को यथासंभव प्रभावी बनाने का प्रयास करना चाहिए। . लेकिन यह अवलोकन भी निदेशक सिद्धांतों के विपरीत मौलिक अधिकारों को अधिक महत्व देता प्रतीत होता है और यह मुख्य रूप से इसलिए था क्योंकि मौलिक अधिकार न्यायिक प्रक्रिया द्वारा लागू किए जा सकते हैं जबकि निर्देश

सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से गैर-प्रवर्तनीय बनाया गया है। हालाँकि, मेरी राय है, और इस मुद्दे पर मैं हेगड़े, जे. के "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत" पर उनके अत्यधिक प्रबुद्ध व्याख्यानों में दिए गए अवलोकन से पूरी तरह सहमत हूँ कि:

" संविधान का कोई विशेष अधिदेश है या नहीं

न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, इसके महत्व पर कोई असर नहीं पड़ता है

आदेश। संविधान में कई महत्वपूर्ण आदेश हैं।

जो कानून की अदालतों द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है। ऐसा होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उन अनुच्छेदों को अध्याय का सहायक होना चाहिए

यह गलत होगा

मौलिक अधिकारों पर यह कहने के लिए कि वे सकारात्मक जनादेश ", यही सकारात्मक जनादेश है

निर्देशक सिद्धांतों में निहित, "कम महत्व के हैं।

भाग III के तहत आदेशों की तुलना में "।

जे. हेगड़े ने वास्तव में अपने व्याख्यानों में एक अन्य स्थान पर बताया कि

" दुर्भाग्य से एक छाप ने जमीन हासिल कर ली है

राज्य के अंग न्यायपालिका को छोड़कर नहीं हैं क्योंकि निर्देश

भाग IV में निर्धारित सिद्धांत अनुच्छेद 37 द्वारा स्पष्ट रूप से बनाए गए हैं। अदालतों द्वारा गैर-प्रवर्तनीय, ये निर्देश केवल पवित्र आशाएँ हैं

(1) [1951] एससीआर 525,:

एफ.

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

327

बॉट तत्काल ध्यान देने योग्य है। मैं फिर से जोर देता हूं कि नहीं

संविधान का हिस्सा भाग IV से अधिक महत्वपूर्ण है।

भाग IV की उपेक्षा करने का अर्थ है इस में दिए गए पोषण की उपेक्षा करना।

संविधान, राष्ट्र के लिए आशाएं और आदर्श

जिस पर हमारा संविधान बना है। (जोर दिया गया)।

मैं हेगड़े, जे. द्वारा दिए गए इस विचार का पूरी तरह से समर्थन करता हूं और अपना पूरा विचार व्यक्त करता हूं।

इसके साथ सहमति।

मैं यह भी बता सकता हूं कि केवल इसलिए कि निर्देशक सिद्धांत

होफेल्डियन वर्गीकरण के प्रति जुनूनी जिसके बारे में हम सोचते हैं अधिकारों, स्वतंत्रताओं, शक्तियों और विशेषाधिकारों के साथ हमेशा जुड़ा हुआ है

कर्तव्य, कोई अधिकार, दायित्व और प्रतिरक्षा की संबंधित अवधारणा।

हमें उन दायित्वों या कर्तव्यों की कल्पना करना मुश्किल लगता है जो नहीं करते हैं।

दूसरों में संबंधित अधिकार बनाएँ। लेकिन होहफेल्डियन अवधारणा सभी प्रकार के न्यायिक संबंधों में संतोषजनक विश्लेषण प्रदान नहीं करती है।

जहाजों और कुछ मामलों में टूट जाता है जहां यह कहना संभव नहीं है

कि एक में कर्तव्य दूसरे में एक प्रवर्तनीय अधिकार पैदा करता है। वहाँ

एक नियम हो सकता है जो किसी व्यक्ति या लेखक पर एक दायित्व लगाता है और फिर भी यह कानून की अदालत में लागू करने योग्य नहीं हो सकता है और इसलिए

किसी अन्य व्यक्ति में संबंधित प्रवर्तनीय अधिकार को जन्म नहीं देना।

लेकिन यह अभी भी एक कानूनी नियम होगा क्योंकि यह ऐसे व्यक्ति या प्राधिकारी द्वारा पालन किए जाने वाले अनुबंध के मानदंड को निर्धारित करता है। कानून ऐसा कर सकता है

इस दायित्व के प्रवर्तन के लिए एक तंत्र प्रदान करें, लेकिन दायित्व का अस्तित्व इस तरह के तंत्र के निर्माण पर निर्भर नहीं करता है। दायित्व प्रवर्तन के तंत्र से पहले और स्वतंत्र रूप से मौजूद है। किसी दायित्व या कर्तव्य को लागू करने वाला नियम

(इसलिए यह कानून का शासन नहीं रहेगा क्योंकि इसके आदेश को लागू करने के लिए कोई नियमित न्यायिक या अर्ध-न्यायिक तंत्र नहीं है।

इसके प्रवर्तन से संबंधित किसी भी समस्या के बावजूद ऐसा नियम मौजूद होगा। अन्यथा संविधान के सम्मेलन और यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियम भी अब कानून के नियम के रूप में माने जाने के लिए उत्तरदायी नहीं होंगे। प्रोफेसर की राय से यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से समर्थित है। ए. एल. गुडहार्ट, जो इस मुद्दे पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं:

" मैंने हमेशा तर्क दिया है कि अगर एक सिद्धांत को मान्यता दी जाती है

विधायिका पर बाध्यकारी, तो इसे सही ढंग से वर्णित किया जा सकता है

एक कानूनी नियम भले ही कोई अदालत न हो जो इसे लागू कर सके। इस प्रकार

ब्रिटिश संविधान पर डाइसी की अधिकांश पुस्तक संबंधित है।

कुछ सामान्य सिद्धांतों के साथ जिन्हें संसद मान्यता देती है

उस पर बंधन "।

इसलिए, मेरे विचार से, यह संदेह से परे स्पष्ट है कि केवल इसलिए कि निदेशक सिद्धांत अदालत में लागू करने योग्य नहीं हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि वे [1981] 1 एस. सी. आर. पर बाध्यकारी दायित्व या कर्तव्यों का निर्माण नहीं कर सकते हैं।

राज्य। महत्वपूर्ण परीक्षा जो लागू की जानी है वह यह है कि क्या निदेशक सिद्धांत राज्य पर कोई दायित्व या कर्तव्य अधिरोपित करते हैं; यदि वे करते हैं, तो राज्य एक संवैधानिक जनादेश द्वारा पालन करने के लिए बाध्य होगा।

ऐसे दायित्व या कर्तव्य, भले ही किसी में कोई संबंधित अधिकार नहीं बनाया गया हो जिसे अदालत में लागू किया जा सके।

अब इस प्रश्न पर अनुच्छेद 37 जोरदार है और इस बात को स्पष्ट करता है।

बिना किसी अनिश्चितता के। इसमें कहा गया है कि निदेशक सिद्धांत "फिर भी देश के शासन में मौलिक हैं और यह

इन सिद्धांतों को कानून बनाने में लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

कॉन द्वारा उपयोग की जाने वाली अधिक स्पष्ट भाषा नहीं हो सकती थी

निर्देशात्मक सिद्धांतों को राज्य के लिए बाध्यकारी बनाने के लिए संविधान निर्माता

अनुच्छेद 37 में निहित इस जनादेश को पूरा करने का दायित्व। वास्तव में, निदेशक सिद्धांतों का पालन न करना असंवैधानिक होगा।

राज्य की ओर से राष्ट्रीय और यह न केवल एक

इस संवैधानिक ओ. बी. एल. को लागू करने वाले लोगों के साथ विश्वास का उल्लंघन राज्य पर प्रतिबंध लेकिन यह कॉन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी प्रदान करेगा

कथन अर्थहीन और व्यर्थ है। अब यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि

निदेशक सिद्धांतों के उद्देश्य के लिए, "राज्य" के पास समान है

जिसका अर्थ अनुच्छेद 13 के अधीन निधि के प्रयोजन के लिए दिया गया है।

मानसिक अधिकार। इसका मतलब यह होगा कि वही राज्य जो मौलिक के उल्लंघन में कोई भी कार्रवाई करने से प्रतिबंधित

अधिकारों को अनिश्चित शब्दों में कहा गया है कि उन्हें निर्देश का सम्मान करना चाहिए। देश के शासन में मौलिक सिद्धांत और हैं

कानून बनाने में उन्हें लागू करने के लिए सकारात्मक रूप से अनिवार्य। यह जन्म देता है।

एक विरोधाभासी स्थिति और इसके निहितार्थ पहुँचने के लिए हैं। द.

एक ओर राज्य संवैधानिक निषेधाज्ञा द्वारा निषिद्ध है।

अनुच्छेद 13 में कोई कानून बनाने या कोई कार्यकारी कार्रवाई करने से

जो किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन करेगा और साथ ही

यह अनुच्छेद 37 में संवैधानिक जनादेश द्वारा लागू करने के लिए निर्देशित किया गया है

निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून। दोनों संवैधानिक हैं। राज्य के राष्ट्रीय दायित्व और सवाल यह है कि किसे

जब दोनों के बीच संघर्ष होता है तो प्रबल होता है। जब राज्य एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए एक कानून बनाता है, यह वहन कर रहा है

अनुच्छेद 37 के तहत एक संवैधानिक दायित्व और यदि यह होना था

उन्होंने कहा कि राज्य इस तरह का कानून नहीं बना सकता क्योंकि यह

मौलिक अधिकार के साथ संघर्ष, यह केवल इस आधार पर हो सकता है कि

मौलिक अधिकार उच्च स्तर पर हैं और उन्हें प्राथमिकता दी जाती है

निर्देशक सिद्धांतों पर। लेकिन, जैसा कि हमने ऊपर बताया है, यह है

यह कहना सही नहीं है कि हमारी संवैधानिक योजना के तहत, मौलिक

अधिकार निर्देशक सिद्धांतों या उस निर्देशक सिद्धांतों से श्रेष्ठ हैं।

मौलिक अधिकारों के आगे झुकना चाहिए। वास्तव में दोनों समान हैं।

इसलिए मौलिक और अदालतों ने हाल के दिनों में माइनरवा मिल्स लिमिटेड का प्रयास किया है।

वी. यूनियन (भगवती, जे.)

329

मौलिक अधिकारों के निर्माण में निदेशक सिद्धांतों को लागू करके उनका सामंजस्य स्थापित करें। इस न्यायालय के हाल के निर्णयों में यह निर्धारित किया गया है कि मौलिक अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंध की तर्कसंगतता निर्धारित करने के उद्देश्य से, न्यायालय वैध रूप से निदेशक सिद्धांतों को ध्यान में रख सकता है और जहां कार्यकारी कार्रवाई की जाती है या किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित कानून, मौलिक अधिकार पर उसके द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को उचित माना जा सकता है। मैं इस राय को उन सभी तय किए गए मामलों के संदर्भ में भारित करने का प्रस्ताव नहीं करता, जहां न्यायालय द्वारा इन सिद्धांतों का पालन किया गया है, लेकिन मैं केवल एक निर्णय का उल्लेख कर सकता हूं, जो मुझे लगता है कि इस मुद्दे पर नवीनतम है, अर्थात्, पथुम्मा बनाम। केरल राज्य (1), जहाँ फजल अली, जे. सुम्मा ने निम्नलिखित शब्दों में कानून का प्रतिपादन किया: इस न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षणों में से एक यह है कि कला के खंड (5) द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों की तर्कसंगतता का न्याय करने में। 19 , न्यायालय को राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा। तो बिहार राज्य में भी बनाम। कामेश्वर सिंह (2), इस न्यायालय ने कला में निहित निर्देशक सिद्धांत पर भरोसा किया। 39 अपने निर्णय पर पहुँचने के लिए कि उद्देश्य

जिसे बिहार जमींदारी उन्मूलन कानून पारित किया गया था, वह एक सार्वजनिक उद्देश्य था। इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया सिद्धांत यह था कि यदि कोई उद्देश्य निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत आता है, तो वह निश्चित रूप से एक सार्वजनिक उद्देश्य हो। यह भी बताया जा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा मेसर्स कस्तूरी लाल लक्ष्मी रेड्डी मामले में हाल ही में दिए गए एक फैसले में

आदि: वी. जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्र। (3), यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सरकार की प्रत्येक कार्यकारी कार्रवाई, चाहे उसके अनुसरण में हो कानून या अन्यथा, तर्कसंगत होना चाहिए और सार्वजनिक हित के साथ सूचित होना चाहिए और तर्कसंगतता और औचित्य दोनों को निर्धारित करने के लिए मापदंड होना चाहिए।

लोक हित निदेशक सिद्धांतों में पाया जाता है और इसलिए,

यदि प्रभाव देने के लिए सरकार द्वारा कोई कार्यकारी कार्रवाई की जाती है

एक निदेशक सिद्धांत के लिए, यह प्रथम दृष्टया उचित होगा और

जनहित। अतः यह देखा जाएगा कि यदि इसके लिए कोई कानून बनाया जाता है।

एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने का उद्देश्य और यह लागू करता है

मौलिक अधिकार पर प्रतिबंध, इसकी निंदा करना मुश्किल होगा

ऐसा प्रतिबंध जो अनुचित हो या सार्वजनिक हित में न हो। तो भी।

जहाँ एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए एक कानून अधिनियमित किया जाता है

सामाजिक और आर्थिक न्याय के संवैधानिक लक्षय को आगे बढ़ाना

यह समानता के एक औपचारिक और सैद्धांतिक दृष्टिकोण के साथ संघर्ष कर सकता है।

कानून से पहले, लेकिन यह लगभग हमेशा सिद्धांत के अनुरूप होगा कानून के समक्ष अपने कुल परिमाण और आयाम में समानता की,

क्योंकि संविधान में समानता खंड अधिक की बात नहीं करता है

कानून के समक्ष औपचारिक समानता लेकिन वास्तविक और वास्तविक की अवधारणा का प्रतीक है।

(1) [1978] 2 एससीआर 537।

(2) [1952] एससीआर 889। (3) [1980] 3 एससीआर 1338।

मूल समानता जो कारण से उत्पन्न होने वाली असमानताओं पर प्रहार करती है

विशाल सामाजिक और आर्थिक अंतर और इसके परिणामस्वरूप सामाजिक और आर्थिक न्याय का एक अनिवार्य घटक है। गतिशील

समतावाद का सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा को पुष्ट करता है; यह इसके आवश्यक तत्वों में से एक है और जहां समतावादी सिद्धांत का उल्लंघन होता है, वहां कोई वास्तविक सामाजिक और आर्थिक न्याय नहीं हो सकता है। यदि, इसलिए, विधायिका द्वारा ऐसा कोई कानून

अधिनियमित किया जाता है जो सामाजिक और आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से है, तो यह कहना मुश्किल होगा कि ऐसा कानून समतावाद के सिद्धांत का उल्लंघन करता है और कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है जिसे इसके सख्त और औपचारिक अर्थों में नहीं, बल्कि इसके गतिशील और सक्रिय परिमाण में समझा जाता है। इन परिस्थितियों में, न्यायालय यह अनुमान लगाने में अन्यायपूर्ण नहीं होगा कि सामाजिक और आर्थिक न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तव में अधिनियमित एक कानून, अनुच्छेद 14 या 19 के तहत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करेगा। वास्तव में एक प्रख्यात न्यायविद श्री सी. एच. अलेक्जेंड्रोविक कहते हैं: भाग IV को लागू करने वाले विधान को भाग III पर अनुमत प्रतिबंधों के रूप में माना जाना चाहिए। संविधान के मुख्य रचनाकारों में से एक डॉ. अम्बेडकर ने 18 मई 1951 को लोकसभा में संविधान (प्रथम संशोधन) विधेयक पर चर्चा के दौरान हस्तक्षेप करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि उनके विचार में "जहां तक निहित शक्तियों के सिद्धांत का संबंध है, संविधान में ही संसद को कानून बनाने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त अधिकार है, अर्थात् निदेशक सिद्धांतों में, हालांकि यह विशेष रूप से फंड मानसिक अधिकारों पर भाग में निहित प्रावधानों द्वारा कवर नहीं किया जाएगा"। यदि यह संवैधानिक राष्ट्रीय प्रावधानों की सही व्याख्या है, जैसा कि मैं समझता हूं, तो संशोधित अनुच्छेद 31 सी एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से अधिनियमित कानून को प्रतिरक्षा प्रदान करके संवैधानिक योजना के तहत मौजूदा स्थिति को संहिताबद्ध करने के अलावा और कुछ नहीं करता है, ताकि अनावश्यक रूप से व्यर्थ और समय लेने वाला विवाद हो कि क्या ऐसा कानून अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है या नहीं।

19 हटा दिया जाता है। संशोधित अनुच्छेद 31 सी को परिस्थितियों में संविधान की मूल संरचना का उल्लंघन करने वाला नहीं माना जा सकता है।

लेकिन मैं वैकल्पिक रूप से, तर्क के उद्देश्य से, मान सकता हूं

कि कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अदालत द्वारा यह पाया जा सकता है, शायद मौलिक अधिकार के दायरे और प्रयोज्यता के संकीर्ण और सैद्धांतिक दृष्टिकोण पर जैसा कि करिम्बिल कुन्हीकोमन v में है। केरल राज्य (1) जहां भूमि के बड़े खंडों के धारकों को कम दर पर और भूमि के छोटे खंडों के धारकों को अधिक दर पर मुआवजा देने वाले कानून को इस न्यायालय द्वारा उल्लंघन के रूप में निरस्त कर दिया गया था

समानता खंड, कि एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए वास्तव में और वास्तविक रूप से अधिनियमित एक कानून अनुच्छेद 14 या 19 के तहत मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। के निर्वहन में ऐसा कानून अधिनियमित किया जाएगा

(1) [1962] ( ) 1 एस. सी. आर. 319।

!

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

331

अनुच्छेद 37 के तहत राज्य पर निर्धारित संवैधानिक दायित्व अमान्य होगा, क्योंकि यह मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। यदि अदालत का विचार है कि यह अमान्य है, तो क्या वह मौलिक अधिकारों को निदेशक सिद्धांतों से ऊपर नहीं रखेगी, एक ऐसी स्थिति जो उनके अधिनियमन के इतिहास और मेरे द्वारा पहले से चर्चा की गई संवैधानिक योजना द्वारा भी बिल्कुल समर्थित नहीं है। दो संवैधानिक दायित्व, एक मौलिक अधिकारों के संबंध में और दूसरा निदेशक सिद्धांतों के संबंध में, समान शक्ति और योग्यता के हैं और ऐसा कोई कारण नहीं है कि, यदि या तो टकराव की स्थिति में, पहले वाले को बाद वाले पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मैं पहले ही बता चुका हूं कि कोई विशेष जनादेश है या नहीं।

न्यायसंगत होने का संविधान के महत्व और महत्व से कोई लेना-देना नहीं है और न्याय्यता अपने आप में कभी भी एक संवैधानिक जनादेश को दूसरे की तुलना में उच्च स्तर पर रखने का आधार नहीं हो सकती है। संवैधानिक जनादेश को अधिक महत्व देने का प्रभाव

मौलिक अधिकारों के संबंध में निदेशक सिद्धांतों को एक गौण स्थान पर डाल देना और इस संवैधानिक आदेश को समाप्त करना होगा कि निदेशक सिद्धांत देश के शासन में मौलिक होंगे और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह उन्हें कानून बनाने में लागू करे। यह "देश के शासन में मौलिक" शब्दों को लागू करने से इनकार करने के बराबर होगा और एक संवैधानिक आदेश जिसे संविधान द्वारा मौलिक घोषित किया गया है, उसे गैर-मौलिक बना दिया जाएगा। परिणाम यह होगा कि राज्य को कानून बनाने का आदेश देने वाले संविधान के सकारात्मक जनादेश को मौलिक अधिकार का अतिक्रमण नहीं करने के नकारात्मक संवैधानिक दायित्व से पराजित किया जाएगा और सकारात्मक संवैधानिक आदेश के अनुसार विधायिका द्वारा बनाए गए कानून को अमान्य कर दिया जाएगा और असंवैधानिक घोषित कर दिया जाएगा। यह स्पष्ट रूप से संवैधानिक योजना के विपरीत होगा क्योंकि, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, संविधान एक उच्च स्थान प्रदान नहीं करता है। निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक दायित्व पर मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व के लिए और यह नहीं कहता है कि निदेशक सिद्धांतों का कार्यान्वयन केवल मौलिक मानसिक अधिकारों पर अध्याय में निर्धारित अनुमेय सीमाओं के भीतर होगा। श्री पालखीवाला के तर्क का मुख्य जोर यह था कि अनुच्छेद 31 सी के संशोधन के कारण, मौलिक अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों के बीच सामंजस्य और संतुलन बिगड़ गया है, क्योंकि मौलिक अधिकार, जो संशोधन से पहले, निदेशक सिद्धांतों पर प्राथमिकता रखते थे, अब संशोधन के परिणामस्वरूप, निदेशक सिद्धांतों के अधीन कर दिए गए हैं। श्री पालखीवाला ने संशोधन के परिणामस्वरूप उभरने वाली स्थिति का चित्रमय वर्णन करते हुए कहा कि अब संविधान बनाया गया है पैरों के बजाय सिर पर खड़े हो जाएँ। लेकिन मेरे विचार में श्री पालखीवाला का यह तर्क जिस पूरे आधार पर आधारित है, वह गलत है।

क्योंकि यह कहना सही नहीं है, और मेरे पास पिछले भागों में है

इस विचार के ठोस कारणों को देखते हुए, कि मौलिक अधिकारों का स्थान बेहतर या ऊँचा था

निर्देशात्मक सिद्धांतों की तुलना में संवैधानिक योजना में और वहाँ है

तदनुसार संविधान के किसी भी विध्वंस का कोई सवाल ही नहीं है। संशोधन द्वारा संरचना। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि इरादे

संविधान निर्माताओं का कहना था कि मौलिक अधिकारों को

सामाजिक-आर्थिक संरचना या व्यापक निरंतरता के भीतर कार्य करना।

निदेशक सिद्धांतों द्वारा परिकल्पित, केवल तब के लिए

मौलिक अधिकार सभी के लिए प्रयोग करने योग्य और एक उचित संतुलन बन जाते हैं। और मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों के बीच सामंजस्य

सुरक्षित किया गया। इसलिए संविधान निर्माताओं ने कभी इस पर विचार नहीं किया कि

इस संबंध में संवैधानिक दायित्व के बीच एक संघर्ष उत्पन्न होगा

के संबंध में मौलिक अधिकारों और संवैधानिक जनादेश के लिए

निर्देशक सिद्धांत। लेकिन अगर इन दोनों के बीच कोई टकराव पैदा होता है

· समान मौलिक चरित्र के संवैधानिक आदेश, कैसे है

क्योंकि संविधान द्वारा ऐसी स्थिति की उम्मीद नहीं की गई थी इसलिए निर्माताओं और इस समस्या को संसद द्वारा हल किया जाना था।

और इसे समाप्त करने के लिए कुछ कार्यप्रणाली विकसित करनी पड़ी

संघर्ष की संभावना चाहे वह कितनी भी दूर क्यों न हो। रास्ता यह था

जवाहरलाल नेहरू द्वारा बिना किसी अनिश्चित शब्दों में दिखाया गया जब उन्होंने कहा

संविधान पर चर्चा के दौरान लोकसभा (प्रथम)

संशोधन) विधेयक:

" राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत एक गतिशील नीति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

एक निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ें। मौलिक अधिकार

कुछ अधिकारों को संरक्षित करने के लिए जो मौजूद हैं, कुछ स्थिर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

ऐसा होता है कि वह गतिशील गति और वह स्थिर ठहराव एक-दूसरे में पूरी तरह से फिट नहीं।

एक निश्चित उद्देश्य की दिशा में गतिशील आंदोलन की आवश्यकता है।

आंदोलन। अब यह हो सकता है कि गतिशील की प्रक्रिया में कुछ मौजूदा संबंधों में परिवर्तन, विविधता या

प्रभावित हुए। वास्तव में, वे उन स्थापित संबंधों को प्रभावित करने के लिए होते हैं

जहाजों और फिर भी यदि आप मौलिक अधिकारों पर वापस आते हैं तो वे

ये कुछ निश्चित संबंधों को संरक्षित करने के लिए होते हैं, अप्रत्यक्ष रूप से नहीं।

दोनों दृष्टिकोणों में एक निश्चित संघर्ष है, स्वाभाविक रूप से नहीं,

क्योंकि इसका मतलब यह नहीं था, मुझे पूरा यकीन है। लेकिन ऐसा भी है

थोड़ी सी कठिनाई और स्वाभाविक रूप से जब देश की अदालतों को

इन मामलों पर विचार करें कि उन्हें इस पर अधिक जोर देना होगा निदेशक सिद्धांतों की तुलना में मौलिक अधिकार। इसका परिणाम

यह है कि संविधान के पीछे का पूरा उद्देश्य, जो था इसका अर्थ एक गतिशील संविधान होना है जो एक निश्चित लक्षय कदम की ओर ले जाता है।

:

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

चरण द्वारा, कुछ हद तक स्थिर तत्व द्वारा बाधित और बाधित है गतिशील तत्व की तुलना में थोड़ा अधिक जोर दिया जा रहा है।

यदि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा में आप व्यक्तिगत की भी रक्षा करते हैं।

या समूह असमानता, फिर आप उस निर्देश के साथ संघर्ष में आते हैं

एक ऐसा सिद्धांत जो आपके अपने संविधान के अनुसार चाहता है।

एक क्रमिक प्रगति, या हम इसे दूसरे तरीके से रखते हैं, इतना क्रमिक नहीं

लेकिन अधिक तेजी से प्रगति, जब भी संभव हो एक राज्य के लिए जहाँ

असमानता कम से कम और समानता अधिक से अधिक होती जा रही है। अगर

व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के लिए किसी भी प्रकार की अपील है इसका अर्थ मौजूदा की निरंतरता के लिए एक अपील के रूप में माना जाता है

असमानता, तब आप कठिनाइयों में पड़ जाते हैं। तब आप स्थिर हो जाते हैं, प्रगतिहीन और बदल नहीं सकते और आप आदर्श को महसूस नहीं कर सकते।

एक समतावादी समाज जिसका हम में से अधिकांश लोग लक्षय रखते हैं।

संसद ने यह विचार रखा कि अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व को अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व से अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि मौलिक अधिकार भले ही मुख्य रूप से लोकतांत्रिक जीवन शैली को कलंकित करने के लिए बहुमूल्य और मूल्यवान हैं, लेकिन गरीबों, दलितों और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए बिल्कुल कोई अर्थ नहीं है, जो दुर्भाग्य से भारत के लोगों का बड़ा हिस्सा हैं और उनके लिए मौलिक अधिकारों को सार्थक बनाने का एकमात्र तरीका निर्देशक सिद्धांतों को लागू करना है, क्योंकि निदेशक सिद्धांतों का उद्देश्य एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति लाना और एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था बनाना है, जिसमें सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा, न केवल कुछ भाग्यशाली लोगों के लिए, बल्कि सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा। अतः संसद ने अनुच्छेद 31सी में संशोधन किया -

बशर्ते कि संघर्ष के मामले में निदेशक सिद्धांतों के पास होगा

अनुच्छेद 14 और 19 में मौलिक अधिकारों पर वरीयता और

उत्तरार्द्ध पूर्ववर्ती को स्थान देगा। सकारात्मक संवैधानिक

निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने का आदेश अतिक्रमण न करने के नकारात्मक संवैधानिक दायित्व पर हावी होगा

इस संशोधन को करने में महान दर्शन द्वारा प्रेरित किया गया था वाक्पटुता से अत्यधिक प्रेरक और उत्तेजक शब्दों में व्यक्त किया गया

जुनून और भावना, चंद्रचूड़, जे. (जैसा कि वे तब थे) द्वारा

रिपोर्ट के पृष्ठ 991 पर केशवानंद भारती के मामले में निर्णय।

इस पर जे. चंद्रचूड़ (जैसा कि वे उस समय थे) ने जो कहा था, मैं उसे यहां उद्धृत कर सकता हूं।

अवसर, क्योंकि यह प्रशंसनीय रूप से उस दर्शन को निर्धारित करता है जिसने प्रेरित किया

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन को अधिनियमित करने में संसद। विद्वान।

न्यायाधीश ने कहा:

" मैंने अपने निर्णय के पहले भाग में कहा है कि

संविधान मौलिक अधिकारों को गौरव का स्थान देता है और

1

ना.

[1981] 1 एस सी आर।

4

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

निदेशक सिद्धांतों के लिए स्थायित्व का स्थान। मैं खड़ा हूँ। जो मैंने कहा है। हमारे संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि

संविधान का उद्देश्य भारत को एक संप्रभु देश बनाना है

लोकतांत्रिक गणराज्य और "अपने सभी नागरिकों" के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक-स्वतंत्रता और समानता। मौलिक

अधिकार जो संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त और गारंटीकृत हैं।

संविधान निस्संदेह संविधान का कवच है।

और उनके बिना एक आदमी की पहुंच उसकी पकड़ से अधिक नहीं होगी। लेकिन

इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि राज्य के निदेशक सिद्धांत देश के शासन में नीति मौलिक है। क्या?

निश्चित रूप से देश के शासन में मौलिक नहीं हो सकता है

व्यक्तिगत। कि एक न्यायसंगत है और दूसरा नहीं दिखा सकता है बाद वाले को लागू करने योग्य बनाने में आंतरिक कठिनाइयाँ

कानूनी प्रक्रियाएँ लेकिन यह अंतर उनके रिश्तेदार पर नहीं पड़ता है

आजीविका के साधन; मानवीय स्थितियों को प्राप्त करने का अधिकार एक सभ्य जीवन स्तर और जीवन का पूरा आनंद सुनिश्चित करने के लिए कार्य करना।

अवकाश; और स्वास्थ्य और पोषण के स्तर को बढ़ाना नहीं है

न्यायालय के रिट के अनुपालन के लिए मामले। जैसे मैं देख रहा हूँ

भाग III और IV के प्रावधानों में, मुझे कोई संदेह नहीं है कि

व्यक्तियों को स्वतंत्रता प्रदान करना अंतिम उद्देश्य है।

भाग IV में निर्धारित आदर्शों की प्राप्ति। सावधानीपूर्वक उपयोग करें भाग III द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रताओं में से जो कम करने के लिए बाध्य है

आम भलाई लेकिन प्रतिबंधों के लिए स्वैच्छिक समर्पण एक फिलो है सोफर का सपना। अतः अनुच्छेद 37 राज्य को लागू करने का अधिकार देता है।

कानून बनाने में निर्देशक सिद्धांत। कुछ लोगों की स्वतंत्रता

सभी की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए उन्हें संक्षिप्त किया जाए। यह इस अर्थ में है कि भाग III और IV, जैसा कि ग्रैनविल ने कहा है

ऑस्टिन (1), एक साथ "संविधान की अंतरात्मा" का गठन करता है।

राष्ट्र आज इतिहास के चौराहे पर खड़ा है और

वाक्यांश के समय सम्मानित स्थान का आदान-प्रदान करते हुए, क्या मैं कह सकता हूं कि

कुल मिलाकर, कुछ लोगों की स्वतंत्रता कई लोगों की दया पर होगी और फिर सभी स्वतंत्रताएँ समाप्त हो जाएंगी। इसलिए, संरक्षित करने के लिए

अपनी स्वतंत्रता, विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोगों को इसका एक हिस्सा अलग करना चाहिए।

संसद ने अनुच्छेद 31 सी में संशोधन करके ठीक यही हासिल किया है।

अयामेंट ने अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया क्योंकि इसने महसूस किया

" यदि राज्य ऐसी स्थितियाँ पैदा करने में विफल रहता है जिनमें मौलिक

डोम्स का आनंद सभी ले सकते हैं, कुछ की स्वतंत्रता पर होगी(1) भारतीय संविधान-एक राष्ट्र की आधारशिला, एड। 1966 .

{

¡

"

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

335

कई और फिर सभी स्वतंत्रताओं की दया गायब हो जाएगी "और" इसलिए, अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए, कुछ विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को इसका एक हिस्सा अलग करना होगा "। मुझे यह समझना मुश्किल लगता है कि यह कैसे कहा जा सकता है कि संविधान की मूल संरचना प्रभावित होती है, जब समान रूप से मौलिक चरित्र के दो संवैधानिक जनादेशों के बीच संभावित दूरस्थ संघर्ष को हल करने के लिए एक कार्यप्रणाली विकसित करने के लिए, संसद अनुच्छेद 31 सी के संशोधन के माध्यम से निर्णय लेती है कि इस तरह के संघर्ष की स्थिति में, अनुच्छेद 14 और 19 के तहत मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक जनादेश के संबंध में निर्देशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक जनादेश प्रबल होगा। अनुच्छेद 31 सी में संशोधन संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुँचाने के अलावा, कुछ व्यक्तियों के अधिकारों के खिलाफ समुदाय के सदस्यों के अधिकारों को मौलिक महत्व देकर और एक ऐसी समतावादी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए संविधान के उद्देश्य को आगे बढ़ाते हुए इसे मजबूत और फिर से लागू करता है, जहां सभी के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा, देश में मानवता के कम दृश्यता वाले क्षेत्रों सहित हर कोई मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम होगा और व्यक्ति की गरिमा और मानव व्यक्ति का मूल्य जो पोषित मूल्य हैं, केवल कुछ लोगों के अनन्य विशेषाधिकार नहीं रहेंगे, बल्कि कई लोगों के लिए एक जीवित वास्तविकता बन जाएंगे। इसके अतिरिक्त, जहां तक अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के खिलाफ संरक्षण का संबंध है, इस प्रश्न को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। समतावाद का सिद्धांत, जैसा कि मैंने पहले कहा था, सामाजिक और आर्थिक न्याय का एक अनिवार्य तत्व है और इसलिए, जहां सामाजिक और आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने की दृष्टि से एक निदेशक सिद्धांत को

प्रभावी बनाने के लिए एक कानून बनाया जाता है, यह समतावादी सिद्धांत के विपरीत नहीं होगा और इसलिए मूल संरचना का उल्लंघन नहीं होगा, भले ही यह संकीर्ण और औपचारिक अर्थों में कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन करता हो। कोई भी कानून जो वास्तव में और वास्तव में एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए है, समतावादी सिद्धांत के साथ असंगत नहीं हो सकता है और इसलिए,

अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के खिलाफ संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत इसे दिए गए संरक्षण से मूल संरचना को नुकसान नहीं हो सकता है। इसलिए मुझे यह समझ में नहीं आता कि अनुच्छेद 31 सी के संशोधन में मूल संरचना का कोई उल्लंघन कैसे शामिल है। वास्तव में, एक बार जब हम स्वीकार करते हैं

केशवानंद में बहुमत के निर्णय द्वारा निर्धारित प्रस्ताव

भारती का मामला कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी संवैधानिक था

वैध, यह केवल इस आधार पर हो सकता है कि इसने संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट नहीं किया और इसके अलावा 9 मई, 1980 को वामन राव के मामले में दिए गए आदेश में यह न्यायालय स्पष्ट रूप से

अभिनिर्धारित किया कि असंशोधित अनुच्छेद 31 सी "किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचाता है

संविधान या इसकी मूल संरचना की बुनियादी या आवश्यक विशेषताएं, "और यदि ऐसा है, तो यह समझना मुश्किल है कि कैसे संशोधित टी

अनुच्छेद 31 सी को मूल संरचना का उल्लंघन करने वाला कहा जा सकता है। यदि अनुच्छेद 14 और 19 में सन्निहित मौलिक अधिकारों का बहिष्करण निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए वैध रूप से किया जा सकता है।

मूल संरचना को प्रभावित किए बिना अनुच्छेद 39 के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित किया गया है। मुझे समझ में नहीं आता कि ये मौलिक अधिकार क्यों नहीं हो सकते।

अन्य निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए बाहर रखा गया। यदि अनुच्छेद 39 के खंड (ख) और (ग) में निर्धारित निदेशक सिद्धांतों के संबंध में संवैधानिक दायित्व को मौलिक अधिकारों के संबंध में संवैधानिक दायित्व से अधिक प्राथमिकता दी जा सकती है।

अनुच्छेद 14 और 19 के तहत, सिद्धांत रूप में ऐसा कोई कारण नहीं है कि ऐसा क्यों है

संवैधानिक दायित्व को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है।

अन्य निदेशक सिद्धांतों के लिए जो एक ही आधार पर खड़े हैं। यह.

मेरे विचार से, संशोधित अनुच्छेद 31 सी को लागू करना असंगत होगा।

अमान्य है जब असंशोधित अनुच्छेद 31 सी को वैध माना गया है केशवानंद भारती के मामले में बहुमत के निर्णय द्वारा और

वामन राव के मामले में 9 मई, 1980 को आदेश दिया गया।

याचिकाकर्ताओं की ओर से श्री पालखीवाला ने हालांकि तर्क दिया

कि अनुच्छेद 31 सी के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर था जैसा कि यह पहले था '

इसके संशोधन और संशोधित अनुच्छेद 31 सी के लिए, क्योंकि

असंशोधित अनुच्छेद 31 सी में केवल कुछ श्रेणियों के कानून हैं, अर्थात् - निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित किए गए

अनुच्छेद के खंड (बी) और (सी) में निर्धारित 39 के खिलाफ संरक्षित थे

अनुच्छेद 14 और 19 के तहत चुनौती, जबकि के तहत स्थिति

संशोधित अनुच्छेद 31 सी में कहा गया था कि व्यावहारिक रूप से हर कानून इससे मुक्त होगा

ऐसी चुनौती से क्योंकि यह एक निर्देश के लिए संदर्भित होगा

सिद्धांत या अन्य और परिणाम यह होगा कि मौलिक

अनुच्छेद 14 और 19 में अधिकार अर्थहीन और व्यर्थ हो जाएंगे।

और सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, संविधान में मृत पत्र होगा।

के प्रयोजन के लिए अधिनियमित कानूनों को प्रतिरक्षा देने का प्रभाव

निदेशात्मक सिद्धांतों में से किसी एक या अधिक को प्रभावी बनाने के लिए,

श्री पालखीवाला के अनुसार, वास्तविकता में रहें और मिटाने के लिए तैयार रहें

संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 को हटाना और जो प्रभावित करेगा

कि वे कानून जो संशोधित अनुच्छेद 31 सी द्वारा संरक्षित थे किसी को भी सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए कानून

एक या अधिक निदेशक सिद्धांत और प्रत्येक कानून होगा

इस विवरण के भीतर समझा गया क्योंकि यह सक्षम नहीं होगा

अदालत को नीति के प्रश्नों में प्रवेश करने और यह निर्धारित करने के लिए कि क्या

किसी विशेष कानून में अपनाई गई नीति की गणना किसी भी सुरक्षा के लिए की जाती है।

राज्य द्वारा दावा किया गया निदेशक सिद्धांत। शब्दों का प्रयोग

" राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून ", श्री पालखीवाला ने कहा,

मानदंड में काफी अनिश्चितता पेश की जिसके साथ यह तय करें कि क्या कोई विशेष कानून में दिए गए विवरण के अंतर्गत आता है!

!

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड। वी. यूनियन (भगवती, जे.)

337

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया गया और इसके दायरे और प्रयोज्यता का विस्तार किया गया

संशोधित अनुच्छेद ताकि द्वारा दावा किए गए लगभग हर कानून को शामिल किया जा सके

इस तरह के विवरण के दायरे में आने के लिए कहें। यह तर्क प्रस्तुत किया गया था

श्री पालखीवाला बहुत बल और खोज के साथ लेकिन ऐसा नहीं करते हैं

' मुझे अपील करें और मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। यह भाषा से स्पष्ट है

संशोधित अनुच्छेद 31 सी का कि वह कानून जो इससे संरक्षित है

अनुच्छेद 14 और 19 के तहत चुनौती नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून है।

सभी या किसी भी निदेशक सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य का।

जब भी, इसलिए, किसी कानून के लिए किसी भी संरक्षण का दावा किया जाता है अनुच्छेद 31 सी में संशोधन, न्यायालय के लिए यह जांच करना आवश्यक है कि क्याकिसी एक या अधिक निदेशक सिद्धांतों को सुरक्षित करने की दिशा में राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाया गया है और यह केवल तभी है जब न्यायालय न्यायिक जांच के परिणामस्वरूप इतना संतुष्ट हो, कि न्यायालय संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण प्रदान करेगा

इस तरह के कानून। अब यह निस्संदेह सच है कि संशोधित अनुच्छेद में उपयोग किए गए शब्द "राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाले कानून" हैं, लेकिन राज्य की नीति जिस पर विचार किया जाता है, वह एक या अधिक निदेशक सिद्धांतों को सुरक्षित करने की नीति है। निर्देशात्मक सिद्धांतों को सुरक्षित करना राज्य का संवैधानिक दायित्व है और यह वह नीति है जिसे राज्य को अपनाना आवश्यक है और जब निर्देशात्मक सिद्धांतों को लागू करने की इस नीति के अनुसरण में कोई कानून बनाया जाता है और यह एक निर्देशात्मक सिद्धांत को प्रभावी बनाने का प्रयास करता है, तो व्याकरण और भाषा दोनों के दृष्टिकोण से यह कहना सही होगा कि यह ऐसे निर्देशात्मक सिद्धांत को सुरक्षित करने के लिए राज्य की नीति को प्रभावी बनाने के लिए बनाया गया है। "राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून" शब्द इतने व्यापक नहीं हैं कि

श्री पालखीवाला के पास यह होगा, लेकिन जिस संदर्भ और टकराव में वे होते हैं, उनका उद्देश्य केवल एक या अधिक निदेशक सिद्धांतों को लागू करने या प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अधिनियमित कानून का उल्लेख करना है। इसलिए जिस न्यायालय के समक्ष संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत किसी विशेष कानून के लिए संरक्षण का दावा किया जाता है, उसे इस बात की जांच करनी होगी कि क्या ऐसा कानून किसी निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है, तभी उसे संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण मिलेगा। अब सवाल यह है कि यह निर्धारित करने के लिए क्या परीक्षण होना चाहिए कि क्या एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए एक कानून लागू किया गया है। एक बात स्पष्ट है कि राज्य द्वारा प्रस्तुत किए गए उस प्रभाव के दावे का कोई अर्थ या मूल्य नहीं होगा; यह न्यायालय है जिसे प्रश्न का निर्धारण करना होगा। पुनः यह पर्याप्त नहीं है कि कानून के प्रावधान और निर्देश के बीच कुछ संबंध हो सकता है। सिद्धांत। संबंध कानून और निदेशक सिद्धांत के बीच होना चाहिए और यह एक वास्तविक और ठोस संबंध होना चाहिए। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या कोई कानून इस परीक्षण को संतुष्ट करता है, अदालत को तथ्य और सार, वास्तविक एक्स की जांच करनी होगी।

कानून की प्रकृति और चरित्र के साथ-साथ इसकी रचना और विषय भी अपने उद्देश्य और दायरे के साथ इसके द्वारा निपटाए गए पदार्थ। अगर ऐसा है तो जाँच, अदालत ने पाया कि कानून का प्रमुख उद्देश्य है निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए, यह संरक्षण प्रदान करेगा

संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत कानून। लेकिन अगर अदालत को पता चलता है सिद्धांत, सार और सार में है। एक को पूरा करने के लिए अनधिकृत उद्देश्य-कवर नहीं किए जाने के अर्थ में अनधिकृत किसी भी निदेशक सिद्धांत द्वारा, इस तरह के कानून को संरक्षण नहीं होगा संशोधित अनुच्छेद 31 सी। द्वारा दिए गए चित्रण को लेना। खन्ना, जे. केशवानंद भरत के मामले में पृष्ठ 745 पर रिपोर्ट करें, "एक कानून बनाया जा सकता है कि राज्य में पुराने निवासियों के रूप में

आर्थिक रूप से पिछड़े हैं और जो यहां नहीं रहे हैं तीन पीढ़ियों से अधिक समय से राज्य में एक समृद्ध व्यवसाय है राज्य या राज्य में संपत्ति अर्जित की है, वे वंचित होंगे उनके व्यवसाय और संपत्ति को उसी में निहित करने की दृष्टि से राज्य के पुराने निवासी "। यह संभव हो सकता है, प्रदर्शन करने के बाद जिसे मैं एक पुरातात्विक कार्रवाई कह सकता हूं, कुछ की खोज करने के लिए इस तरह के कानून और कुछ निर्देशों

के बीच के कमजोर संबंध को दूर करें सिद्धांत, लेकिन इस तरह के कानून का प्रमुख उद्देश्य होगा, जैसा कि बताया गया है

श्री एच. एम. सीरवई द्वारा दूसरे खंड के पृष्ठ 1559 पर प्रकाशित "भारत के संवैधानिक कानून" पर उनकी पुस्तक, "को लागू करने के लिए एक और राज्य, और एक व्यावहारिक अर्थ में, उन्हें इससे बाहर निकालने के लिए ", और ऐसा कानून संशोधित अनुच्छेद 31 सी द्वारा संरक्षित नहीं होगा। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं लेकिन मैं अनावश्यक रूप से नहीं देना चाहता।संशोधित अनुच्छेद 31 सी किसी ऐसे कानून को संरक्षण नहीं देता है जिसने केवल एक निर्देशक सिद्धांत के साथ कुछ दूरस्थ या कमजोर संबंध।

जो आवश्यक है वह यह है कि एक वास्तविक और सारवान होना चाहिए। संबंध और कानून का प्रमुख उद्देश्य प्रभाव देना होना चाहिएनिदेशक सिद्धांत के लिए, और वह एक ऐसा मामला है जिसे न्यायालय करेगा संशोधन के तहत संरक्षण के लिए किसी भी दावे से पहले निर्णय लेना होगा अनुच्छेद 31 सी की अनुमति दी जा सकती है।

एक अन्य पहलू भी है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है। इससे पहले कि संशोधित अनुच्छेद के तहत किसी कानून को संरक्षण दिया जा सके31 सी. यहां तक कि जहां किसी कानून का प्रमुख उद्देश्य प्रभाव देना है एक निदेशक सिद्धांत, यह कानून का हर प्रावधान नहीं है जो है संरक्षण का दावा करने का अधिकार। संशोधित में उपयोग किए गए शब्द अनुच्छेद 31 सी इस प्रकार है: राज्य की नीति को प्रभावी बनाने वाला कानून भाग IV में निर्धारित सभी या किसी भी सिद्धांत को सुरक्षित करना और ये

शब्द, एक सादे प्राकृतिक निर्माण पर, सभी को शामिल नहीं करते हैं

कानून के प्रावधान लेकिन केवल वे जो निर्देश को प्रभावी बनाते हैं:

सिद्धांत। लेकिन सवाल यह है कि इन प्रावधानों की पहचान कैसे की जाए। संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण। इसका जवाब इस न्यायालय के निर्णय द्वारा प्रश्न समान रूप से प्रदान किया गया है अकादासी पधान बनाम। उड़ीसा राज्य ()। सवाल यह था कि

"एक कानून से संबंधित" अभिव्यक्ति का सटीक अर्थ क्या था "एक राज्य एकाधिकार जो अनुच्छेद 19 (6) में होता है। इस अदालत ने कहा कि राज्य के एकाधिकार से संबंधित "एक कानून" में सभी शामिल नहीं हो सकते हैं ऐसे कानून में निहित प्रावधान लेकिन इसका अर्थ यह होना चाहिए,

" एकाधिकार से संबंधित कानून अपनी बिल्कुल आवश्यक विशेषताओं में " और यह केवल कानून के वे प्रावधान हैं जो मूल रूप से हैं औरराज्य एकाधिकार बनाने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक "जो हैं अनुच्छेद 19 (6) द्वारा संरक्षित। इस विचार को कई बार दोहराया गया था। इस न्यायालय के बाद के निर्णय जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ रशबिहारी भी शामिल हैं पांडे आदि वी। उड़ीसा राज्य (2), व्रजलाल मणिलाल एंड कंपनी और अन्य। वी. मध्य प्रदेश राज्य और अन्य। (3) और आर. सी. कूपर बनाम। संघ का

भारत (4)। मैं निर्माण में एक ही दृष्टिकोण अपनाऊंगा

अनुच्छेद 31 सी और यह मानता है कि यह एक क़ानून का प्रत्येक प्रावधान नहीं है, जो एक निर्देश को प्रभावी बनाने के प्रमुख उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया है सिद्धांत, कि यह संरक्षण का हकदार है, लेकिन केवल वे प्रावधान कानून जो मूल रूप से और अनिवार्य रूप से देने के लिए आवश्यक हैं निदेशक सिद्धांतों के प्रभाव को संशोधित के तहत संरक्षित किया जाता है अनुच्छेद 31 सी। यदि कानून में कोई अन्य प्रावधान हैं जो इस श्रेणी में नहीं आते हैं, वे सुरक्षा के हकदार नहीं होंगे। और उनकी वैधता का निर्णय अनुच्छेदों के संदर्भ से करना होगा 14 और 19. जहाँ, इसलिए, संरक्षण का दावा किया जाता है

संशोधित अनुच्छेद 31 सी के तहत कानून, अदालत के पास पहले होगा यह निर्धारित करने के लिए कि क्या दोनों के बीच वास्तविक और महत्वपूर्ण संबंध है कानून और एक निदेशक सिद्धांत और इसका प्रमुख उद्देश्य कानून इस तरह के निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए है और यदि उत्तर इस सवाल के लिए सकारात्मक है, अदालत को तब करना होगा विचार करें कि मूल रूप से और अनिवार्य रूप से कानून के कौन से प्रावधान हैं। निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने और देने के लिए आवश्यक संशोधित अनुच्छेद 31 सी का संरक्षण केवल उन्हीं प्रावधानों के लिए है। द. सवाल यह है कि क्या कानून का कोई विशेष प्रावधान मूल रूप से हैऔर निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक, यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कितना निकट और अभिन्न है। प्रावधान निर्देश के कार्यान्वयन से जुड़ा है सिद्धांत। यदि अदालत को पता चलता है कि कोई विशेष प्रावधान सहायक है

या निर्देशात्मक सिद्धांत के कार्यान्वयन के साथ आनुषंगिक या अनिवार्य रूप से और अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ नहीं है या ऐसी प्रकृति का है कि, हालांकि क़ानून के मुख्य प्रावधानों के सामान्य डिजाइन का एक हिस्सा प्रतीत होता है, इसका प्रमुख उद्देश्य एक अनधिकृत उद्देश्य को प्राप्त करना है, यह संशोधित अनुच्छेद 31 सी के संरक्षण का आनंद नहीं लेगा और यदि यह अनुच्छेद 14 या 19 का उल्लंघन करता है तो अमान्य के रूप में निरस्त होने के लिए उत्तरदायी होगा।

इन विचारों पर मैंने ऊपर पूरी तरह से चर्चा की है।

श्री पालखीवाला द्वारा उठाई गई कुछ कठिनाइयों का उत्तर दें। उन्होंने कहा कि यदि संशोधित अनुच्छेद 31 सी को वैध माना जाता है, तो प्रावधान भी मान्य हैं। जैसे बॉम्बे निषेध अधिनियम, 1949 की धारा 23 (ई) और 24 (1) (ए) जो बॉम्बे राज्य बनाम में निरस्त कर दी गई थी। एफ. एन. बलसारी (1) के रूप में

अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत गारंटीकृत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन वैध माना जाएगा। मुझे नहीं लगता कि स्वतंत्रता और

अगर इस तरह के प्रावधानों को वैध ठहराया जाता तो इस देश में लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता। वास्तव में, संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा अनुच्छेद 19 (2) के संशोधन के बाद, यह अत्यधिक तर्क योग्य है कि ऐसे दोनों प्रावधान अनुच्छेद 19 (2) के संरक्षण के अंतर्गत आएंगे और वैध होंगे। और अन्यथा भी, यह देखना मुश्किल है कि यदि कानून का कोई प्रावधान है तो मूल संरचना का कोई उल्लंघन कैसे शामिल है। किसी व्यक्ति को किसी भी मादक पदार्थ का सेवन करने से प्रतिबंधित करना, जिसका सेवन या उपयोग कानून द्वारा निषिद्ध है (राज्य सरकार द्वारा जारी लाइसेंस के

अलावा) अनुच्छेद 19 (1) (ए) के उल्लंघन से संरक्षित है। स्थिति शायद अलग होगी यदि कोई प्रावधान है

निषेध अधिनियम में यह कहते हुए प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी निषेध नीति के खिलाफ नहीं बोलेगा या निषेध अधिनियम को निरस्त करने के लिए प्रचार नहीं करेगा या निर्देश से अनुच्छेद 47 को हटाने का अनुरोध नहीं करेगा सिद्धांत। ऐसा प्रावधान न भी हो सकता है और न भी।संशोधित अनुच्छेद 31 सी के संरक्षण का हकदार, भले ही इसे निषेध अधिनियम में जगह मिलती है, क्योंकि इसका प्रमुख उद्देश्य है अनुच्छेद 47 में निदेशक सिद्धांत को प्रभावी नहीं करना होगा।लेकिन किसी विशेष मामले के संबंध में बोलने की स्वतंत्रता का गला घोंटना और इसे अनुच्छेद 19 (1) (ए) के उल्लंघन के रूप में निरस्त किए जाने का खतरा हो सकता है। यदि न्यायालय यह पाता है कि प्रभाव देने के लिए अधिनियमित कानून में भी एक निदेशक सिद्धांत, एक प्रावधान है जो अनिवार्य रूप से नहीं है और निर्देशक सिद्धांत के कार्यान्वयन के साथ एकीकृत रूप से जुड़ा हुआ या जिसका प्रमुख उद्देश्य अनधिकृत लक्षय प्राप्त करना है। उद्देश्य, यह संशोधित अनुच्छेद के संरक्षण से बाहर होगा31 ग और उन्हें अनुच्छेद 14 और 19 की चुनौती का सामना करना होगा। अंत में, मुझे श्री पालखीवाला के इस तर्क पर विचार करना चाहिए किलगभग कोई भी और हर कानून के संरक्षण के भीतर होगा

अनुच्छेद 31 सी में संशोधन किया गया क्योंकि यह किसी न किसी निर्देशक सिद्धांत के लिए संदर्भित होगा। मुझे लगता है कि यह निराशा का एक तर्क है। अनुच्छेद 39 से 51 में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों का उल्लेख करने वाले निदेशक सिद्धांत हैं और उन निदेशक सिद्धांतों में से किसी एक को प्रभावी बनाने के लिए कानून और ऐसे निदेशक सिद्धांत में निर्धारित विशिष्ट उद्देश्य के बीच एक वास्तविक और ठोस संबंध होना चाहिए। जाहिर है, निर्धारित उद्देश्य

इन निदेशक सिद्धांतों के विशिष्ट और सीमित होने के कारण, देश में एक विधायिका द्वारा बनाए गए प्रत्येक कानून का संभवतः इन विशिष्ट उद्देश्यों में से एक या दूसरे के साथ वास्तविक और ठोस संबंध नहीं हो सकता है।

यह केवल सीमित संख्या में कानून हैं जिनके पास एक वास्तविक और एक या दूसरे विशिष्ट उद्देश्यों के साथ महत्वपूर्ण संबंध इन निदेशक सिद्धांतों और किसी भी और हर कानून में निहित होगा यह इस श्रेणी में नहीं आता है। श्री पालखीवाला ने तब तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, अनुच्छेद 38 में निहित निदेशक सिद्धांत था बहुत व्यापक और यह एक विधायिका द्वारा अधिनियमित लगभग किसी भी कानून को शामिल करेगा। यह तर्क भी ठीक से स्थापित नहीं है। अनुच्छेद 38 एक सामान्य है अनुच्छेद जो एक सामाजिक संगठन की स्थापना के लिए राज्य के दायित्व पर जोर देता है

आदेश जिसमें न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सूचित करेगा राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह कर्तव्य की बात करता है राज्य लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए और वहाँ नहीं हो सकता है संदेह है कि अपने आप में यह काफी व्यापक क्षेत्र को कवर कर सकता है लेकिन यह ध्यान दिया जा सकता है कि अनुच्छेद में निर्धारित उद्देश्य केवल नहीं है लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना, लेकिन एक और आगे है आवश्यकता है कि लोगों के कल्याण को बढ़ावा दिया जाए राज्य, किसी भी तरह से वह पसंद नहीं करता है, न कि उसकी सनक के अनुसार और

फैंसी, लेकिन एक विशेष प्रकार के सामाजिक को सुरक्षित और संरक्षित करने के लिए व्यवस्था और वह सामाजिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक, सभी के लिए आर्थिक और राजनीतिक न्याय। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय अनुच्छेद के निदेशक सिद्धांत में निर्धारित उद्देश्य है। 38 और यह वह उद्देश्य है जिसे मौलिक बनाया गया है देश का शासन और जिसके तहत राज्य को रखा गया है एहसास करने का दायित्व। यह निदेशक सिद्धांत आधार बनाता है -

जिसे निदेशक सिद्धांतों की पूरी संरचना का पालन किया जाता है और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय इसके हस्ताक्षर हैं। अन्य निर्देशक सिद्धांत। में निर्धारित निर्देशक सिद्धांत अनुच्छेद 38 के बाद के लेख केवल विशिष्टता प्रदान करते हैं। और सामाजिक, आर्थिक और आर्थिक आदर्श के पहलुओं और पहलुओं को निर्धारित करना। राजनीतिक न्याय अनुच्छेद 38 में व्यक्त किया गया है। श्री पालखीवाला की शिकायत में 'राजनीतिक न्याय' शब्दों के उपयोग के खिलाफ निर्देशित नहीं किया गया था अनुच्छेद 38 लेकिन उनका तर्क था कि सामाजिक और

उस अनुच्छेद में उल्लिखित आर्थिक न्याय इतना व्यापक था कि लगभग

कोई भी कानून इसके भीतर आ सकता है। में सहमत नहीं हूँ। अवधारणा

सामाजिक और आर्थिक न्याय की परिभाषा बहुत आसान नहीं हो सकती है। लेकिन इसकी व्यापक रूपरेखा कुछ प्रावधानों में पाई जाती हैमौलिक अधिकार और निदेशक सिद्धांतों में और जब भी एक सवाल उठता है कि क्या कोई कानून सामाजिक कार्य को प्रभावी बनाने के लिए है। और आर्थिक न्याय, इन प्रावधानों के संदर्भ में यह है कि प्रश्न का निर्धारण करना होगा। कुछ भी इतना अस्पष्ट नहीं है या सामाजिक या आर्थिक न्याय की अवधारणा के बारे में अनिश्चित है कि लगभग किसी भी प्रकार के कानून को इसके तहत उचित ठहराया जा सकता है। इसके अलावा, जहाँ किसी विधान के संबंध में संरक्षण का दावा किया जाता है -

इस आधार पर कि यह एक निदेशक सिद्धांत को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है, निदेशक सिद्धांत जिससे संबंधित होने का दावा किया जाता है सामान्य रूप से अनुच्छेद 38 में निर्धारित सामान्य निदेशक सिद्धांत नहीं होना चाहिए,किन में निर्धारित विशिष्ट निर्देशक सिद्धांतों में से एक होगा लेखों के बाद, क्योंकि जैसा कि मैंने पहले कहा, ये बाद वाले विशिष्ट हैं अनुच्छेद 38 में निर्दिष्ट सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा। इसलिए मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता कि यदि संशोधन

अनुच्छेद 31 सी में वैध माना गया था, इसका संरक्षण का प्रभाव होगा सूर्य के तहत हर संभव कानून और जो प्रभावी होगा और

सार संविधान से अनुच्छेद 14 और 19 को मिटा देता है। यह एक लंबा और चरम तर्क है जिसके लिए मुझे कोई औचित्य नहीं मिलता है संविधान के प्रावधान। इसलिए मैं संविधान की धारा 55 (चालीस) की घोषणा करूंगा। दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1976 जिसमें उप-धारा (4) और (5) जोड़ी गई अनुच्छेद 368 में असंवैधानिक और इस आधार पर अमान्य है कि यह संविधान की मूल संरचना को नुकसान पहुंचाता है और इससे परे जाता है

संसद की शक्ति में संशोधन करना। लेकिन जहाँ तक संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 4 का संबंध है। मेरा मानना है कि मेरे द्वारा संशोधित अनुच्छेद 31 सी पर दी गई व्याख्या पर, यह संविधान के मूल ढांचे को नुकसान या नष्ट नहीं करता है और संसद की संशोधन शक्ति के भीतर है और इसलिए मैं संशोधित अनुच्छेद 31 सी को संवैधानिक और वैध घोषित करूंगा।

मैंने इस फैसले में सदस्यता लेने के लिए अपने कारण भी बताए हैं। वामन राव के मामले में 9 मई, 1980 को दिए गए आदेश और जहां तक उन कारणों को निर्धारित किया गया है, यह निर्णय औपचारिक रूप से मेरे द्वारा तब घोषित किया जाएगा जब वामन राव के मामले को निर्णय के लिए बोर्ड पर रखा जाएगा।

एस. आर.

एन-एस 2-646 एस. सी. इंडिया/80-24-4-81-2,500।